महाकवि रणछोड़ भट्ट प्रणीतम्

राजप्रशस्तिः महाकाव्यम्

सम्पादक

डॉ० मोतीलाल मेनारिया

साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर (राजस्थान)

शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
की आर्थिक सहायता द्वारा

प्रथम संस्करण
सन् १९७३
वि. सं. २०३०

मूल्य
चालीस रुपये

मुद्रक
विद्यापीठ प्रेस
राजस्थान विद्यापीठ
उदयपुर

MAHAKAVI RANCHOD BHATTA PRANITAM

RĀJPRASAŚTIḤ MAHĀKĀVYAM

EDITOR
Dr MOTILAL MENARIA

SAHITYA SANSTHAN, RAJASTHAN VIDYAPEETH
UDAIPUR (RAJASTHAN)

With the Financial Aid of the
Ministry of Education
Government of India

First Edition
1973 A.D.
V.S. 2030.

Price
Rs. 40/-

Printer
Vidyapeeth Press
Rajasthan Vidyapeeth
Udaipur

राजसमुद्र सरोवर के निर्माता–महाराणा राजसिंह (वि० सं० १७०९–३७)

प्रकाशकीय

साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर सन् १९४१ से पुरातन इतिहास, पुरातत्त्व, साहित्य, भाषा, दर्शन, कला और संस्कृति के क्षेत्र में अनुपलब्ध अनुसंधानात्मक सामग्री का सर्वेक्षण, सकलन, सम्पादन और प्रकाशन का महत्त्वपूर्ण एवं परिश्रमसाध्य कार्य कर रहा है, जिसका देश-विदेश के शोध जगत मे काफी सम्मान हुआ है। यहां के संग्रहालय व पुस्तकालय में हस्तलिखित ग्रन्थों तथा पुस्तकों के रूप मे मूल्यवान सामग्री सुरक्षित है, देश–विदेश के आगन्तुक शोधकर्मियों ने समय-समय पर उसका लाभ उठाया है। 'शोध पत्रिका' त्रैमासिक सन् १९४८ से संस्थान की मुख पत्रिका के रूप में निरन्तर प्रकाशित हो रही है, उसे विद्वद् समाज ने जिस प्रकार समादृत किया है, उसकी लोकप्रियता की कहानी वह स्वयं कह रही है। संस्थान ने अब तक विभिन्न विषयों से सम्बन्धित ५७ प्रकाशन किये हैं। महाकवि रणछोड़ भट्ट प्रणीत यह 'राजप्रशस्तिः महाकाव्यम्' उसका ५८ वां प्रकाशन है।

'राजप्रशस्ति' मूलतः ऐतिहासिक काव्य है, जिसे ग्रन्थ के प्रणेता ने 'महाकाव्य' की संज्ञा से अभिहित किया है। इतिहास के साथ-साथ भाषा, काव्य एव तत्कालीन सांस्कृतिक सम्पन्नता के अध्ययन की दृष्टि से इसके महत्त्व को नजरअन्दाज नही किया जा सकता है।

शोध कार्य सतत् साधना एवं अखण्ड तपस्या मांगता है। अनुपलब्ध तथ्यों को उजागर करने का कार्य दुष्कर है, जिसकी सम्पूर्ति में संस्थान व विद्वान सम्पादक को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। अनेक ऐसे व्यवधान भी आये कि कार्य रुक सा गया। ऐसे श्रमसाध्य कार्य की सम्पूर्ति पर प्रसन्नता स्वाभाविक है।

भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने इस ग्रन्थ के संपादन एवं प्रकाशन कार्य के लिये वित्तीय सहयोग प्रदान किया है। राजस्थान विद्यापीठ के संस्थापक उपकुलपति मनीषी प. श्री जनार्दनराय नागर की प्रेरणा से ही इस गुरुत्तर कार्य का श्रीगणेश हुआ और उन्ही के समथ मार्गदर्शन मे यह कार्य सम्पन्न हुआ है। विद्यापीठ प्रेस ने अपनी अनेक सीमाओं के होते हुए भी मुद्रण व प्रकाशन कार्य मे काफी सहयोग किया है। प्रूफ सशोधन एव मुद्रण व्यवस्था का दायित्व श्री देव कोठारी ने निभाया है। अतः सस्थान केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, हमारे सस्थापक उपकुलपति, विद्वान सम्पादक डॉ० मोतीलाल मेनारिया एव विद्यापीठ प्रेस के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता है।

उमाशंकर शुक्ल

अनुक्रमणिका

भूमिका

राजस्थान राज्य के सुरम्य उदयपुर नगर से ४० मील उत्तर दिशा में महाराणा राजसिंह प्रथम सं० १७०९–१७३७) बनवाया हुआ राजसमुद्र नाम का एक अत्यन्त सुन्दर सरोवर है। इसकी लंबाई ४ मील और चौड़ाई १$\frac{3}{4}$ मील है। इसके निर्माण–कार्य पर १०५०७५८४ रु. व्यय हुए थे।[1] इसका बांध धनुष के आकार का ३ मील लम्बा है। बाध का एक भाग नौचोकी कहलाता है, जो सगमरमर का बना हुआ है। यहाँ पर इस सरोवर की प्रतिष्ठा का उत्सव सम्पन्न हुआ था।

नौचोकी घाट का महत्त्व एक अन्य प्रकार से भी है। महाराणा राजसिंह की आज्ञा से राजप्रशस्ति नाम का एक सस्कृत महाकाव्य लिखा गया था। उसे २५ बड़ी-बडी शिलाओं पर खुदवाकर यहाँ की ताको में लगवाया गया जो आज भी विद्यमान है। यह भारत भर मे सबसे बडा शिलालेख और शिलाओं पर खुदे हुए ग्रन्थों मे सबसे बड़ा है। शिलाएँ काले पत्थर की है। प्रत्येक शिला ३ फीट लम्बी व २॥ फीट चौडी है। लिपि देवनागरी है। अक्षर बड़े-बड़े सुवाच्य एवं सुन्दर है। पहली शिला मे दुर्गा, गणेश, सूर्य आदि देवी-देवताओं की स्तुति है। शेष २४ शिलाओ में प्रत्येक पर इस ग्रन्थ का एक-एक सर्ग खुदा हुआ है। इस प्रकार कुल मिलाकर २४ सर्गो मे यह ग्रन्थ समाप्त हुआ है। इसकी श्लोक-संख्या ११०६ है।

राजप्रशस्ति महाकाव्य रणछोड भट्ट की कृति है। यह कठौडी कुलोत्पन्न तैलंग ब्राह्मण था। इसके पिता का नाम मधुसूदन और इसकी माता का वेणी था। राजप्रशस्ति के अनुसार वश–वृक्ष इस प्रकार बनता है—

---

१ डॉ० ओझा; उदयपुर राज्य का इतिहास, पहला भाग, पृष्ठ ६।

मेवाड़ राज्य से रणछोड़ भट्ट के घराने का बहुत पुराना सम्बन्ध था। इसके पूर्वज लक्ष्मीनाथ [प्रथम] और छीतू भट्ट को महाराणा उदयसिंह (सं. १५९४-१६२८) ने भूरवाडा नामक एक गांव और तुलादान दिया था। ये दान इनको उदयसागर की प्रतिष्ठा (सं. १६२२) के अवसर पर मिले थे।[2] महाराणा उदयसिंह से तीसरी पीढी में महाराणा अमरसिंह प्रथम, (सं.१६५३-७६ हुआ। इसने भी लक्ष्मीनाथ [प्रथम] को एक गाव प्रदान किया, जिसका नाम होली था।[3] लक्ष्मीनाथ [प्रथम] का पुत्र रामचन्द्र [द्वितीय]

---

१ राजप्रशस्ति; प्रथम सर्ग, श्लोक ६। सर्ग ३, श्लोक ३५। सर्ग ४, श्लोक १८। सर्ग २४, श्लोक १६।

२ राजप्रशस्ति; सर्ग ४, श्लोक १७,१८ और १६

३ वही; सर्ग ५, श्लोक ९

हुआ। इसके तीन बेटे थे—कृष्ण, माधव [द्वितीय] और मधुसूदन। कृष्ण भट्ट के पुत्र लक्ष्मीनाथ [द्वितीय] ने उदयपुर के जगन्नाथराय के मन्दिर की प्रशस्ति बनाई थी, जो उक्त मन्दिर मे उत्कीर्ण है। यह मन्दिर महाराणा जगत्‌सिंह, प्रथम, (सं. १६८४-१७०९) ने बनवाया था। इसकी प्रतिष्ठा सं० १७०९, वैशाखी पूर्णिमा, गुरुवार को हुई थी। इस अवसर पर कृष्णभट्ट को भैंसड़ा गांव और रत्नधेनु[1] दान दिया गया और मधुसूदन को महागोदान प्राप्त हुआ।[2] महाराणा जगतसिंह के उत्तराधिकारी महाराणा राजसिंह के समय में भी मधुसूदन का अच्छा सम्मान रहा। वह संस्कृत भाषा का अच्छा विद्वान् और महाराणा राजसिंह का विश्वासपात्र था। सं० १७११ में महाराणा ने इसको बादशाह शाहजहाँ के वजीर सादुल्लाखां से मिलने के लिये चित्तौड भेजा।[3] महाराणा राजसिंह की माता जनादे ने चांदी का तुलादान किया था। उस समय मधुसूदन को गजदान के निष्क्रय स्वरूप ५०० रु. की प्राप्ति हुई। सं. १७१९ में महाराणा ने इसको मोती के पलान सहित नवल नामक एक सफेद घोड़ा दिया।[4] इस दान के एवज मे मधुसूदन को नौ हजार रुपये मिले। तदनन्तर इसको काशी भेज दिया गया। वहाँ देव-दर्शन करते समय इसने महाराणा को आशीर्वाद दिया।[5]

अपने पिता मधुसूदन के काशी चले जाने के बाद रणछोड़ भट्ट ने उसका कार्य संभाला। अपने पिता की तरह वह भी संस्कृत भाषा का अच्छा पंडित था। राजप्रशस्ति के अतिरिक्त इसने दो प्रशस्तियाँ और भी लिखी थीं। महाराणा राजसिंह ने एकलिंगजी के पास वाले इन्द्र सरोवर के जीर्ण बाँध के स्थान पर नया बाँध बंधवाया था, जो स० १७२९ में पूरा हुआ। इसके लिये महाराणा ने इससे एक प्रशस्ति लिखवाई और उसे सुनने के बाद उसको शिला

---

१ देखिए, परिशिष्ट संख्या ३

२ राजप्रशस्ति; सर्ग ५, श्लोक ५०

३ वही; सर्ग ६, श्लोक ११, १२ और १३

४ राजप्रशस्ति; सर्ग ६, श्लोक २७–२८, ३८–४२।

५ वही; सर्ग ६, श्लोक ४५–४६।

पर खुदवाने की आज्ञा प्रदान की ।[१] दूसरी प्रशस्ति सं० १७३२ में लिखी गई थी । यह देवारी के दरवाजे से थोड़ी दूर त्रिमुखी बावड़ी में लगी हुई है ।[२]

उपर्युक्त प्रशस्तियों के अलावा रणछोड़ भट्ट ने अमर काव्य नाम का एक ग्रन्थ भी बनाया था, जिसकी चार हस्तलिखित प्रतियाँ सरस्वती भण्डार, उदयपुर, में उपलब्ध है ।[३] इस ग्रन्थ का प्रारम्भ कवि ने महाराणा राजसिंह के पौत्र अमरसिंह द्वितीय, के शासन-काल (सं० १७५५–१७६७) मे किया था, पर पूरा नही हो पाया । इसलिये इसमे मेवाड के इतिहास के आदि काल से लेकर महाराणा राजसिंह (स० १७०९–३७) तक के राजाओं ही का वर्णन है । बाद के दो राजाओं–महाराणा जयसिंह और महाराणा अमरसिंह (द्वितीय) का वृत्तान्त इसमें नही है । अनुमान होता है, इस ग्रन्थ का लिखना आरम्भ करने के कुछ काल बाद अर्थात् सं० १७५५ और स० १७६७ के मध्य में किसी समय कवि का देहान्त हो गया था जिससे यह ग्रन्थ अधूरा रह गया ।

अमर काव्य संस्कृत भाषा का ग्रन्थ है । इसकी छद–संख्या लगभग २५० है । आकार मे यह राजप्रशस्ति से छोटा पर भाषा व कविता की दृष्टि से अधिक उत्तम है । उसकी अपेक्षा इसकी भाषा अधिक प्रौढ, और वर्णन–शैली अधिक व्यवस्थित तथा विषय सामग्री अधिक व्यापक है । डॉ० ओझा आदि विद्वानों ने इसे महाराणा अमरसिंह, प्रथम (सं० १६५३–७६) के समय की रचना माना है, जो अनुचित है ।[४]

---

१ राजप्रशस्ति सर्ग १०, श्लोक ४३ ।

२ देखिए, परिशिष्ट सं० १ ।

३ A Catalogue of Manuscripts in the Library of H. H. the Maharana of Udaipur, पृष्ठ ८ ।

4 डॉ० ओझा; उदयपुर राज्य का इतिहास, पहला भाग पृ० ४२०–११, ५०९ ।

राजप्रशस्ति की रचना का प्रारम्भ सं० १७१८, माघ वदि ७ को हुआ था।[1] इस बात का स्पष्ट उल्लेख इस ग्रन्थ में है। परन्तु इसमें इसकी समाप्ति का वर्ष दिया हुआ नहीं है जिससे यह पता नहीं लगता कि यह कब पूरा हुआ। लेकिन इसके २३ वें सर्ग में महाराणा राजसिंह के उत्तराधिकारी महाराणा जयसिंह और मुगल सम्राट औरंगजेब के बीच हुई सन्धि का वर्णन है।[2] यह सन्धि सं० १७३८ में हुई थी।[3] इस आधार पर इसका रचना-काल सं० १७१८–३८ निश्चित होता है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि राजप्रशस्ति महाकाव्य महाराणा राजसिंह की आज्ञा से लिखा गया था। परन्तु इसको शिलाओं पर खुदवाने का आदेश महाराणा जयसिंह (सं० १७३७–५५) ने दिया था[4] इसकी छठी शिला में इसकी खुदवाई का सं० १७४४ दिया हुआ है।[5] इस प्रकार यह ग्रन्थ लिख लिये जाने के ६ वर्ष बाद शिलाओं पर खोदा गया।

राजप्रशस्ति महाकाव्य का मुख्य विषय महाराणा राजसिंह का जीवन चरित्र है। परन्तु इसके प्रथम पाँच सर्गों में मेवाड़ के प्राचीन इतिहास पर भी प्रकाश डाला गया है जो ऐतिहासिकों के लिए बड़े महत्व का है। इसका सारांश नीचे दिया जाता है:—

पहला सर्ग—इसमें ३१ श्लोक हैं। प्रारम्भ में 'मंगलाष्टक' है, जिसमें एकलिंग, चतुर्भुज हरि, अंबा, बाला, गणेश, सूर्य और मधुसूदन की

---

१ राजप्रशस्ति; सर्ग प्रथम, श्लोक १०।

२ राजप्रशस्ति; सर्ग २३, श्लोक ३२–५६।

३ डॉ० ओझा; उदयपुर राज्य का इतिहास, दूसरा भाग, पृष्ठ ५८६–८९

४ राजप्रशस्ति; सर्ग ५, श्लोक ५१।

५ गजधर उरजण ....संवत् १७४४, सर्ग ५, पुष्पिका।

स्तुति के आठ श्लोक हैं। श्लोक ९–१० में लिखा है कि संवत् १७१८, माघ कृष्णा सप्तमी के दिन राजसिंह ने राजसमुद्र के निर्माण का कार्य आरम्भ किया। तब वह घोघुंदा गाँव मे रह रहा था।[१] उसकी आज्ञा पाकर रणछोड़ भट्ट ने उसी दिन इस प्रशस्ति की रचना प्रारम्भ की। अगले सात श्लोकों में संस्कृत भाषा, संस्कृत भाषा के कवि एवं प्रशस्ति-कथा का महत्व कहा गया है। श्लोक १९–२४ में वायुपुराण के अन्तर्गत एकलिंग माहात्म्य में आई हुई कथा का वर्णन है। आँखो मे आंसू भरकर पार्वती नन्दी से कहती है–"मैं आज शंकर के वियोग मे बाष्प [= आँसू] बहा रही हूं। इस कारण पूर्व प्रदत्त मेरे शाप से तुम बाप्प नामक राजा बनोगे। नागह्रद तीर्थ में रहकर शंकर को आराधना करने पर तुम्हें इन्द्र के समान राज्य प्राप्त होगा। तब तुम पुन. स्वर्ग मे आ सकोगे।" इसके बाद पार्वती चंड नामक गण से बोली कि द्वारपाल होकर भी तुमने आज द्वार की रक्षा नही की और अपनी मर्यादा को तोड़ा। इस लिये तुम मेदपाट में हारीत नामक मुनि बनोगे। वहाँ रहकर शंकर की आराधना करने के बाद तुम पुन. स्वर्ग प्राप्त कर सकोगे।

अन्तिम २७–३१ श्लोको मे प्रशस्ति का महात्म्य और प्रशस्तिकार का वंश-वृक्ष दिया गया है।

दूसरा सर्ग–इसमें ३८ श्लोक है। सर्ग के प्रारम्भ मे गोवर्द्धनेन्द्र की स्तुति का एक श्लोक है। इसके पश्चात् सूर्य-वंश के राजाओ की वंशावली दी गई है। सृष्टि के प्रारम्भ में विश्व जलमय था। वहाँ नारायण विद्यमान थे। उनकी नाभि से कमल और कमल से ब्रह्मा प्रकट हुए। फिर वंश-क्रम इस प्रकार चला:—

—मरीचि–कश्यप– विवस्वान्-मनु– इक्ष्वाकु– विकुक्षि (अपरनाम शशाद)–पुरंजय (अपरनाम ककुत्स्थ –अनेना–पृथु–विश्वरंधि–चन्द्र–युवनाश्व-

---

१ घोघून्दा [गोगून्दा]–यह गांव उदयपुर नगर से लगभग २२ मील दूर उत्तर-पश्चिम में है।

शावस्त–बृहदश्व–कुवलयाश्व (अपरनाम धुंधुमार)–दृढाश्व– हर्यश्व–निकुंभ-बर्हणाश्व–कृशाश्व–सेनजित्–युवनाश्व––मान्धाता (अपरनाम त्रसद्दस्यु––पुरुकुत्स–त्रसद्दस्यु–अनरण्य–हर्यश्व-अरुण-त्रिबंधन-सत्यव्रत (अपरनाम त्रिशंकु)-हरिश्चन्द्र-रोहित–हरित–चंप–सुदेव–विजय–भरुक–वृक–बाहुक––सगर।

सगर के सुमति नामक पत्नी से साठ हजार पुत्र हुए, जिन्होंने समुद्र बनाया तथा केशिनी से एक पुत्र हुआ, जिसका नाम असमंजस था। असमंजस के वंश का क्रम इस प्रकार है—अंशुमान्—दिलीप—भगीरथ—श्रुत—नाभ—सिंधुद्विप—अयुतायु—ऋतुपर्ण—सर्वकाम—सुदास—मित्रसह (अपरनाम कल्मापपाद — अश्मक—मूलक— दशरथ —एडविड — विश्वसह — खट्वांग — दिलीप—रघु—अज— दशरथ ।

दशरथ के कौशल्या नामक पत्नी से राम, कैकेयी से भरत और सुमित्रा से लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न नामक पुत्र हुए । राम के सीता से कुश और लव तथा कुश के कुमुद्वती से अतिथि नामक पुत्र हुआ। अतिथि का वंश इस प्रकार चला —निषध— नल —पुंडरीक —-क्षेमधन्वा —-देवानीक-—अहीन—पारियात्र बल —स्थल —वज्रनाभ —संगण —विधृति —-हिरण्यनाभ —-पुष्य —-ध्रुवसिद्धि सुदर्शन—अग्निवर्ण— शीघ्र —मरुत् —-प्रसुश्रुत —-संधि —-मर्षण —-महस्वान् —विश्वमाह्व —प्रसेनजित् —तक्षक—बृहद्वल ।

बृहद्वल महाभारत–संग्राम में अभिमन्यु द्वारा मारा गया जिसका उल्लेख 'महाभारतग्रन्थ' में हुआ है। भागवत के नवम स्कन्ध में बृहद्वल से आगे का वंश–क्रम इस प्रकार दिया गया है:—

—बृहद्रण —उरुक्रिय—वत्सवृद्ध—प्रतिव्योम—भानु—दिवाक—सहदेव —बृहदश्व —भानुमान्—प्रतीकाश्व —-सुप्रतीक—मरुदेव—-सुनक्षत्र-—पुष्कर अन्तरिक्ष—सुतपा —मित्रजित्—बृहद्भ्राज—बर्हि—कृतंजय—संजय—-शाक्य-शुद्धोद—लांगल —प्रसेनजित्—क्षुद्रक—रणक—सुरथ—सुरथ—सुमित्र ।

सुमित्र पर्यन्त इक्ष्वाकुवंश चला। ये १२२ राजा हुए। इसके बाद सूर्य–वंश का क्रम बताया गया है —

—वज्रनाभ—महारथी-अतिरथी-अचलसेन—कनकसेन--महासेन-अंग—विजयसेन—अजयसेन—अभंगसेन—मदसेन—-सिंहरथ।

ये राजा अयोध्या-वासी थे। सिंहरथ के विजय नामक पुत्र हुआ। उसने दक्षिण देश के राजाओं पर विजय प्राप्त की और अयोध्या छोड़कर वह दक्षिण में रहने लगा। वहाँ उसे आकाशवाणी सुनाई दी कि वह 'राजा उपाधि छोड़कर अपने वश मे 'आदित्य' उपाधि धारण करे।

मनु से लेकर विजय तक जो राजा हुए, उनकी सख्या १३५ है।

तीसरा सर्ग—इसकी श्लोक—सख्या ३६ है। प्रथम श्लोक मे हरि की वन्दना है। इसके पश्चात् विजय के वाद के राजाओ की वशावली दी गई है जो इस प्रकार है:—

—पद्मादित्य—-शिवादित्य—-हरदत्त—-सुजसादित्य—-सुमुखादित्य-सोमदत्त – शिलादित्य—-केशवादित्य—नागादित्य—-भोगादित्य—-देवादित्य—आशादित्य—कालभोजादित्य—ग्रहादित्य—

ये १४ 'आदित्य' उपाधिधारी राजा हुए। ग्रहादित्य के समस्त पुत्र गहिलोत' कहलाये। ग्रहादित्य का ज्येष्ठ पुत्र बाप्प था।[1]

यह वाप्प वही था, जिसे दखकर पार्वती ने अश्रु वहाये थे। शिव का चंड नामक गण मुनि हारीत राशि हुआ। वाप्प हारीत का शिष्य वना और उसकी आज्ञा से नागह्रदपुर में रहकर उसने एकलिंग शिव का अर्चन किया।[2] प्रसन्न होकर शिव ने उसे वरदान दिये कि वह वंशपरंपरा तक चित्रकूट पर शासन करे और उसका वंश वरावर चलता रहे। वरदान पाकर वाप्प १९१ वर्ष

---

१ वाप्प से अभिप्राय यहाँ वापा रावल से है।

२ नागह्रदपुरा = नागदा। यह नगर उदयपुर से १४ मील दूर उतर दिशा में है।

के माघ महीने में शुक्ल पक्ष की सप्तमी के दिन भाग्यवान् वना । तव उसकी आयु १५ वर्ष की थी ।

वाप्प वलशाली राजा था । वह ३५ हाथ लंबा पट्टवस्त्र, १६ हाथ लंबा निचोल और ५० पल सोने का कड़ा पहनता था।[1] उसकी तलवार वजन में ४० सेर थी । वह तलवार के एक प्रहार में दो भैंसों का वध करता था। उमके आहार मे वड़े-वड़े चार वकरे काम आते थे। उसने मोरी जाती के राजा मनुराज[2] को पराजित किया तथा उससे चित्रकूट छीनकर वहाँ अपना राज्य जमाया । तव उसकी पदवी 'रावल' थी । उसका वंश इस प्रकार चला:—

—खुमान—गोविन्द—महेन्द्र—आलू—सिंहवर्मा—शक्तिकुमार—शालिवाहन—नरवाहन—अंवाप्रसाद—कीर्तिवर्मा—नरवर्मा—नरपति—उत्तम—भैरव—श्रीपुंजराज—कर्णादित्य—भावसिंह—गोत्रसिंह—हंसराज—शुभयोगराज—वैरड—वैरिसिंह—तेजसिंह—समरसिंह ।

समरसिंह पृथ्वीराज की वहिन पृथा का पति था। पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन गोरी के वीच हुए युद्ध में पृथ्वीराज की ओर से लड़कर उसने गोरी को पकड़ा । वह उस युद्ध में मारा गया। भाषा के रासा नामक ग्रन्थ[3] में इस युद्ध का सविस्तार वर्णन हुआ है ।

समरसिंह के पुत्र हुआ कर्ण। इस प्रकार ये २६ रावल हुए। कर्ण के दो पुत्र थे—माहप और राहप। माहप डूंगरपुर का राजा बना। राहप

---

१ महाराणा राजसिंह [प्रथम[के समय में एक पल लगभग ४ तोले का होता था ।

२ कर्नल टॉड आदि इतिहासकारों ने मोरी जाति के इस राजा का नाम मान वताया है ।

३ पृथ्वीराज रासो ।

उग्र स्वभाव का था। पिता की आज्ञा से मंडोवर पहुंच कर उसने मोकलसी को पराजित किया और उसे पकड़ कर अपने पिता के पास लाया। कर्ण ने मोकलसी के 'राना' विरुद को छीनकर अपने पुत्र राहप को दे दिया। पल्लीवाल जाति के शरशल्य नामक ब्राह्मण के आशीर्वाद से राहप चित्रकूट का राजा बना और सीसोद नगर मे रहने के कारण सीसोदिया कहलाया। 'राना' उसका विरुद था जिसे बाद में होने वाले राजाओ ने भी अपनाया।

सर्ग के अन्त में कवि का वंश–परिचय है।

चौथा सर्ग—यह सर्ग ५० श्लोकों मे पूरा हुआ है। प्रारम्भ में तमालवृक्ष की स्तुति है। फिर राहप से आगे का वंश–क्रम दिया गया है:—

—नरपति—जसकर्ण—नागपाल— पुण्यपाल—पृथ्वीमल्ल—-भुवनसिंह —भीमसिंह—जयसिंह—लक्ष्मसिंह।

लक्ष्मसिंह 'गढमडलीक' कहलाता था। उसका छोटा भाई रत्नसी था, जो पद्मिनी का पति था। अलाउद्दीन ने पद्मिनी के लिये जब चित्रकूट को घेर लिया तब अपने १२ भाइयों तथा ७ पुत्रों सहित लक्ष्मसिंह उसके विरुद्ध लड़ा और मारा गया। इसके बाद लक्ष्मसिंह के ज्येष्ठ पुत्र हमीर ने राज्य किया। उसने एकलिंग की श्याम पाषाण–निर्मित चतुर्मुखी प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवाई। साथ में पार्वती की प्रतिमा की भी प्रतिष्ठा की गई।

हमीर के पुत्र हुआ क्षेत्रसिंह और क्षेत्रसिंह के लाखा, जो परम दानी था। लाखा के हुआ मोकल। उसने अपने निःसन्तान भाई बाघा की मोक्ष प्राप्ति के लिये नागह्रद में बाघेला नाम का एक तालाब बनवाया। उसने एकलिंगजी के मन्दिर के परकोटे का भी निर्माण करवाया। इसके बाद द्वारका की यात्रा कर वह शंखोद्धार नामक तीर्थ–स्थान पर पहुंचा। वहाँ एक सिद्ध ने उसकी पत्नी के गर्भ मे प्रवेश किया। मोकल का पुत्र कुंभकर्ण वही सिद्ध था। मोकल के बाद कुंभकर्ण ने राज्य किया। उसके सोलह सौ स्त्रियाँ थी। उसने 'कुंभलमेरु' दुर्ग का निर्माण करवाया। कुंभकर्ण के बाद उसका पुत्र रायमल

राजा बना । रायमल के पुत्र हुआ संग्रामसिंह । दो लाख सैनिक साथ में लेकर वह दिल्ली–पति बाबर के देश में फतहपुर तक पहुंचा और उसने वहाँ पीलिया खाल पर्यन्त अपने देश की सीमा बनाई । संग्रामसिंह के बाद रत्नसिंह राज्याधिरूढ़ हुआ और फिर उसका भाई विक्रमादित्य । विक्रमादित्य के बाद उसके सहोदर उदयसिंहने राज्य किया । उसके उदयसागर नामक एक सुन्दर सरोवर बनवाय और उदयपुर नगर बसाया । उसने राठौड़ जैमल, सीसोदिया पत्ता और चौहान ईश्वरदास नामक योद्धाओं ने चित्रकूट में बादशाह अकबर की सेना से युद्ध किया ।

उदयसिंह के बाद प्रतापसिंह राज्याधिरूढ हुआ । भोजन करते समय मानसिंह कछवाहा और उसके बीच वैमनस्य हो गया । इस कारण मानसिंह अकबर के पास गया और वहाँ से सेना लेकर खमणोर गाँव में पहुंचा । वहाँ दोनों में भीषण युद्ध हुआ । मानसिंह हाथी पर लोहे के बने हौदे में बैठा था । पहले प्रताप के ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंह ने उक्त हाथी के कुंभस्थल पर भाले से प्रहार किया, बाद में प्रताप ने भी । हाथी वहाँ से भाग गया । उस युद्ध में प्रताप का भाई शक्तिसिंह भी था, जो मानसिंह के पक्ष में था । प्रताप को देखकर उसने कहा–"हे स्वामी ! पीछे देखो ।" मुड़कर प्रताप ने एक घोड़ा देखा । तदनन्तर वह वहाँ से निकल गया । इसके बाद मानसिंह ने उसके पीछे दो मुगल सैनिक दौड़ाये । मानसिंह की आज्ञा लेकर शक्तिसिंह भी उनके पीछे हो लिया । उन सैनिकों ने प्रताप से युद्ध किया । पर प्रताप और शक्तिसिंह दोनों ने मिलकर उन्हें मार डाला ।

तत्पश्चात् अकबर वहाँ पहुंचा । उसने प्रताप से युद्ध किया । पर प्रताप को बलशाली समझकर वह आगरा की ओर चला गया और अपने पीछे अपने ज्येष्ठ पुत्र शेखू को वहाँ नियुक्त कर गया ।

अकबर के बाद उसका पुत्र शेखू जहाँगीर नाम से दिल्ली का स्वामी बना । उसने प्रताप से युद्ध किया । अन्त में वह अपने पुत्र खुर्रम को वहाँ छोड़कर और चौरासी थानेत बिठाकर दिल्ली चला गया ।

सुलतान चकत्ता उपनाम सेरिम दिली–पति का काका था। एक बार प्रताप ने उसे दीवेर के घाटे में हाथी पर बैठा देखा। प्रताप ने उसका सामना किया। सोलंकी–भृत्य पड़िहार ने हाथी के दो पाँव काट दिये। और प्रताप ने उसके कुंभस्थल को भाले के प्रहार से फोड़ दिया। हाथी के नष्ट हो जाने पर सेरिम घोड़े पर चड़ा। लेकिन अमरसिंह ने कुंत–प्रहार से उसे धराशायी कर दिया। मरते समय सेरिम ने अमरसिंह के दर्शन किये और उसकी वीरता की प्रशंसा की। इसके बाद कोसीथल आदि स्थानों में नियुक्त थानेत (थानों के अधिकारी) वहाँ से चले गये। प्रतापसिंह उदयपुर में रहने लगा।

प्रताप से पगड़ी आदि पाकर कोई भाट बादशाह के दर्शनार्थ दिल्ली पहुंचा। जब वह बादशाह के संमुख उपस्थित हुआ तब उसने सिर पर बँधी हुई अपनी पगड़ी हाथ में रख ली और तब सलाम किया। बादशाह के पूछने पर कि तुमने पगड़ी हाथ में क्यों रखी ? उसने उत्तर दिया कि यह पगड़ी राणा प्रताप की दी हुई है ? इस कारण इसको मैंने सिर पर नहीं रहने दिया। आशय समझकर बादशाह प्रसन्न हुआ।

पांचवा सर्ग—प्रतापसिंह के बाद अमरसिंह ने राज्य किया। खुर्रम के साथ युद्ध करने के बाद वह अब्दुल्लाखाँ से लडा। तत्पश्चात् वह चौबीस थानेतो द्वारा घेर लिया गया। फिर उसने ऊँटाला गाँव में दिल्ली–पति के भृत्यवर कायम खाँ को मारा और मालपुर को नष्ट कर वहाँ से कर वसूल किया। तब जहाँगीर की आज्ञा से खुर्रम ने अमरसिंह के साथ सन्धि की। यह सन्धि गोगून्दा में हुई। इसके बाद अमरसिंह उदयपुर में रहकर सुख पूर्वक राज्य करने लगा। उसने कई महादान दिये।

अमरसिंह के बाद कर्णसिंह राजगद्दी पर बैठा। कुमार–पद पर रहते हुए उसने गंगा–तट पर रजत–तुलादान किया तथा शूकर–क्षेत्र के ब्राह्मणों को एक गांव दिया। राज्याधिरूढ़ होने पर उसने अखैराज को सिरोही का स्वामी बनाया। खुर्रम अपने पिता जहाँगीर से विमुख हो गया था। कर्णसिंह ने उसे अपने देश में ठहराया और जहाँगीर के मरने के बाद अपने भाई अर्जुन

को साथ में भेजकर उसे दिल्ली का स्वामी बनाया। खुर्रम शाहजहाँ नाम से प्रसिद्ध हुआ।

सं०, १६६४, भाद्रपद शुक्ला द्वितीया के दिन कर्णसिह के जांबुवती की कोख से जगतसिह नामक पुत्र हुआ। जांबुवती महेचा राठौड़ जसवन्तसिंह की पुत्री थी। सं० १६८५ वैशाख शुक्ला तृतीया के दिन जगतसिंह राजा बना। उसकी आज्ञा से उसका मन्त्री अखैराज सेना लेकर डूंगरपुर पहुंचा। उसके पहुचने पर रावल पूँजा वहाँ से भाग गया। जगतसिंह के सैनिकों ने उसके चंदन के बने गवाक्ष को गिरा दिया और डूंगरपुर को खूब लूटा। तदनन्तर राठौड़ रामसिह सेना लेकर देवलिया की ओर गया। उसने वहाँ जसवन्तसिंह एवं उसके पुत्र मानसिह को मारा और देवलिया को लूटा।

सं० १६८६, कार्तिक कृष्णा द्वितीया को जगत्सिंह के राजसिंह तथा एक वर्ष के बाद अरसी नामक पुत्र हुआ। इन दोनों पुत्रों ने मेड़ता के राजा राजसिह राठौड़ की पुत्री जनादे की कोख से जन्म लिया। महाराणा की अपरिणीता प्रिया से उसके मोहनदास नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

जगत्सिंह ने सिरोही के स्वामी अखैराज को अपने अधीन किया तथा अखैराज द्वारा पराजित तोगा बालीसा से धरती छीनी। उसने अपनी निवास-भूमि मे 'मेरुमन्दिर' नाम का एक महल और 'पीछोला' सरोवर के तट पर 'मोहनमन्दिर' बनवाया।

उसके आदेश से उसका प्रधान भागचंद बाँसवाड़ा पहुंचा। उसके पहुंचने पर अपनी स्त्रियों को साथ लेकर रावल समरसी वहाँ से पहाड़ों में चला गया। बाद में उसने दंड–स्वरूप दो लाख रुपये देकर महाराणा की अधीनता स्वीकार की।

इसके बाद जगत्सिह ने बूंदी के स्वामी शत्रुशल्य के पुत्र भावसिंह के साथ अपनी पुत्री का विवाह किया। उस अवसर पर अन्य २७ कन्याओं का क्षत्रिय कुमारो के साथ विवाह हुआ।

सं० १६९८ में दीपावली के उत्सव पर जगतसिंह की माता जांबुवती ने द्वारका की यात्रा की। वहाँ उसने चाँदी का तुलादान एवं अन्य दान किये। गोस्वामी यदुनाथ की पुत्री वेणी को उसने आहड़ नामक नगर में दो हलवाह भूमि[1] और उसका पत्र उसके पति मधुसूदन भट्ट को प्रदान किया।

राज्यारोहण के बाद जगतसिंह प्रतिवर्ष चाँदी की तुला एवं अन्य दान देता रहा। स० १७०४ के आषाढ़ महीने में सूर्यग्रहण के अवसर पर अमरकंटक मे उसने सोने की तुला की। इसके बाद प्रतिवर्ष उसने अपने जन्म दिवस पर क्रमशः कल्पवृक्ष[2], स्वर्णपृथ्वी[3], सप्तसागर[4] तथा विश्वचक्र[5] नामक महादान दिये। इसी वर्ष उसकी माता जांबुवती ने तीर्थ-यात्रा की। कार्त्तिक में वह मथुरा पहुँची। उसने कार्त्तिकी पूर्णिमा के दिन शूकर क्षेत्र में गगा-तट पर रजत-तुलादान किया। उसके साथ उसकी दोहिती नंदकुंवरि ने भी। एक वर्ष पहले नंदकुँवरि ने रणछोड़ भट्ट को 'उमामहेश्वर' दान दिया था। तत्पश्चात् जाबुवती ने प्रयाग मे चांदी का तुलादान किया। फिर वह काशी, अयोध्या आदि तीर्थों के दर्शन कर घर लौट आई। घर पहुँच कर उसने कई दान दिये।

इसी वर्ष वैशाखी पूर्णिमा के दिन जगतसिंह ने जगन्नाथ की मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई और उस अवसर पर गोसहस्र[6], कल्पलता[7] और हिरण्याश्व[8] नामक महादान तथा पाँच गाव प्रदान किये।

---

१ मेवाड़ में एक हलवाह में ५० बीघा भूमि मानी जाती थी।

२ देखिए, परिशिष्ट संख्या ३।

३ वही।

४ वही।

५ वही।

६ देखिए, परिशिष्ट संख्या ३।

७ वही।

८ वही।

अन्त में उदयसिंह से लेकर जयसिंह तक के महाराणाओं की नामावली दी गई है। जयसिंह के वारे में कहा गया है कि उसने राजप्रशस्ति को शिलाओं पर खुदवाया।

इस सर्ग में कुल मिलाकर ५२ श्लोक है।

छठा सर्ग--सं० १७०९ के मार्गशीर्ष महीने में राजसिंह ने चांदी का तुलादान किया। इसी वर्ष फाल्गुन कृष्ण द्वितीया के दिन वह राजसिंहासन पर वैठा। उसने अपनी वहिन का विवाह भुरुटिया कर्ण नामक राजा के ज्येष्ठ पुत्र अनूपसिह के साथ किया। इस अवसर पर उसके संवन्धियों की ७१ कन्याओं के विवाह अन्य क्षत्रिय कुमारों के साथ हुए।

सं० १७१० पौष कृष्णा एकादशी को राव इन्द्रभान की पुत्री सदा-कुंवरी की कोख से उसके जयसिंह नामक पुत्र हुआ। इसके अतिरिक्त उसके पुत्र हुए---भीमसिंह, गजसिंह, सूरजसिंह, इन्द्रसिंह और बहादुरसिंह। अविवाहिता प्रिया से पुत्र हुआ---नारायणदास।

राजसिंह ने सर्वत्तुंविलास नाम का एक उद्यान लगवाया, जिसका आरम्भ वह कुंवरपदे के समय करवा चुका था।

स० १७११ के आश्विन में दिल्ली-पति शाहजहाँ अजमेर पहुंचा। उसका मुख्य मन्त्री सादुल्लाखां चित्रकूट आया। राजसिंह ने उससे मिलने के लिये अपनी ओर से मधुसूदन भट्ट को चित्रकूट भेजा। खान ने उससे पूछा कि राणा ने गरीवदास और रायसिंह झाला को दिल्ली से क्यों बुलवा लिया? मधुसूदन ने उत्तर दिया---ऐसा पहले भी हुआ है। राणा प्रताप का भाई शक्तिसिंह तथा रावल मेघसिह मेवाड़ से दिल्ली गये और फिर मेवाड़ में आ गये थे। स्वामि-प्रमुक्त क्षत्रियों के लिये दो ही स्थान हैं, दिल्ली या मेवाड़।" खान ने फिर पूछा---"राणा के अश्वारोहियो की संख्या कितनी है? भट्ट ने उत्तर दिया--- "वीस हजार।" इस पर खान वोला---"वादशाह के पास एक

लाख अश्वारोही हैं। राणा की उससे बराबरी कैसे हो सकती है ?" उत्तर में मधुसूदन ने कहा—""हे खान ! यह सत्य है। लेकिन विधाता ने राणा के बीस हजार अश्वारोहियों को बादशाह के एक लाख अश्वारोहियों के बराबर बनाया है।" भट्ट का यह उत्तर सुनकर खान मन ही मन कुपित हुआ। तदनन्तर खान और जयसिंह के बीच बातें हुई। अन्त में निर्णय हुआ कि यदि राणा का कुंवर खान के साथ जाकर शाहजहाँ से मिले तो वह महाराणा को चौदह देश दिलवाएगा।

यह सोचकर कि बादशाह के शाहज़ादे के साथ हमारे पूर्वजो के राजकुमार सन्धि करते आये हैं, महाराणा राजसिंह ने दाराशिकोह और कुछ ठाकुरों के साथ अपने ज्येष्ठ राजकुमार सुल्तानसिंह को शाहजहाँ के पास भेजा और उससे सन्धि की।

इसके बाद राजसिंह ने अपनी माता जनादे से चांदी का तुलादान करवाया तथा गज-दान के निष्क्रय स्वरूप पांच सौ रुपये मधूसूदन भट्ट को दिये। वैश्य राघवदास को भेजकर उसने रूपसिंह राठौड़ को मांडलगढ से भगा दिया।

स. १७१३, कार्तिकी पूर्णिमा के दिन राजसिंह ने एकलिंग में २५० पल सोने का 'ब्रह्माण्ड[1]' नामक दान दिया। अश्वमेध का पुण्य प्राप्त करने के लिये उसने सं. १७१९, पौष शुक्ला एकादशी को अपने गुरु मधुसूदन भट्ट को सोने के पलान सहित 'नवल' नामक अश्व प्रदान किया और उसके बदले में नौ हजार रुपये देकर उसे काशी भेज दिया। काशी पहुँचकर मधुसूदन ने देवदर्शनादि करते समय महाराणा को आशीर्वाद दिया।

सातवाँ सर्ग— सं. १७१४, वैशाख शुक्ला १० के दिन राजसिंह ने विजय-यात्रा प्रारंभ की। उसके पास प्रबल सैन्य बल था, जिसे देखकर

---

१ देखिये, परिशिष्ट संख्या ३।

शत्रु काँप उठे। उसके प्रयाण करने पर अंग, कलिंग, वंग, उत्कल, मिथिला, गौड़, पूरब देश, लंका, कोंकण, कर्णाट, मलय, द्रविड़, चोल, सेतुबन्ध सौराष्ट्र कच्छ, टट्टा, बलख, खंधार, उत्तर दिशा, दरीबा, मांडल, फूलिया, राहेला, शाहपुरा, केकड़ी, साँभर, जहाजपुर, सावर, गौड़ों और कछवाहों के देश, रणथभौर, फतहपुर, बयाना, अजमेर और टोड़ा आतंकित हो गये। दरीबा नगर लूट लिया गया। मांडल और शाहपुरा के योद्धाओं ने दंड स्वरूप बाईस-बाईस हजार तथा बनेड़ा के वीरों ने बीस हजार रुपये राजसिंह को दिये।

उस समय टोड़ा में रायसिंह राज्य कर रहा था। राजसिंह ने साथ में तीन हजार सैनिक देकर अपने प्रधान फतहचंद को वहाँ भेजा और दंड रूप में वहाँ से साठ हजार रुपये प्राप्त किये। दंड की यह रकम रायसिंह की माता ने जमा करवाई।

इस विजय-यात्रा में राजसिंह के किसी सुभट ने वीरमदेव के महिरव नामक नगर को जला दिया। महाराणा के सैनिकों ने मालपुर को नौ दिनों तक लूटा। इसके बाद टोंक, सांभर, लालसोट, और चाटसू नामक गांवों को जीत कर उन्होंने वहाँ से कर वसूल किया।

मालपुर में जहाँ राणा अमरसिंह केवल दो पहर ठहर पाया था, वहाँ राजसिंह नौ दिनो तक ठहरा। छाइनि नामक नदी मे बाढ आ जाने से वह आगे नही बढ़ सका और अपने नगर उदयपुर लौट आया।

अन्तिम श्लोक मे, राजसिंह के लौटने पर सजाये गये उदयपुर का वर्णन है। इस सर्ग मे ४५ श्लोक हैं।

आठवाँ सर्ग—सं. १७१४ के ज्येष्ठ माह में राजसिंह छाइनि नदी के तट पर शिविर में ठहरा हुआ था। वहाँ उसने औरंगजेब के दिल्ली-पति बनने के समाचार सुने। उसको प्रसन्न करने के लिये तब उसने अपने भाई अरिसिंह को उसके पास भेजा। अरिसिंह सिहनद पर्यन्त पहुँचा। औरंगजेब ने उसे डूँगरपुर आदि देश एवं हाथी इत्यादि दिये। अरिसिंह ने वे सब राजसिंह को भेट कर दिये। प्रसन्न होकर राजसिंह ने भी उसे यथोचित उपहार दिया।

सं. १७१४ में औरंगजेब और उसके बड़े भाई शुजा के बीच जब युद्ध हुआ तब राजसिंह ने औरंगजेब की सहायता के लिये कुंवर सरदारसिंह को भेजा था। सरदारसिंह विजयी हुआ। औरंगजेब ने उसे भी देश, अश्व, गज आदि प्रदान किये।

स० १७१५, वैशाख कृष्णा ९, मगलवार को राजसिंह की आज्ञा से उसके मंत्री फतहचंद ने बाँसवाड़ा पर आक्रमण किया। उसके साथ पाँच हजार अश्वारोही ठाकुरों की सेना थी। उसने वहाँ के रावल समरसिंह से दंड के रूप में एक लाख रुपये, देशदाण, एक हाथी, एक हथिनी तथा दस गाँव लेकर महाराणा की अधीनता स्वीकार करवाई। राजसिंह ने प्रसन्न होकर उक्त सपत्ति मे से दस गांव, देशदाण और बीस हजार रुपये वापस लौटा दिये।

तदुपरान्त फतहचन्द ने दवलिया को नष्ट कर दिया। हरिसिंह वहाँ से भाग गया। तब उसकी माता अपने पौत्र प्रतापसिंह को लेकर फतहचन्द के पास पहुंची। फतहचन्द ने उससे दण्ड स्वरूप केवल बीस हजार रुपये और एक हथिनी प्राप्त की तथा प्रतापसिंह को राणा के चरणों में ला रखा।

सं० १७१६ में राजसिंह ने ठाकुरों द्वारा डूंगरपुर के रावल गिरधर को बुलवाया और उससे अपनी अधीनता स्वीकार करवाई।

उसने सिरोही के स्वामी अखैराज को प्रेम से ही अपने अधीन कर लिया। इसके बाद देवारी के विशाल घाटे में उसने एक सुदृढ़ द्वार बनवाया, जिससे शत्रु रोके जा सकें। उसमें दो बड़े-बड़े किवाड़ और अर्गला लगवाई गई। वहाँ उसने सुदृढ़ कोट भी बनवाया।

सं० १७१७ में महाराणा एक बड़ी सेना लेकर किशनगढ़ पहुंचा, जहाँ उसने राठोड़ रूपसिंह की पुत्री, जो दिल्ली-पति के लिये रखी गई थी, से पाणिग्रहण किया। सं० १७१९ में उसने मेवल देश को अपने अधीन किया। तब उसके योद्धाओं ने वहाँ की मीणा जाति के बहुत से सैनिक नष्ट कर दिये। राजसिंह ने वस्त्र, अश्व और धन देकर अपने सामन्तों को समूचा मेवल दे दिया।

सं० १७२० में राणा की आज्ञा से राणावत रामसिंह सेना लेकर सिरोही पहुँचा। वहाँ अपने पुत्र उदयभान द्वारा कैद किये गये राव अखैराज को मुक्त करवाकर उसने पुनः उसे अपने राज्य पर स्थापित किया।

सं० १७२१, मार्गशीर्ष शुक्ला ८ के दिन राजसिंह ने वांधव के स्वामी वाघेला राजा अनूपसिंह के कुमार भावसिंह के साथ अपनी पुत्री अजवकुँवरी का विवाह किया। इस अवसर पर उसने अपने संबंधियों की ९८ पुत्रियों का अन्य क्षत्रिय कुमारों के साथ विवाह किया। महाराणा वांधव के रहने वाले अस्पर्शभोजी क्षत्रियों के साथ वैठकर जब भोजन करने लगा तब उन्होंने कहा— "राणा राजसिंह का जो अन्न है, वह जगन्नाथराय का प्रसाद है। इस कारण यह बहुत पवित्र है। इसे खाकर हम पवित्र हो गये हैं।" फिर राजसिंह ने समस्त दुल्हों को हय, गज और आभूषण प्रदान किये ।

महाराणा ने स. १७२१ के माघ महीने में सूर्यग्रहण के अवसर पर हिरण्यकामधेनु[1] नामक महादान दिया, जिसमें दो हजार रुपयों का सोना लगा। सं. १७२५ में उसने वडी गाँव में सरोवर का उत्सर्ग और उस अवसर पर चाँदी का तुलादान किया, तथा उस सरोवर का नाम जनासागर रखा। इस अवसर पर उसने अपने मुख्य पुरोहित गरीबदास को गुणहंडा और देवपुरा नामक गाँव दिये। उक्त सरोवर के निर्माण में छह लाख और अस्सी हजार रुपये व्यय हुए।

उसी दिन महाराणा की आज्ञा से महाराजकुमार जयसिंह ने उदयपुर में 'रंगसर' नामक सरोवर की प्रतिष्ठा की और उस अवसर पर अनेक दान दिये।

यह सर्ग ५४ श्लोकों में पूरा हुआ है।
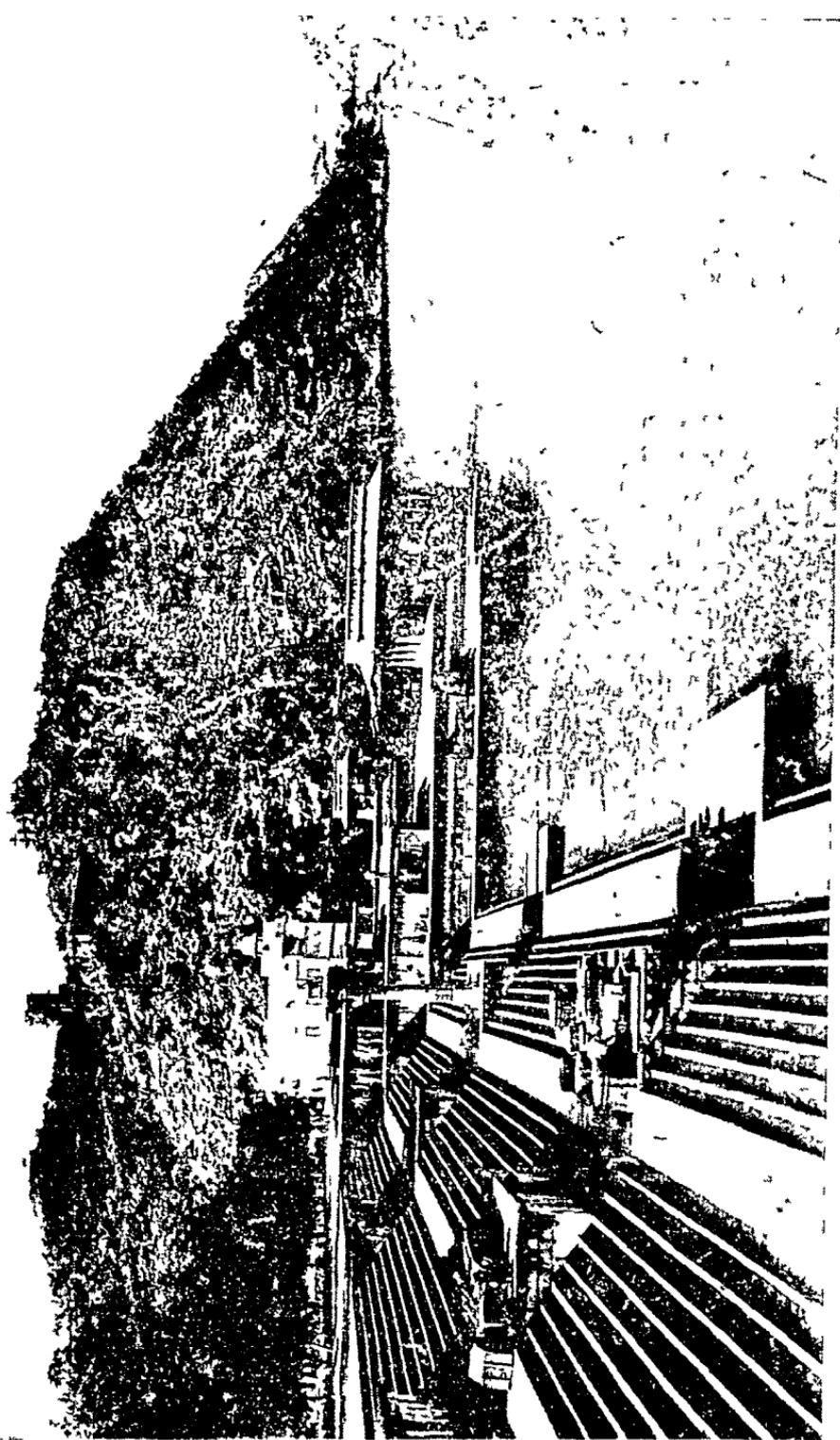
नवाँ सर्ग—इसमें ४८ श्लोक हैं। प्रथम श्लोक में गोवर्द्धनधारी कृष्ण की वन्दना है। इसके बाद राजसमुद्र के निर्माण का इतिवृत दिया गया है।

---

१ देखिये, परिशिष्ट संख्या ३।

महाराणा जगतसिंह के राजत्वकाल में, सं. १६९८ मे, कुमार-पद पर रहते हुए राजसिंह विवाह करने के लिये जैसलमेर गया। उस समय उसकी आयु १२ वर्ष की थी। जैसलमेर जाते हुए उसने धोयंदा, सनवाड़, सिवाली भिगावदा, मोरचणा, पसूंद, खेड़ी, छापरखेड़ी, तासोल, मंडावर, भाण, लुहाणा, वांसोल, गुढली, कांकरोली और मढ़ा नामक गाँवों की सीमा में तड़ाग के निर्माण योग्य भूमि देखकर वहाँ एक जलाशय वनवाने का विचार किया। गद्दीनशीनी के बाद सं. १७१८ के मार्गशीर्ष मे रूपनारायण के दर्शन करने के लिये जब वह उधर निकला तब उसने एक बार फिर इस भूमि को देखा और वहाँ तड़ाग बांधने का निश्चय किया। सलाह लेने पर पुरोहित ने उसे वताया कि यह कार्य होना चाहिये, पर यह तभी हो सकता है, जब पूर्ण विश्वास हो, दिल्ली-पति से विरोध नही हो तथा धन का प्रचुर व्यय किया जाय। उत्तर में राजसिंह ने कहा—"ये तीनो बातें हो सकती है।"

राजसमुद्र के निर्माण-कार्य को प्रारंभ करने के लिये उसने सं. १७१८, माघ कृष्णा ७, बुधवार का मुहूर्त्त निकलवाया। पुरोहित के प्रति उसकी अमित श्रद्धा थी। इस कारण इस काम मे भी उसने उसे आगे रखा। कार्यारंभ उसने अपनी देख-रेख में करवाया। इसलिये उसके कई विभाग वनाये गये। राजसिंह ने वे विभाग अपने योग्य सामन्तों को सौंप दिये।

राजसमुद्र के निर्माण में सब से पहिले बड़े-बड़े दो पर्वतों के बीच गोमती नदी को रोकने व महासेतु बाँधने का प्रयत्न किया गया। महासेतु बाँधने के लिये खुदाई का काम बडे व्यापक रूप में आरंभ हुआ, जिसमे असंख्य लोग जुट गये। खुदाई हो चुकने पर वहां से जल निकालने का प्रयत्न प्रारंभ हुआ। उसके लिये अनेक रहंटों के अतिरिक्त वे सभी उपाय काम में लाये गये जो भारतवर्ष में उपलब्ध थे। सूत्रधारों और ग्रामीणों द्वारा वताये गये जल निकालने के उपायों को भी काम में लिया गया। वहाँ से जो पानी निकला, उसे लोग नहरों द्वारा गाँव-गाँव मे ले गये।

राजसमुद्र सरोवर का नोचौकी घाट–पश्चिमी भाग का दृश्य

पानी निकल जाने पर सं. १७२१, वैशाख शुक्ला १३, सोमवार को राजसिंह ने नींव भरने का मुहूर्त्त किया। सर्वप्रथम पुरोहित गरीबदास के ज्येष्ठ पुत्र रणछोड़राय ने पांच रत्नों से युक्त एक शिला वहाँ रखी।

सेतु के पर भाग में पाताल से सफेद, लाल और पीली मछलियाँ निकली एवं स्वच्छ गर्भोदक निकला। उन्हें देखकर सूत्रधारों ने बताया कि यहाँ अति अगाध जल होना चाहिये। सूत्रधारों के कथन को सुनकर राजसिंह प्रसन्न हुआ।

दसवाँ सर्ग—इस सर्ग में ४३ श्लोक हैं। पहले श्लोक में द्वारकानाथ की स्तुति है। इसके बाद कथा-क्रम इस प्रकार चलता है।

सं. १७२६, वैशाख शुक्ला १३ के दिन राजसिंह ने कांकरोली में सेतु के निर्माण का मुहूर्त्त किया। आषाढ़ से पूर्व ही ज्येष्ठ महीने में वर्षा होने से सरोवर में नया जल आ गया। इसी वर्ष आषाढ़ कृष्णा पंचमी रविवार को सूत्रधारों ने मुख्य सेतु के भू-पृष्ठ को सुधा-पूरित शिलाओं से भरना प्रारंभ किया। उन्होंने वहाँ एक सुदृढ़ दीवार-सी बना दी। इस काम में उनको आठ वर्ष, पाँच महीने और छह दिन लगे।

राजसिंह ने सं. १७२६, कार्तिक कृष्णा द्वितीया को सौ पल सोने के पाँच कल्पद्रुमोंसहित 'महाभूतघट'[1] और हिरण्याश्वरथ'[2] नामक दो महादान दिये। महाभूतघट सौ पल सोने से बना था और हिरण्याश्वरथ एक हजार के मूल्य का था। इन दोनों दानों में ११६७० रुपये व्यय हुए।

महाराणा ने सुवर्णशैल पर 'राजमन्दिर' नामक एक अनुपम राजप्रासाद बनवाया और उसमें सं. १७२६, मार्गशीर्ष शुक्ला दशमी के दिन प्रवेश किया।

---

१ देखिये परिशिष्ट संख्या ३।

२ वही।

स. १७२७ में उसने अपने जन्मदिन के अवसर पर हेमहस्तिरथ[१] नामक महादान दिया। उनमें एक हजार बीस तोले सोना लगा।

इसी वर्ष आषाढ़ कृष्णा चतुर्थी को उसने नौका–स्थापन का मुहूर्त्त निकलवाया। लेकिन सरोवर में इतना जल नहीं था कि नौका तैरायी जा सकती। इस कारण मुहूर्त्त से एक दिन पूर्व तृतीया को लोगों ने इस संवध में विचार किया। सोचा गया कि एक ओर तो सरोवर मे जल नहीं है और दूसरी ओर इस वर्ष दूसरा मुहूर्त्त नहीं आ रहा है। यही नही, अगले वर्ष भी वृहस्पति के सिहराशि पर होने से मुहूर्त्त नही आ सकेगा। इस पर राणावत रामसिंह, जो तड़ाग के निर्माण--कार्य में प्रमुख था, बोला—"सरोवर में और पानी भरकर नौका--स्थापन का मुहूर्त्त साधा जा सकता है।" तव पुरोहित गरीवदास से राजसिंह ने कहा कि वड़े–बड़े लोगों की वातें सुनकर मुझे आश्चर्य होता है। लेकिन यह काम तो होगा। पुरोहित का कथन सुनकर राजसिंह को प्रसन्नता हुई। गरीवदास ने वरुणसूक्त[२] का जाप करने के लिये व्राह्मणों को आदेश दिया। महाराणा ने भी उक्त मुहूर्त्त पर नौका–स्थापन की प्रतिज्ञा कर ली। तव इन्द्र ने यह सोचकर कि यदि इस समय वर्षा नहीं हुई तो लोग मुझे दोषी ठहराएँगे, तृतीया के दिन दूसरे प्रहर मे वर्षा की और राजसिंह ने यथा समय नौकाधिरोहण किया।

स. १७२८ मे ज्येष्ठ महीने की पूर्णिमा को सूत्रधारो ने राजसिंह की आज्ञा से नाले का मुंह वद कर दिया।

महाराणा ने सं. १७२९ के माघ महीने में चन्द्रग्रहण के अवसर पर कल्पलता[३] नामक दान दिया, जो २५० पल सोने का बना था। इसी प्रकार १८० तोले सुवर्ण के वने पाँच हल एव साथ मे भावली गाँव देकर उसने

१ देखिये, परिशिष्ट सख्या ३।

२ वरुणसूक्त = वरुण सवंधी वैदिक मन्त्र।

३ देखिये, परिशिष्ट संख्या ३।

'पंचलांगल'[1] नामक महादान प्रदान किया। उक्त दोनों दानों में १०२८ तोले सुवर्ण लगा।

सं. १७२९ फाल्गुन कृष्णा ११ को राजसिंह ने मुख्य सेतु पर संगि-कार्य[2] का मुहूर्त्त करवाया। ज्येष्ठ शुक्ला सप्तमी के दिन उसने एकलिंगजी के निकट 'इन्द्रसर' नामक सरोवर पर एक सुन्दर व सुदृढ़ परकोटा बनवाया, जिसमें चार प्रतोलियाँ रखी गई। इस काम में अठारह हजार रुपये व्यय हुए। महाराणा के आदेश से रणछोड़ भट्ट ने एक प्रशस्ति की रचना की, जिसे सुनकर उसने उसे शिला पर खुदवाने की आज्ञा दी।

ग्यारवाँ सर्ग—इस सर्ग में ५७ श्लोक है, जिनमें राजसमुद्र के सेतुओं का वर्णन है।

मुख्य सेतु—इसकी लंबाई नीव में ५१५ गज है और सिरे पर ५८१। इसकी चौड़ाई नीव मे ५५ और सिरे पर १० गज है। ऊंचाई में यह २२ गज नीव में तथा ३५ गज ऊपर है। ऊंचाई का विवरण इस प्रकार है— ८ गज का पीठ, १॥ गज की तीन मेखलाएँ, १२॥ गज के ३ तिलक और १३ गज के ४ स्थर। पृथ्वी पर की यह ऊंचाई ३५ गज हुई। नींव की ऊंचाई जोड़ने पर सेतु की कुल ऊँचाई ५७ गज होती है। उक्त चार स्थरों में से प्रत्येक में ९ सोपान है, जिनकी कुल संख्या ३६ है।

यहाँ ३ बुरिजकोष्ठ हैं। प्रासाद की ओर बना कोष्ठ लंबाई में ५० और निर्गम में २५ गज है। उसका वृत ७५ तथा ऊंचाई ३० गज है। मध्य का कोष्ठ लबाई मे ७५ और निर्गम में ३७॥ गज है। उसका वृत ११२॥ तथा ऊँचाई ३५ गज है। तीसरा कोष्ठ प्रथम कोष्ठ के समान है। मिट्टी का भराव १४५ गज है। सेतु के पिछले भाग की लंबाई ७०० गज कही

---

१ देखिये, परिशिष्ट संख्या ३।

२ पत्थर जोड़ने का काम।

गई है। उसका विस्तार नीव में १८ और ऊपर ५ गज है। ऊँचाई में वह २८ गज है।

सेतु पर चार वेद[1] बने हैं, जिनमें से एक राजमंदिर की दिशा में चतुरस्र स्थान पर निर्मित है। वहाँ एक रहँट लगा है, जो राजमंदिर स्थित वापिका में जल पहुँचाने के लिये है।

नौ चोकियो वाले यहाँ ३ मडप है। पहले मडप में एक गवाक्ष है जिससे राजसमुद्र का जल देखा जाता है। शेप दो राजमंडप हैं। इनके अतिरिक्त वहाँ एक और मडप है जो ६ चतुष्कियों वाला है। सेतु के पिछले भाग में ३ मंडप और एक सभामंडप बना है।

निम्बसेतु—इसकी लंबाई ४३२ गज है। इसका विस्तार नीव में १५ और सिरे पर ५ गज है। ऊँचाई में यह १० गज है।

भद्रसेतु—इसकी लंबाई १४४ गज है। चौडाई नीव में १२ तथा सिरे पर ५ गज है। ऊँचाई में १३ गज है। यहाँ एक चतुष्कोण कोष्ठ बना है। मिट्टी का भराव २० गज है।

काँकरोली का सेतु—इस सेतु की लंबाई नीव में ५५० और सिरे पर ७५६ गज है। इसका विस्तार नीव में ३५ तथा सिरे पर ७ गज है। इसकी ऊँचाई नीव में १७ और ऊपर ३८ गज है। यहाँ तीन कोष्ठ बने हैं। सभामंडप की ओर बना कोष्ठ विस्तार में २८ और निर्गम में १४ गज है। इसकी ऊँचाई ३६॥ गज है। मध्य का कोष्ठ विस्तार में ३६, निर्गम में १५ और ऊँचाई में ३८ गज है। पूर्व दिशा में बना कोष्ठ विस्तार में २८, निर्गम में ०२ और ऊँचाई में ३७ गज है। मिट्टी का भराव १४५ गज है। सेतु के पिछले भाग की लंबाई १००० गज है। उसका विस्तार नीव में १५ और सिरे पर १० गज है। उसकी ऊँचाई ३८ गज होती है, पर आज

---

1 वेद = वेदी।

२२ गज है। मिट्टी के भराव में वहाँ शिव का एक प्राचीन मन्दिर आ गया था जिसे सुरक्षित कर लिया गया और दर्शनार्थियों के लिये वहाँ एक मार्ग बनाया गया।

इस सेतु के अग्र भाग पर चार स्तंभों वाले तीन मंडप तथा एक सभामंडप है। सेतु के आगे पर्वत पर जो शिलाकार्य हुआ है उसकी लंबाई ३०० गज है। चौड़ाई और ऊँचाई में वह ५ गज है। गौघाट के पार्श्व में उसकी लंबाई ५४ और विस्तार १० गज है। उसकी ऊँचाई ३ गज है। गौघाट की लंबाई और चौड़ाई ५४–५४ गज है। नीव में उसकी ऊँचाई ५ गज है। वहाँ एक मंडप बना है।

आसोटिया ग्राम के पार्श्व में बना सेतु—इसकी लंबाई २०६८ गज है। इसका विस्तार नीव में १८ और सिरे पर ७ गज है। ऊँचाई में यह २४ गज है। यहाँ दो कोष्ठ बने हैं। पहला कोष्ठ अष्टकोण है। वह लंबाई में २८, निर्गम में १४ तथा ऊँचाई में २४ गज है। दूसरा कोष्ठ 'अर्द्धचन्द्र' नाम से प्रसिद्ध है। उसकी लंबाई २०, चौड़ाई १० और ऊँचाई १२ गज है। मिट्टी का भराव १४५ गज है। सेतु के पिछले भाग की लंबाई नीव में १३०० गज और इतनी ही सिरे पर है। उसका विस्तार १० और ऊँचाई ५ गज है। इस सेतु के अग्र भाग पर २ मंडप बने हैं।

वाँसोल ग्राम के पार्श्व में बना सेतु— यह सेतु १२२४ गज लंबा है। इसका विस्तार नीव में १८ और सिरे पर ५ गज है। इसकी ऊँचाई १३ गज है। यहाँ तीन कोष्ठ हैं। कोण में स्थित पहला कोष्ठ चतुष्कोण है। लंबाई और चौड़ाई में वह २०–२० गज है। उसकी ऊँचाई १२ गज है। यहाँ एक रहँट भी है।

मध्य का कोष्ठ अर्द्धचन्द्राकार है। लंबाई और निर्गम में वह १२ गज है। उसकी ऊँचाई १७ गज है। तीसरा कोष्ठ अष्टकोण है और 'कमल-बुरिज' नाम से प्रसिद्ध है। लंबाई–चौड़ाई में वह ३० गज है। उसकी

ऊंचाई ९ गज है। वहाँ संगमरमर का बना एक सुन्दर मंडप है। उसमें आठ पुत्तलिकाएँ बनी हैं।

बारहवाँ सर्ग—बांसोल गाँव के पार्श्व में बने सेतु पर तीन ओटाएँ हैं। पहली ओटा की लंबाई, चौड़ाई और ऊँचाई क्रमशः २५०, १० एवं १।। गज है। दूसरी ओटा लंबाई-चौड़ाई में पहली ओटा के समान है। ऊँचाई २।। गज है। तीसरी ओटा लंबाई मे ३०० और विस्तार में १० गज है। उसकी ऊँचाई २ गज है। वहाँ तीन मंडप बने हैं।

पश्चिम में, मोरचणा गांव की सीमा में, सरोवर के भीतर एक पहाड़ी है, जिसकी चोटी पर एक मंडप है। वहाँ छह स्तंभों वाला एक और मंडप है। इस प्रकार मंडपों की कुल संख्या २१ है।

राजसमुद्र मे सिवाली, भिगावदा, भाण., लुहाणा, बांसोल और गुढली नामक गाँव; पसूँद, खेड़ी, छापरखेड़ी, तासोल, और मंडावर गाँवों की सीमाएँ तथा कांकरोली, लुहाणा और सिवाली के जलाशय, निपान, वापी एवं कूप, जिसकी सख्या ३० है, डूबे है। इस सरोवर में तीन नदियां गिरी हैं—गोमती ताल और केलवा की नदी।

सेतु की संपूर्ण लंबाई ६४१३ गज है। गालायोग के अनुसार सूत्रधारो ने इसकी लंबाई आठ हजार गज बताई है। विश्वकर्मा के मत से तड़ाग की लंबाई अधिक से अधिक छः हजार गज होती है। इस आधार पर इतना लंबा सरोवर किसी ने बनाया हो, इसमें सन्देह है। लेकिन राजसिंह ने तो सात हजार गज लबे जलाशय की रचना की है।

राजसमुद्र के सेतु पर १२ कोष्ठ हैं। यहाँ कुल ४८ मंडपों का निर्माण हुआ था, जिनमें कुछ वस्त्र के, कुछ काष्ठ के और कुछ पत्थर के थे। उनमें से अब पत्थर के बने केवल दो मंडप शेष रहे हैं।

पहले यहां महाराणा उदयसिंह ने सेतु बाँधने का बड़ा प्रयत्न किया था। पर उसमें उसे सफलता नहीं मिली। तब उसने उदयसागर बनवाया। तदनन्तर

कुबेर के समान राजसिंह ने धन का व्यय किया और इस सेतु का निर्माण करवाया। पृथ्वी पर सेतुओं के निर्माता तीन हुए है—रामचन्द्र, राणा उदयसिंह और राजसिंह। इसके अतिरिक्त ऐसे व्यक्ति न तो हुए, न होंगे और न हैं।

सं. १७३० के भाद्रपद महीने में ताल नामक नदी पूरे वेग से आई, जिससे वहां के मकान जलमग्न होकर नष्ट हो गये। इसी वर्ष आश्विन में, आधी रात में, गोमती नदी आई। उसके गिरने पर राजसमुद्र में आठ हाथ पानी चढ़ा। राजसिंह ने उस जल को सरोवर में रखा।

सं. १७३० के माघ महीने की पूर्णिमा को राजसिंह ने 'सुवर्णपृथिवी'[1] महादान दिया। इस दान मे २८ हजार रुपये खर्च हुए।

सं. १७३१. श्रावण शुक्ला ५ को राजसमुद्र में सुन्दर नौकाएँ डाली गईं, जिनको देखने के लिये लाहौर, गुजरात और सूरत के सूत्रधार वहाँ आये। इसी वर्ष अपने जन्म-दिन पर महाराणा ने पाँच सौ पल सोने का 'विश्वचक्र'[2] महादान प्रदान किया।

इस सर्ग में ४१ श्लोक है।

तेरहवाँ सर्ग—राजसमुद्र का निर्माण हो चुकने पर राजसिंह ने उसकी प्रतिष्ठा के अवसर पर राजाओ, दुर्गाधिपतियों तथा अपने संबधी भूपालों को निमन्त्रण दिया और उन्हें लिवा लाने के लिये उनके पास अश्व, रथ पालकियाँ, हथिनियाँ, विश्वासपात्र मनुष्य, व ब्राह्मण भेजे।

महाराणा के कर्मचारियों ने उस समय वस्त्र, आभूषण, रत्न, मुद्राएं, पात्र, कस्तूरी आदि विपुल मात्रा में जमा किये। धन का समुचित प्रवन्ध किया गया। धान्यादि के बाजार लगे और शिविर एवं नाना प्रकार की

---

१ देखिये, परिशिष्ट संख्या ३।

२ वही।

बड़ी-बड़ी शालाओं का वहाँ निर्माण हुआ। खाद्य सामग्री की व्यवस्था की गई। राजसिंह के दान करने के लिये हाथी, घोड़े तथा रथ एकत्र किये गये। महाराणा के संमुख तब किसी व्यापारी ने २० मदमत्त हाथी प्रस्तुत किये। राजसिंह ने उनमें से १७ हाथी खरीदे। इसके बाद कोई दूसरा व्यापारी दो हाथी लेकर आया। यह सोचकर कि प्रतिष्ठा के अवसर पर दान करने के लिये हाथियों की आवश्यकता होगी, राजसिंह ने उनको भी खरीद लिया।

आमंत्रित राजा सपरिवार वहाँ आये थे। उनके घोड़ों, हाथियों और रथों से समूचा नगर भर गया। उस अवसर पर ब्राह्मण जाति के धुरंधर विद्वान्, अनेक चारण कवि और सुप्रसिद्ध वन्दीजन भी आये।

निमन्त्रण देने पर अपने-पराये लोगों द्वारा भेंट स्वरूप जो वस्तुएँ प्राप्त हुई, महाराणा ने उनमें से कुछ वस्तुएँ रखीं और कुछ उनको वापस लौटा दी।

सं० १७३२, माघ शुक्ला द्वितीया को राजसिंह की रानी श्री रामरसदे ने देवारी के घाटे में बनी वापिका की प्रतिष्ठा करवाई। इस वापी के निर्माण में २४ हजार रुपये व्यय हुए।

महाराणा ने राजसमुद्र के सेतु पर तीन मंडप तैयार करने के लिये सूत्रधारों को आदेश दिया। एक मंडप सरोवर की प्रतिष्ठा के निमित्त तथा शेष दो सुवर्ण-तुलादान एवं हाटक-सप्तसागरदान के लिये बनाये गये। तदनन्तर उसने जलाशय की प्रतिष्ठा का मुहूर्त्त निकलवाया—सं० १७३२, माघ शुक्ला १० शनिवार। इसके पूर्व माघ शुक्ला ५ को उसने अधिवासन कर मत्स्यपुराण के अनुसार २६ ऋत्विजों का वरण किया।

चौदहवाँ सर्ग—राजसिंह की पटरानी का नाम सदाकुँवरि था। वह परमार कुल-भूषण राव इन्द्रभान की पुत्री थी। सदाकुँवरि ने जब रजत-तुलादान करने की आज्ञा दी तब लोगों ने उसके लिये रातोंरात एक मंडप तैयार किया।

पुरोहित गरीबदास और उसके पुत्र ने सोने एवं चांदी के तुलादान करने के लिये दो मंडप बनवाये। राणा अमरसिंह के पुत्र भीमसिंह की पत्नी ने भी रजत-तुलादान करने का निश्चय किया। महाराणा के लोगों ने उसके लिये अविलंब एक मंडप बनाया।

बेदला के राव बल्लू चौहान का पुत्र रामचन्द्र था। उसके द्वितीय पुत्र का नाम केसरीसिंह था, जिसे राजसिंह ने संलूबर का राव बनाया था। उसने चाँदी की तुला करने के लिये अपने भाई राव सबलसिंह से परामर्श किया। सबलसिंह ने कहा कि तुम्हें राजसिंह ने राव बनाया है। इसलिये तुमको तुलादान करना चाहिये। यह सुनकर केसरीसिंह तैयार हो गया। उसने भी एक मंडप बनवाया। रजत-तुलादान करने के लिये बारहट केसरीसिंह ने भी सेतु-तट पर खादरवाटिका के समीप एक सुन्दर मंडप तैयार करवाया।

इसी वर्ष माघ शुक्ला ७ के दिन राजसिंह की रानी, राठौड़ रूपसिंह की पुत्री, ने राजनगर में वापिका की प्रतिष्ठा कराई। इस वापिका के निर्माण-कार्य पर ३० हजार रुपयों का व्यय हुआ।

नवमी के दिन राजसिंह पुरोहित के साथ मंडप में पहुँचा। उसने प्रथम दिन एकभुक्त रहकर उपवास किया। वहाँ उसने पुरोहित एवं अन्य ब्राह्मणों के साथ स्वस्तिवाचन किया। तब उसने पृथ्वी, गणेश, कुलदेवी एव गोविन्द की पूजा की। फिर उसने पुरोहित गरीबदास एवं अन्य ब्राह्मणों का वरण किया।

वरणोपरान्त महाराणा ने ब्राह्मणों को दक्षिणा दी। तब गरीबदास को वस्त्र, मुक्ता-मणि-जटित कुंडल, मणि-जटित अगूँठियाँ, रत्न-जटित कड़े एवं अंगद, सोने के यज्ञोपवीत, नाना प्रकार के आभूषण, सुवर्ण के जल-पात्र और भोजन-पात्र मिले। अन्य ब्राह्मणों को महाराणा ने अनेक सुवर्णाभूषण, मणि-जटित अगूठियाँ, चाँदी के पात्र और पर्याप्त वस्त्र प्रदान किये।

इस सर्ग में ४० श्लोक हैं।

पन्द्रहवाँ सर्ग--इसके बाद राजसिंह ने बड़े ठाट-बाट से जल यात्रा की तदनन्तर वह मंडप में पहुँचा और वहाँ उसने पूजा-विधान किया। रात्रि-जागरण कर दूसरे दिन वह मंडप में पहुंचा। उसने अपने समस्त कुटुंबियों, पुरोहितों की पत्नियों तथा राजाओ की रानियों को वहाँ बुलाया और प्रतिष्ठा के अद्भुत एवं सुन्दर कार्य को देखने के लिये उन्हें वहाँ बैठाया। पटरानी को साथ लेकर उसने वरुण आदि देवताओं की पूजा की।

महाराणा ने राजसमुद्र को दूसरा रत्नाकर बनाने की इच्छा से उसमें नौ रत्न डाले और मत्स्य, कच्छप एवं मकर छोड़े। बाद मे उसने ऋत्विजों की सहायता से गो-तारण की विधि को पूरा किया। गो-तारण के अनन्तर उसने सरोवर के नामकरण के लिये पुरोहित से पूछा। पुरोहित ने कहा कि इसका नाम अरिसिंह बतावेंगे। इस पर महाराणा ने पुनः आज्ञा दी कि इसका नाम पुरोहित को ही बताना चाहिये। तब पुरोहित ने दो नाम बताये- 'राजसागर' और 'राजसमद्र'। महाराणा ने 'राजसागर' को सरोवर के जन्म-नाम और 'राजसमुद्र' को अपरनाम के रूप मे स्वीकार किया और पांच दिन बाद शुभ मुहूर्त्त में जलाशय का नामकरण किया गया।

ऋत्विजों ने महामंडप में होम, वेद-पाठ; जप, आदि संपन्न किये। महाराणा ने राजसमुद्र की प्रदक्षिणा करने का सकल्प किया।

यह सर्ग ३९ श्लोको मे पूरा हुआ है।

सोलहवाँ सर्ग—महाराणा उदयसिंह ने सं० १६२२, वैशाख शुक्ला तृतीया को उदयसागर की प्रतिष्ठा की थी। जब उसने उसकी परिक्रमा की तब वह सपत्नीक पालकी मे बैठा था। इसलिये जब राजसमुद्र के सूत्र-निवेशन का अवसर आया तब रावल जसवंतसिंह राजसिंह से बोला कि आपको भी राणा उदयसिंह की तरह पालकी मे बैठ कर या अश्वारूढ़ होकर राजसमुद्र की प्रदक्षिणा करनी चाहिये। प्रदक्षिणा पूरी होने पर वह अश्व किसी ब्राह्मण को दे दिया जाय। राजसिंह सुनकर चुप रहा।

इसके बाद वह बड़े ठाट-बाट से प्रदक्षिणा करने के लिये तैयार हुआ। उसकी समस्त रानियों के वसनांचलों से उसका अंशुकांचल बँधा हुआ था। वेद-विहित सूत्र-संवेष्टन कार्य के लिये उसने हाथों में कुंकुम-रंजित नवतन्तु ले रखे थे।

यह सोचकर कि महाराणा सुख से परिक्रमा कर सके, उसके लोगों ने मार्ग में वस्त्रों की पट्टियां बिछाई। पर राजसिंह ने उन्हें पांवों से छुआ तक नहीं और उनको वहाँ से हटवा दिया। यही नहीं, उसने पाँवों पहनीं हुई कपड़े की बनी जूतियां भी उतार दीं। उसके चरण कोमल थे, फिर भी वह पैदल ही चला।

राजसमुद्र की परिक्रमा उसने दाहिनी ओर से प्रारम्भ की। प्रदक्षिणा करते समय मार्ग में उसे जो लोग मिले उन्हें प्रचुर दक्षिणा देकर उसने सन्तुष्ट किया। उस समय वर्षा हो रही थी।

पैदल यात्रा में राजसिंह का छोटा भाई अरिसिंह भी था। थका हुआ देखकर महाराणा ने उसे पालकी में बैठने का आदेश दिया। उसकी परमार-वंशीय रानी भी थक गयी थी। उसे भी उसने पालकी में बैठने की आज्ञा दी।

परिक्रमा पूरी कर चुकने पर राजसिंह ने समस्त पुष्प-मालाएँ, जो उसे प्रदक्षिणा करते समय प्राप्त हुई थीं, राजसमुद्र में डाल दी। राजसमुद्र १४ कोस लंबा-चौड़ा है। इसकी प्रदक्षिणा करते समय उसने मार्ग में पाँच शिविर लगाये।

उस अवसर पर आये हुए लोगों को महाराणा ने अन्न, धन, वस्त्रादि देकर सन्तुष्ट किया। तत्पश्चात् उसने सुवर्ण-तुला-दान एवं सप्तसागरदान करने के पूर्व, चतुर्दशी के दिन, अधिवासन किया। दोनों मंडप सजाये गये। पृथ्वी, विष्णु, गणेश, और वास्तु की पूजा कर उसने पुरोहित आदि एवं ऋत्विजों का वरण किया। फिर हवन, पूजन, वेद-पाठ आदि हुए। महाराणा पालकी में बैठकर अपने शिविर मे पहुचा। आज उसके उपवास का छठा

दिन था। उसने थोड़ा-सा फलाहार किया। बाद में उसने राजसमुद्र की प्रतिष्ठा की सामग्री तैयार करने के लिये लोगों को आज्ञा दी।

इस सर्ग में ६० श्लोक हैं।

सत्रहवाँ सर्ग— इसके बाद पूर्णिमा के दिन राजसिंह पत्नी-सहित मंडप में पहुँचा। साथ में पुरोहित था। अरिसिंह नामक उसका भाई, जयसिंह, भीमसिंह, गजसिंह, सूरजसिंह, इन्द्रसिंह, बहादुरसिंह नामक उसके पुत्र; अमरसिंह, अजबसिंह आदि उसके पौत्र; मनोहरसिंह, दलसिंह, नारायणदास, बड़ा पुरोहित रणछोड़राय, भीखू आदि मन्त्री; अनेक क्षत्रिय एवं ठाकुर भी थे। वहाँ पूर्णाहुति देकर उसने राजसमुद्र को प्रतिष्ठा-विधि सम्पन्न की।

फिर वह सुवर्ण-सप्तसागरदान करने के लिये मंडप मे पहुँचा। साथ मे उसका परिवार भी था। वहां उसने उक्त दान के निमित्त पूर्णाहुति आदि सब कर्म सम्पन्न किये। ब्रह्मा, कृष्ण, महेश, सूर्य, इन्द्र, रमा एवं गौरी के सात कुंडों का निर्माण हुआ। उनका दान कर पत्नी-सहित राजसिंह ने पुरोहितों तथा ऋत्विजो के आशीर्वाद प्राप्त किये।

तदनन्तर तुला-मडप में पहुंचकर उसने तुला-दान की संम्पूर्ण विधि सम्पन्न की। जब वह तुला पर आरूढ़ हुआ तब उसने दासियों से कहा कि सुवर्ण-मुद्राओं से भरी हुई कोथलियाँ दौड़कर लाये जाओ। उसने फिर कहा—"यदि सोना थोड़ा हो तो सात सागरों में से सोने का बना एक सागर शीघ्र ले आओ।" तुला पर बहुत सोना चढाया गया। राजसिंह का पलड़ा ऊँचा और सोने का नीचा था। सोने का कुल वजन बारह हजार तोले था। राजसिंह ने तुला पर अपने साथ अपने ज्येष्ठ पौत्र अमरसिंह को भी बैठा लिया था।

तुलादान कर उसने ग्राम, हाथी, अश्व, पृथ्वी, गायें आदि दान में दी।

इस सर्ग में ४१ श्लोक हैं।

अठारहवाँ सर्ग—राजसमुद्र की प्रतिष्ठा के अवसर पर राजसिंह ने पुरोहित गरीबदास को निम्नलिखित १२ गाँव प्रदान किये:—

घासा, गुढ़ा, सिरथल, सालोल, आलोद,, मज्झेरा, धनेरिया, अंबेरी, झाड़सादड़ी, ऊसरोल, असाना तथा भावा।

इन गाँवों के अतिरिक्त कई दूसरे गाँव और कई हलवाह भूमि उसने अन्य ब्राह्मणों को दी और उनसे आशीर्वाद प्राप्त किया।

इसके बाद राजसिंह की पटरानी ने विधिवत् तुलाधिरोहण कर चाँदी का तुलादान किया। गरीबदास ने सोने की तुला की और उसके पुत्र रण-छोड़राय ने चाँदी की। इनके अतिरिक्त टोड़ा के राजा रायसिंह की माता, सलूँवर के राव केसरीसिंह चौहान तथा बारहट केसरीसिंह ने चाँदी के तुलादान किये।

उसी दिन महाराणा ने सरोवर को 'राजसमुद्र,' पर्वत पर बने प्रासाद को 'राजमन्दिर' और नगर को 'राजनगर' नाम दिया। तदनन्तर उसने ब्राह्मणों को अन्न, पक्वान्न आदि दिये। पुरोहित को व ऋत्विजों एवं अन्य ब्राह्मणों को भी प्रचुर द्रव्य दिया गया।

इस सर्ग में ४० श्लोक है। श्लोक २६–२७ मे कवि ने राजसिंह को श्रीपति [= कृष्ण] और अपने को सुदामा कहकर उससे धन की याचना की है। इससे आगे श्लोक ३४ और ३६ मे, राजसमुद्र के किनारे कांकरोली में, यवन-त्रस्त द्वारकेश के आगमन का उल्लेख है।

उन्नीसवाँ सर्ग—इस सर्ग में ४३ श्लोक है। प्रारंभ में २१ श्लोकों में मुख्य रूप से राजसमुद्र का वर्णन है। इसके बाद कथा-क्रम इस प्रकार चलता है।

राजसिंह ने राजनगर के बाहर गाडामंडल[1] बनाया। वहाँ नाना देशों से चलकर असंख्य ब्राह्मण पहुँचे, जिनमें ४६ हजार ब्राह्मणों के गाँवों और नामों का पता था। पुरोहित गरीबदास ने अपने कर्मचारियों के सहयोग से उन ब्राह्मणों को राजसिंह के सप्तसागरदान एवं तुलादान का धन दिया। पटरानी के तुलादान का द्रव्य, पुरोहित गरीबदास की सोने की तुला का सुवर्ण तथा उसके पुत्र रणछोड़राय के तुलादान का धन भी उन ब्राह्मणों में वितरित किया गया। उस अवसर पर महाराणा ने अन्न का दान भी किया।

तदनन्तर सभामंडपास्थित राजसिंह ने ब्राह्मणों, याचकों चारणों, वन्दीजनों तथा अन्य सभी लोगों को सोना, रुपये आभूषण, जरीन वस्त्र, हाथी, घोड़े तथा गाँवों के ताम्रपत्र प्रदान किये।

इसके बाद निमंत्रण पाकर आये हुए राजाओं, अपने-परायों, समस्त ब्राह्मणों तथा वैश्य आदि सभी लोगों को उसने जरीन वस्त्र, घोड़े, हाथी, मणि-आभूषण दिये और उन्हें अपने घर लौटने की आज्ञा दी। आमन्त्रित राजाओं, दुर्गाधिपों, बान्धवों, तथा अपने-परायों के लिये उसने जरीन वस्त्र, हाथी, घोड़े और आभूषण भिजवाये।

बीसवाँ सर्ग—राजसिंह ने जोधपुर के राजा जसवन्तसिंह राठौड़, आंबेर-नरेश रामसिंह कछवाहा, बीकानेर के स्वामी अनूपसिंह, बूँदी-नरेश भावसिंह हाडा, रामपुरा के चन्द्रावत मोहकमसिंह, जैसलमेर के रावल अमरसिंह भाटी तथा बांधव के स्वामी भावसिंह के लिये एक-एक हाथी, दो-दो घोड़े, तथा ज़रीन वस्त्र भिजवाये। ये हाथी और घोड़े ७८५२६ रुपयों की कीमत के थे।

डूंगरपुर के रावल जसवन्तसिंह के लिये ६५०० रु० के मूल्य का एक हाथी और ज़रीन वस्त्र भेजे गये। इसके पहले राजसमुद्र की प्रतिष्ठा के

---

१ गाडामंडल = हाता।

अवसर पर, महाराणा ने उसे ज़रीन वस्त्र और डेढ़ हज़ार रुपयों की कीमत के दो घोड़े दिये थे।

टोड़ा के स्वामी रायसिंह के कुमारों के लिये उसकी माता को एक हथिनी दी गई, जिसका मूल्य तीन हज़ार रु० था। निमन्त्रण पाकर आये हुए राजाओं को ८३११ रु. की कीमत के ३८ अश्व दिये गये।

महाराणा ने अपने प्रधान भीखू दोसी तथा राणावत रामसिंह को एक-एक हाथी और ज़रीन वस्त्र प्रदान किये। ये हाथी क्रमशः ११००० और ७००० रुपयों की कीमत के थे। अन्य ठाकुरों एवं सरदारों को उसने २५५५१ रु. की कीमत के ६१ घोड़े दिये।

शासन-युत चारण-भाटों को महाराणा ने १३१३६ रुपयों के दो सौ अश्व, पंडितों एवं कवियों को १२२१६८ रुपयों के तेरह हाथी एवं हथिनियाँ तथा चारणों-भाटों को २७५७१ रु. के २०६ अश्व प्रदान किये। लाधू मसानी को भी तब तीर्थ-यात्रा के लिये प्रचुर धन मिला।

इस सर्ग में ५५ श्लोक हैं।

इक्कीसवां सर्ग—इस सर्ग के प्रारम्भ में राजसमुद्र के निर्माण में लगे धन का विवरण है। इसके निर्माण-कार्य एवं इसकी प्रतिष्ठा आदि पर १५१७२२३३ रु० और ४ आ० का व्यय हुआ था।

सं० १७३४ में राजसिंह ने अपने जन्म दिन के अवसर पर दो महादान दिये—कल्पद्रुम[1] और हिरण्याश्व[2]। पहले महादान में दो सौ पल और दूसरे मे अस्सी तोले सोना लगा। इसी वर्ष श्रावण में भीलवाड़ा जाते हुए उसने शत्रु-पीड़ित सिरोही के राव वैरिसाल को वहाँ का राजा बनाया और उससे एक लाख रुपये तथा कोरटा आदि पाँच गांव लिये, वैरिसाल के देश में

---

१ देखिये, परिशिष्ट संख्या ३।

२ वही।

महाराणा का एक सुवर्ण-कलश चोरी में चला गया था। राजसिंह ने उससे उस कलश के ५० हजार रुपये वसूल किये।

इस सर्ग मे ४५ श्लोक हैं। श्लोक ३४-४१ में राजसिंह के पराक्रम और दान की महिमा कही गई है।

बाईसवाँ सर्ग—सं० १७३५, चैत्र शुक्ला ११ को राजसिंह की आज्ञा से महाराजकुमार जयसिंह अजमेर पहुंचा। वहाँ से वह दिल्ली जाकर औरंगजेब से मिला। यह भेंट दिल्ली से दो कोस इधर, एक शिविर में हुई। औरंगजेब ने सत्कार के साथ उसे मोतियों की माला, उरोभूषा, जरीन वस्त्र, एक अलंकृत हाथी एवं कई अश्व दिये। इसी प्रकार चन्द्रसेन झाला और पुरोहित गरीबदास को ज़रीन वस्त्र तथा अश्व और अन्य ठाकुरों को उसने यथोचित उपहार दिया।

इसके बाद जयसिंह ने गणयुक्तेश्वर शिव के दर्शन किये और गंगा-तट पर स्नान कर चांदी की तुला की। उसने एक हथिनी एवं एक अश्व भी दान में दिया। तदनन्तर वह वृन्दावन और मथुरा की यात्रा करता हुआ ज्येष्ठ में महाराणा के पास पहुचा।

सं० १७३६, पौष कृष्णा एकादशी के दिन औरंगजेब मेवाड़ में आया। इसके पहले उसका पुत्र अकबर और सेनापति तहव्वरखाँ सेना लेकर राजनगर के राजमन्दिर में पहुँचे। वहाँ उनके सैनिकों ने बड़ा अनाचार किया। तब सबलसिंह पूरावत का पुत्र शक्त उनसे लड़ा। इस लड़ाई में एक चूँडावत वीर और बीस अन्य योद्धा मारे गये।

फिर महाराणा ने राजपूतो को आदेश दिया कि वे युद्ध करने के लिये कृतसंकल्प होकर देवारी के घाटे से एवं अन्य घाटो से आवें। साथ में तोपें और गोला-बारूद भी हो। दिल्लीपति भी देवारी के घाटे में आया और उसका द्वार गिराकर २१ दिन वहाँ रहा। कहा जाता है कि एक समय वह रात में छिप कर उदयपुर पहुंचा। अकबर और तहव्वरखाँ भी वहां जा पहुचे।

अकबर वहाँ से एकलिंगजी की ओर रवाना हुआ। लेकिन वह अंबेरी और चीरवा के घाटों को देखकर वापस अपने शिविर में लौट आया। तब करगेटपुर के झाला प्रतापसिंह ने शाही सेना से दो हाथी छीनकर महाराणा को भेंट किये। भदेसर के बल्ला लोगों ने कई हाथी, घोड़े और ऊंट बादशाह की सेना से लेकर महाराणा को नजर किये। महाराणा तब नैणवारा में रह रहा था।

इस प्रकार जब ५० हजार लोग मारे गये तब औरंगजेब दूसरा तरीका बताकर चित्रकूट पहुँचा। अकबर भी वहाँ गया और 'छप्पन' प्रदेश से हसनअलीखाँ वहाँ जा पहुँचा।

बादशाह के चित्रकूट चले जाने पर राजसिंह नाई गाँव की ओर आया। उसने कोटड़ी गांव से कुंवर भीमसिंह को तुरंत रवाना किया। सेना लेकर भीमसिंह ईडर पहुँचा। ईडर को उसने नष्ट कर दिया। सैंदहसा वहां से भाग गया। फिर वह वड़नगर को लूटकर और वहां से दंड के रूप में ४० हजार रु० वसूल कर अहमदनगर पहुँचा, जहाँ उसने दो लाख रुपयों की वस्तुएँ लुटवाईं। औरंगजेब ने अनेक देवमन्दिर गिरवाये थे। इसका बदला भीमसिंह ने अहमदनगर की एक बड़ी और तीन सौ छोटी मसजिदें गिराकर लिया।

महाराणा की आज्ञा से महाराजकुमार जयसिंह भी शत्रु पर विजय पाने के लिये चित्रकूट की तलहटी की ओर रवाना हुआ। उसके साथ झाला चन्द्रसेन, सेनापति सबलसिंह चौहान और उसका भाई राव केसरीसिंह, गोपीनाथ राठौड़, अरिसिंह का पुत्र भगवन्तसिंह तथा अन्य सरदारों के अतिरिक्त तेरह हजार अश्वारोही एवं बीस हजार पदाति सेना थी। वहाँ पहुँचकर सरदारों ने रात में युद्ध किया। उस लड़ाई में शाही सेना के एक हजार सिपाही, तीन हाथी तथा कई घोडे मारे गये। अकबर वहाँ से भाग गया। राजपूत योद्धाओं ने शाही सेना से पचास घोड़े लाकर जयसिंह को भेंट किये। जयसिंह महाराणा के पास लौट आया।

केसरीसिंह शक्तावत के पुत्र कुँवर गंग ने शाही सेना से १८ हाथी, कई घोडे और ऊँट लाकर महाराणा को नजर किये।

महाराणा ने सेना देकर कुँवर भीमसिंह को फिर भेजा। उसने देसूरी की नाल को लाँघकर घाणोरा नगर में अकबर और तहव्वरखाँ से भीषण युद्ध किया। बीका सोलंकी घाटे की रक्षार्थ लड़ा। कुँवर गजसिंह भी महाराणा की आज्ञा से सेना लेकर बेगूँ पहुँचा, जिसे उसने नष्ट कर दिया।

यह देखकर औरंगजेब ने तय किया कि तीन राष्ट्र अथवा तीन लाख रुपये देकर महाराणा से सन्धि कर ही लेनी चाहिये।

इस सर्ग की श्लोक-संख्या ५० है।

तेवीसवाँ सर्ग—सं० १७३७, कार्त्तिक शुक्ला दशमी के दिन महाराणा राजसिंह का स्वर्गवास हुआ। इसके १५ दिन बाद कुरज नामक नगर में जयसिंह की गद्दीनशीनी हुई।

सं. १७३७ के मार्गशीर्ष में कुरज में जयसिंह ने सुना कि देसूरी की नाल को लाघकर तहव्वरखाँ आया है। तब उसने उससे लड़ने के लिये अपने भाई भीमसिंह को भेजा। उसके साथ बीका सोलंकी भी था। दोनों ने मिलकर शत्रु-सैन्य का संहार किया। तहव्वरखाँ चारो ओर से घिर गया था। वह आठ दिन बाद वहाँ से छूटा।

महाराणा घाणोरा के नजदीक पहुँचा और दलेलखाँ छप्पन प्रदेश के पहाड़ों में। राणा के सैनिकों ने मार्ग देकर उसे आगे बढ़ने दिया। जब वह गोगूदा के घाटे में जा पहुँचा तब सभी घाटो के रास्ते उन्होने बन्द कर दिये। एक घाटे पर रावत रतनसी विद्यमान था। उसने दलेलखाँ को वहाँ से नही निकलने दिया। फिर जयसिंह ने सन्धि करने के लिये उसके पास झाला वरसा को भेजा। वरसा ने दलेलखाँ से कहा कि आप बादशाह के सम्मानित व्यक्ति हैं। आप के साथ १५ हजार अश्वारोही हैं। फिर भी महाराणा का केवल एक राजपूत घाटे को रोके हुए है। आप निश्चिन्त होकर निकल सकते हैं। महाराणा का आपके प्रति स्नेह है। इस कारण आप यहाँ तक आ सके है। यदि आप निकलना चाहे तो निकल सकते है और रहना चाहे तो

रह सकते है। इस पर नवाब बोला कि पीछे जो मेरे सैनिक आ रहे हैं, उनकी भी सहमति हो।

इसके पहले दलेलखाँ ने तीनों घाटो के मार्गो को देखने के लिये कुछ सैनिक भेज रखे थे। उन्होने लौटकर बताया कि तीनों घाटे बन्द हैं। अतः जब वह वहाँ से निकल नही सका तब उसने एक ब्राह्मण को एक हजार रुपये दिये और उसे मार्ग-दर्शन के लिये आगे किया। इस प्रकार वह किसी अन्य मार्ग से रात में भागने लगा। लेकिन वहाँ भी रावत रतनसी सेना लेकर जा पहुँचा। उसने उससे युद्ध किया। अन्ततोगत्वा दलेलखाँ वहाँ से भाग निकला।

छल से भागकर वह दिल्ली-पति के पास पहुँचा। बादशाह के पूछने पर कि भागकर क्यों आये तथा राणा का पीछा तुमने क्यों नही किया, उसने बताया कि मुझे वहाँ अन्न नही मिला। मुझे मारने के लिये महाराणा मेरे पास आ पहूंचा। उसने मेरे कई सिपाहियों को मार डाला। अन्नाभाव से प्रति दिन मेरे चार सौ सैनिक मरते थे। इसलिये मैं वहाँ से भाग निकला। यह सुनकर बादशाह घबराया।

तदुपरान्त अकबर महाराणा से सन्धि करने के लिये आया। राणा कर्णसिंह के द्वितीय पुत्र गरीबदास का पुत्र श्यामसिंह भी आया। उसने राणा से संधि की बात की और उसे पक्की कर वह लौट गया। दलेलखाँ ने संधि को सुदृढ किया और हसनअलीखाँ ने उसकी विधि पूरी की।

जयसिह ने सधि करने के लिये तैयारी की। वह चन्द्रसेन झाला, राव सबलसिंह चौहान तथा महाराव वैरीसाल परमार को आगे कर राजसमुद्र के अग्रभाग पर पहुचा। उसके साथ राठौड़, चूंडावत, शक्तावत और राणावत राजपूत तथा ७ हजार अश्वारोही एवं १० हजार पैदल सेना थी।

औरंगजेब के पुत्र आजम की आज्ञा से दलेलखां, हसनअलीखाँ एवं अन्य मुसलमान शासक, रतलाम का राठौड रामसिह, किशोरसिंह हाड़ा,

गौड़ राजा तथा अन्य हिन्दू और म्लेच्छ योद्धा महाराणा के सम्मुख आये।

जयसिंह आजम से मिला। उसके साथ पुरोहित गरीबदास, प्रधान भीखू और उक्त सरदार थे। आजम ने स्नेहपूर्वक एवं सविनय उसका आदर किया। महाराणा ने आजम को ११ हाथी और ४० अश्व भेंट किये। आजम ने राणा को एक हाथी, २८ घोड़े, ३ ज़रीन वस्त्र और ५० आभूषण दिये। इस प्रकार दोनों मे अत्यन्त प्रेमपूर्वक संधि हुई।

अन्त में दलेलखाँ ने आजम के आगे चन्द्रसेन झाला, राव सबलसिंह चौहान, रावत रतनसी आदि का परिचय देते हुए कहा कि इन्होंने पहाड़ों में मार्ग दिया था। लेकिन महाराणा के कथनानुसार इन्होने वादशाह से स्नेह वनाये रखने के लिये युद्ध नही किया। सुनकर आजम ने कहा कि यह सच है। इसके वाद महाराणा अपने शिविर मे लौट आया।

इस सर्ग में ६२ श्लोक हैं।

चौवीसवां सर्ग—यह इस काव्य का अन्तिम सर्ग है। इसमें ३६ श्लोक हैं। प्रारभ में महाराणा राजसिंह, पौत्र अमरसिंह, पटरानी सदाकुँवरी पुरोहित गरीबदास तथा उसके पुत्र रणछोड़राय द्वारा किये गये तुलादानों के तोरणो का वर्णन है। ये तोरण राजसमुद्र की पाल पर बने हुए हैं। वाद में राजप्रशस्ति का माहात्म्य वर्णित है।

श्लोक २५–२७ मे दयालदास के पराक्रम का वर्णन है। उसने खैरावाद को नष्ट किया था और वनेड़ा को लूटा था। धारापुरी को नष्ट कर उसने वहाँ की मसजिदे गिराई थीं। अहमदनगर को भी उसने लूटा और नष्ट किया था। वहाँ की बड़ी मसजिद को भी उसने गिराया था। इसके वाद ५ श्लोकों में हीरामणि मिश्र की दानपरायणता का वर्णन है। वह जगदीश मिश्र का पुत्र था। महाराणा ने जब राजसमुद्र की परिक्रमा की तब उसने वहाँ याचको को प्रचुर धन-धान्य वाँटा। इसलिये वह राजसिंह का प्र[illegible] वना।

अन्त में राजसिंह की प्रशंसा के दो सोरठे है, जो मेवाड़ी बोली में है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, राजप्रशस्ति नामक यह ग्रन्थ पूरा का पूरा संस्कृत भाषा में लिखा गया है, परन्तु इसमें संस्कृत-शब्दावली के साथ-साथ अरबी-फारसी तथा लोक भाषा के शब्दों का प्रयोग भी यथेष्ट मात्रा में हुआ है और यह इसकी एक बहुत बड़ी विशेषता है। इससे इसकी भाषा में स्वाभाविकता आ गई है। इन शब्दों में कुछ तत्सम रूप में और कुछ तद्भव रूप में प्रयुक्त हुए है। उक्त दोनों प्रकार के कुछ उदहरण यहां दिये जाते हैं।

(१) अरबी-फारसी के शब्द।

बुरिज (अ० बुर्ज), मसीदि (अ० मस्जिद), सुलतान (अ० सुल्तान), तफे, दफे (अ० दफअ), जहाज (अ०), सलाम (अ०), हिंदू (फा०) इत्यादि।

(२) लोक भाषा के शब्द।

मण, शेर (सेर), राणा, चोकड़ी, ओटा, कोयली, लड्डू, बारहठ, गाडामंडल, मेवाड़, सोर, ढब्बूक इत्यादि।

इसके अलावा इसमें कुछ शब्द ऐसे भी देखने में आते हैं जो १८ वीं शताब्दी में प्रचलित थे, पर आज-कल प्रचलित नहीं हैं। उदाहरण के लिये 'विद्धर' शब्द को लीजिये, कठिनाई अथवा मुसीबत के अर्थ में यह शब्द इस पुस्तक में तीन जगह प्रयुक्त हुआ है। यथा—

(१) "विद्धरे त्विंद्रसरसि श्रीमूर्ति स्फाटिकीं धृतां।"

(सर्ग ४, श्लोक ८)

(२) "शूकरक्षेत्रविप्रेभ्यो ग्रामं पूर्वं तु विद्धरे।"

(सर्ग ५, श्लोक ११)

(३) "देशा दिल्लीश्वरादाप्या विद्धरे मधुसूदनः।"

(सर्ग ६, श्लोक २३)

परन्तु आजकल इस शब्द का प्रयोग बिलकुल नहीं होता। न यह संस्कृत आदि के आधुनिक कोप-ग्रन्थों में मिलता है। बल्कि इस समय तो यह पता लगाना ही कठिन हो गया है कि मूलतः यह संस्कृत भाषा का है अथवा मध्यदेशीय किसी अन्य लोक भाषा का।

कुल मिलाकर राजप्रशस्ति की भापा प्रवाहयुक्त, व्यवस्थित तथा विपयानुकूल है। पर कुछ ऐसे स्थलों पर जहाँ कवि ने अपना काव्य-कौशल बताने की चेष्टा की है वहाँ शब्द-योजना कुछ जटिल, वस्तु व्यञ्जना कुछ अस्पष्ट एवं वर्णन-शैली कुछ अटपटी हो गई है।

राजप्रशस्ति एक ऐतिहासिक काव्य है। इसके प्रणेता रणछोड़ भट्ट ने इसे महाकाव्य की संज्ञा दी है, "इतिश्री राजप्रशस्तिनाममहाकाव्ये रणछोड भट्ट विरचिते दशमः सर्गः।" इसे प्रशस्ति-काव्य भी कहा जा सकता है। इस प्रकार के महाकाव्य इससे पूर्व संस्कृत-साहित्य में अनेक लिखे गये हैं, जिनमें काश्मीरी कवि कल्हण की 'राजतरंगिणी' बहुत प्रसिद्ध है। इसमें काश्मीर के राजाओं का इतिहास है। इसका रचनाकाल सं. ११८४-१२०६ है। राजप्रशस्ति महाकाव्य इसी कोटि की रचना है, परन्तु इन दोनों में थोड़ा-सा अन्तर है। 'राजतरंगिणी' में कवित्व भावना विशेष है। इसलिये इतिहास की अपेक्षा वह एक काव्य ग्रन्थ अधिक बन गया है। राजप्रशस्ति इस दोप से प्रायः मुक्त है। इसके रचयिता ने अपनी दृष्टि बराबर ऐतिहासिक सत्य पर रखी है और उसे कहीं आँखों से ओझल नहीं होने दिया है। प्रशस्ति-काव्य होने से कवि को यदि अपने आश्रय-दाता की प्रशंसा करना अभिष्ट हुआ तो कथा-प्रसंग से पृथक कहीं इधर-उधर उसकी प्रशंसा कर कवि-परिपाटी का निर्वाह कर लिया

है। अतएव इसमे काव्यात्मकता, अतिरंजना एवं आलंकारिता उतनी नहीं है जितनी 'राजतरंगिणी' में देखी जाती है।

सारांश यह कि राजप्रशस्ति महाकाव्य प्रधानतया इतिहास का ग्रन्थ है और कविता उसका गौण विषय है। महाराणा राजसिंह के चरित्र से संबद्ध जिन घटनाओं का वर्णन कवि ने इसमें किया है, वे उसकी आँखों देखी है और वास्तविकता पर आधारित है। विशेषकर राजसमुद्र के निर्माण कार्य की दुष्करता का, उस पर हुए खर्च का, उसकी प्रतिष्ठा आदि का इसमें यथातथ्य वर्णन हुआ है। इसके साथ-साथ तत्कालीन मेवाड़ की संस्कृति, वेष-भूषा शिल्पकला, मुद्रा, दान-प्रणाली, युद्ध—नीति, धर्म—कर्म इत्यादि अनेकानेक अन्य वृत्तों पर भी इससे अच्छा प्रकाश पड़ता है। राणा राजसिंह के पूर्ववर्ती राजाओं का इतिहास इसमें कुछ सन्दिग्ध अथवा अर्द्ध ऐतिहासिक सूत्रों के आधार पर लिखा गया जान पड़ता है, पर सत्य से बहुत दूर वह भी नहीं है।

इस राजप्रशस्ति-शिलालेख का प्रकाशन सर्व प्रथम कविराजा श्यामलदास कृत 'वीर विनोद' नामक मेवाड़ के इतिहास ग्रंथ (वि० सं० १९३८-४९) मे हुआ था। इसके बाद डॉ० पी० एन० चक्रवर्ती और बी० छाबड़ा ने इसका सम्पादन कर इसे 'एपिग्राफिया इण्डिका' में प्रकाशित करवाया। 'वीर विनोद' मे दिया गया पाठ बहुत अशुद्ध है। 'एपिग्राफिया इण्डिका' वाला पाठ अपेक्षाकृत कुछ ठीक है, पर सर्वथा दोषमुक्त वह भी नहीं है। इसके अलावा वह केवल एक पत्रिका में प्रकाशित हुआ है और स्वतंत्र पुस्तक के रूप में वह सुलभ नहीं है। इन न्यूनताओं को देख कर यह संस्करण तैयार किया गया है, जिसमें मूलपाठ के साथ-साथ हिन्दी भावार्थ भी दिया गया है। यह इसलिये कि केवल हिन्दी जानने वाला पाठक भी इस अमूल्य ग्रन्थ को पढ़ कर लाभ उठा सके। पाठ, मूल शिलालेखो से ली गई छापों के आधार पर तैयार किया

गया है तथा पाठ-निर्धारण में पूरी-पूरी सावधानी बरती गई है। ग्रन्थ के अन्त में तीन परिशिष्ट भी दिये गये हैं, जिनमें इस ग्रन्थ से सम्बन्धित विशिष्ट सामग्री का समावेश हुआ है। चार चित्रों, क्रमशः महाराणा राजसिंह का एक, नौचौकी के पूर्व व पश्चिमी दृश्य के दो एवं शिलालेख का एक चित्र भी उपयुक्त स्थान पर ग्रन्थ में जोड़ा गया है, जिससे सुधी पाठकों को अध्ययन में सुविधा होगी, ऐसा विश्वास है।

ग्रन्थ के भावार्थ तथा सम्पादन कार्य में सर्वश्री उमाशंकर शुक्ल, कालिदास शास्त्री, बिहारीलाल व्यास एवं कृष्णचन्द्र शास्त्री का सहयोग मिला है। राजस्थान विद्यापीठ के संस्थापक उपकुलपति पं० जनार्दनराय नागर का प्रारंभ से ही सतत् प्रोत्साहन एवं प्रेरणा मिलती रही है, जिसके फलस्वरूप ही यह ग्रन्थ इस रूप में तैयार हो सका है, एतदर्थ उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करना अपना कर्त्तव्य मानता हूं।

डॉ. मोतीलाल मेनारिया

राजप्रशस्तिः महाकाव्यम्

मूलपाठ एवं भावार्थ

॥ ॐ नमः श्रीगणेशाय ॥

प्रथमः सर्गः

[प्रथम शिला]

मंगलाचरणम्

यशोहेतुं सेतुं सुकृतिकृतिसेतुं जलनिधौ
सुवद्धं यश्चक्रे धरणिधरचक्रेण रुचिरं ।
रुचा कामः कामं जनकतनयावामनयना–
सुविश्रामः कामं कलयतु स रामः कृतजयः ॥१॥

भावार्थः— सौन्दर्य में कामदेव, जनकनन्दिनी के विश्राम-स्थल एवं विजेता श्री रामचन्द्र, जिन्होने समुद्र पर पहाड़ों से सुन्दर व सुदृढ़ सेतु का निर्माण किया, हमारे मनोरथ को सफल करें। उनका वह सेतुबन्ध यश का कारण और पुण्य-कार्यो का पुल है।

स्मितज्योत्स्नालेपोज्ज्वलललितकंठः कचचय–
शिखिस्फूर्जत्पक्षेक्षणगलितनागो विभसितः ।
मुदे चेलांदोलाशुगत इति भूषाप्रतिकृते–
र्धृतेगौर्याः शंभुः स्फटिकरुचिदेहेतिरुचिरः ॥२॥

भावार्थः— शिव का नीला कंठ पार्वती के मन्द हास्य की चन्द्रिका के लेप से उज्ज्वल होकर सुन्दर हो जाता है। उनके शरीर पर लिपटे हुए सर्प भी पार्वती के केशपाश को मयूर के सुन्दर पंखों के रूप में देखकर वहाँ से खिसक जाते है। यही नही, उनके अगों पर लगी हुई भस्म भी पार्वती के वस्त्र के आन्दोलन के पवन से दूर हो जाती है। इस प्रकार शंभु की स्फटिक के समान उज्ज्वल देह पर जब गौरी की वेप-भूषा का प्रतिबिंब गिरता है तब वे बहुत ही सुन्दर लगने लगते है। वे हमें आनन्द प्रदान करे।

पुरा राणेंद्रस्त्वच्चरणशरणः सेतुविलस-
त्प्रबंधं कृत्वाब्धिं नवमिह तडागं रचितवान् ।
प्रतिष्ठामस्याद्धा तव विवरराज्ये भगवति
प्रभावो निर्विघ्नं स गिरिवरमातर्जय जय ।।३।।

भावार्थः—हे गिरिवर माता ! महाराणा पहले आपके चरणों की शरण में आया । तदनन्तर उसने सुन्दर सेतु बाँधकर आपके इस विवर-राज्य में सरोवर का निर्माण किया, जो एक नया समुद्र है । इसके बाद उसने इसकी प्रतिष्ठा भी की । हे भगवती ! यह सब जो निर्विघ्न संपन्न हुआ, वह आप का ही प्रभाव है । आप की जय हो, जय हो ।

वराभीत्योर्दात्रीं पृथुतमकुचां कामवशगां
महाकालोरःस्थां ससुखमजचक्रींद्रविनुतां ।
प्रसन्नाक्षी श्यामां स्मितमयमुखीं दक्षिणतमां
स्तुवन्कालीं विद्याक्षितिसुतधनानीह लभते ।।४।।

भावार्थः—कालिका, वर और अभय देनेवाली है । उसके पयोधर पीन हैं । वह काम के वशीभूत है । महाकाल के हृदय में उसका निवास है । ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र उसकी वन्दना करते है । वह श्यामा, प्रसन्न नयना, स्मेरमुखी और अतिशय उदार है । उसकी स्मृति करता हुआ मनुष्य इस संसार में विद्या, पृथ्वी, पुत्र और धन प्राप्त करता है ।

चतुर्भिः कैलासस्फुरितकरिभिर्हेमससुधै-
र्घटैः शुंडोत्क्षिप्तैः स्मरति सुखसिक्तां कनकभां ।
वरांभोजद्वंद्वाभययुतकरां त्वांबुजगतां
रमे श्रीमत्तो यो सुखमपि स मत्तेभधनवान् ।।५।।

भावार्थः—हे लक्ष्मी ! आपकी कान्ति सुवर्ण सदृश है । कैलास पर्वत के समान उज्ज्वल चार हाथी अपनी सूँडों मे अमृत भरे कनक-कलश उठाकर उनसे आपका अभिषेक करते हैं । आपने दो हाथों में दो कमल ले रखे हैं, दूसरे दो हाथ

वर और अभय दान की मुद्रा में है तथा आप का मुख श्री-युक्त है। आपका जो स्मरण करता है, वह गज और धन से संपन्न होता है।

रुचैदैव्याभा सत्स्फटिकहिमकुंदाब्जजयकृ-
दधाना वासो वा मुकुररुचिपद्मासनगता।
नवीना वीणाभृद्विधिहरिहरेंद्रादिकनुता
सरस्वत्यास्तां नः सुमतिकृतये जाड्यहृतये ॥६॥

भावार्थः—सरस्वती की कान्ति चन्द्रमा की किरणों के समान है। स्फटिक, हिम, कुन्द तथा अब्ज से भी अधिक श्वेत वस्त्र उसने धारण कर रखा है। दर्पण के समान उज्ज्वल पद्मासन पर वह विराजमान है। वह अभिनव और वीणाधारिणी है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र आदि उसकी वन्दना करते हैं। वह हमें सुमति प्रदान करे और हमारे अज्ञान का नाश करे।

मृदुं वाणीं लज्जां श्रियमपि दधानां मणिलस-
त्किरीटेंदुद्योतां मणिघटलसत्सव्यचरणां।
त्रिनेत्रां स्मेरास्यां समणिचषकाब्जोद्यतकरां
जपारक्तां भक्ता भजत भुवनेशीं पृथुकुचां ॥७॥

भावार्थः—हे भक्तों! भुवनेशी देवी का भजन करो। उसने मृदु वाणी, लज्जा और श्री धारण कर रखी है। उसके मणि-लसित किरीट पर चन्द्रमा है, जिसका प्रकाश छिटक रहा है। उसका सव्य चरण मणि-घट पर सुशोभित है। उसके तीन नेत्र है। वह स्मेरमुखी है। हाथो में उसने मणिमय सुरापात्र और कमल ले रखे हैं। उसके पयोधर पीन है तथा उसकी कान्ति जपा पुष्प के समान लाल है।

रुचैगालः खड्गो ललितकमलो ह्रीमयमुखः
क एष द्रागीदृक् लघुकलितशक्तिर्हसकरः।
हलांसो हृल्लेखी धृतसकलमायोऽनलवधू-
स्तुतिर्मंत्रं जप्त्वा जयति धरणीशो मनुरिव ॥८॥

भावार्थः—पृथ्वीपति राजसिंह कान्ति में श्रृंगार है। उसने खड्ग धारण कर रखा है। वह श्री-सम्पन्न और विनयशील है। उसके समान हस्तलाघव गुण वाला और प्रजा-रंजक दूसरा कौन है? उसके कंधे हल के समान सुदृढ हैं। वह चित्ताकर्षक, सकल माया को धारण करने वाला एवं यज्ञोपासक है। श्लोक में बताये गये मन्त्र को जपकर वह मनु के समान विजयी हो।

कपोलप्रोल्लोलत्कनकविलसत्कुंडलयुगां
मुखेंदुं बिभ्राणां कनकविलसच्चंपकरुचि।
गदादीर्णारातिकरगरिपुजिह्वां च बगला-
मुखीं ध्यायेद्यस्तद्विमुखमुखसंस्तंभनविधिः ॥९॥

भावार्थः—बगलामुखी देवी के कपोलों पर सोने के दो सुन्दर कुण्डल झूल रहे हैं। उसका मुख चन्द्रमा है। उसकी कान्ति कनक सदृश खिले हुए चम्पा के समान है। गदा-प्रहार कर उसने शत्रुओ को विदीर्ण कर दिया है तथा उसने अपने हाथ में शत्रु की जिह्वा ले रखी है। जो उसका ध्यान करता है, उसके शत्रुओं का मुख-स्तम्भन होता है।

शतायुः सिद्धिं वा सदसि बहुबुद्धिं विदधती
प्रसिद्धिं लोके वा सततमृणवृद्धिं च विगतां।
गुणानामृद्धिं वा सुभगसुतवृद्धिं धनगिरां
समृद्धिं भक्तानां सपदि हरसिद्धिं भज मनः ॥१०॥

भावार्थः—हरसिद्धि देवी भक्तो को सौ वर्षों की आयु, सिद्ध, सभा में प्रचुर बुद्धि, संसार मे प्रसिद्धि, गुणों की ऋद्धि, भाग्यवान् पुत्रों की वृद्धि, धन एवं विद्या की समृद्धि तत्काल प्रदान करती है तथा उनकी ऋण-वृद्धि को सदा के लिये दूर करती है। हे मन! तू उसका भजन कर।

शिवे राजन्यानां जयसि समरादौ जयकरी
शतायुष्यं राणं कलय जयसिंह सतनयं।

स्थिरं राणाराज्यं जगति रचयाऽऽचंद्रतपनं
प्रशस्तेः स्थैर्यं त्वं मम सुतगिरायुर्धनसुखं ।।११।।

भावार्थः—हे पार्वती ! आप युद्धादि में क्षत्रियों को जय देनेवाली हैं। आपकी जय हो ! राणा को तथा पुत्र सहित जयसिंह को शतायुषी करो। राणा के राज्य को विश्व मे यावच्चन्द्र-दिवाकर स्थिर रखो। इस प्रशस्ति को स्थिरता और मुझे पुत्र, विद्या, आयु एवं धन का सुख प्रदान करो।

चतुर्वारं तेंतज्र्जनकलकलालंकृततनुं
गिरिं श्रुत्वा लोके तवविवरराज्यं त्वनुमितं ।
ध्रुवं निःसंदेहं रचय नृपदेहं मम वपुः
स्थिरं गेहं स्नेहं तनयमपि तेहं निजजनः ।।१२।।

भावार्थः—हे भगवती ! आपके इस पर्वत में से मनुष्यों की कलकलमयी वाणी को सुनकर संसार में अनुमान किया गया कि इस विवर में आपका ही राज्य है, जो सन्देह-रहित और ध्रुव है। हे देवी ! मैं आपका भक्त हूँ। राजा की देह को तथा मेरे शरीर, घर, स्नेह और पुत्र को स्थिरता प्रदान करो।

इदं स्तोत्रं स्तुत्यं पठति मनुजो मंगलकरं
सुकार्यादौ यस्तद्भवति सफलं विघ्नरहितं ।
प्रपूर्णं वा तूर्णं जननि रणछोडेन रचितं
पठित्वा श्रुत्वादो जगदखिलमास्तां सुखमयं ।।१३।।

भावार्थः—यह भवानी-स्तोत्र स्तुति करने योग्य एवं मंगलकारी है। उत्तम कार्य के आरम्भ में जो मनुष्य इसे पढता है, उसका कार्य निर्विघ्न सफल होता है। हे जननी ! रणछोड रचित इस स्तोत्र को सम्पूर्ण पढ़ कर अथवा सुनकर सारा संसार शीघ्र सुखी हो।

इति भवानीस्तोत्रं ।

सरोलंबे स्तम्बेरममुख सदंबेक्षितमुखे
सुहेरंबे त्वं वेदवति गुणलंबे त्वयि विभौ ।
समालंबे कं वेरितवति भृशं वेदितविप-
त्कदंबेऽनालंबे सुकविनिकुरंबे कुरु कृपां ।।१४।।

भावार्थः—हे प्रभु ! आप गज-वदन है। आप पर भौरे मँडरा रहे हैं। आपके मुख को आपकी माता निहार रही है। आप ज्ञानवान् और गुणों के आधार हैं। आपके रहते मैं किसका आसरा लूँ ? कवि-समुदाय निराश्रय होता है। आपके आगे अपने दुःखों को उसने खोलकर रखा और उनसे छुटकारा पाने के लिए वह आप ही से निवेदन करता रहा है। आप उस पर कृपा कीजिये।

नद्यः क्षुद्राः समुद्राः सलवणसलिलाः कूपवाप्योऽप्यभद्रा
दारिद्र्यं वीक्ष्य वारां किल सुरसरितो वारि गृह्णाति लग्नं ।
शैवालं केशपंक्ति शिरसि च शकलं चंद्रकं रत्नसेतोः
सिदूरं वालुकौघं दधदिति गुणिभिः पातु गीतो गणेशः ।।१५।।

भावार्थः—"नदियाँ छोटी है। समुद्रों में जल खारा है तथा कूप और वापिकाएँ भी अपवित्र है।" इस प्रकार भूतल पर जल की कमी देखकर गणेश ने जब देवनदी से जल ग्रहण किया तब देवनदी से जल के साथ-साथ उसका शैवाल, रत्न-निर्मित सेतु का खण्ड और वालुका का ढेर भी उनके मस्तक पर गिरा; जो क्रमशः उनके केश, चन्द्रमा तथा सिन्दूर बन गये। गुणवानों ने जिन गणेश की इस प्रकार स्तुति की है, वे हमारी रक्षा करें।

कर्णौ सूर्पद्वयं वाप्यलिवलयमिपाच्चालनी दतदर्वी
चंद्रं रौप्य कटाहं विद्युकरनिकर पिष्टकं स्निग्धकुंभौ ।
दानं मिष्टं जलं यत्पचति दधदलं धूमकेतुं च सर्वं-
लड्डूकालि तदुक्तो ह्यसुरसुरनरालवलंबोदरोऽव्यात् ।।१६।।

भावार्थः—"गणेश देव, दानव तथा मनुष्य के पोषक है उनके दोनों कान दो सूप है। भ्रमरों का मण्डल मानों छलनी है। दाँत करछी है। चन्द्रमा चाँदी

की बनी कड़ाही है। चन्द्र की किरणों का समूह आटा है। कुम्भस्थल घृत के दो कुम्भ है। मद मीठा जल है। धूमकेतु [ध्वजा विशेष] अग्नि है। इन्हें धारणकर वे लड्डू बनाते है।" सबों ने जिनका इस प्रकार वर्णन किया है, वे गणेश हमारी रक्षा करें।

शुंडादंडं प्रचंडं मदलसदसितं रंध्रवद्वह्निशस्त्रं
विभ्राणो धूमकेतुं मधुकरगुटिका दंतमुद्दंडदंडं।
तन्नूनं वह्निशस्त्री दितिजहतिकृते स्थापितः शंभुनासौ
भ्रांत्या लोकैर्गजास्यः कथित इति मुदे श्रीगणेशःसुवेषः ।।१७।।

भावार्थः—गणेश का रूप बडा ही सुन्दर है। उन्होंने प्रचण्ड और लम्बी सूँड के रूप में बन्दूक उठा रखी है। वह मदच्युत, काले रंग की तथा छेदवाली है। इसके अतिरिक्त उनके पास धूमकेतु [ध्वजा, आग], दाँत रूपी एक लंबा डण्डा और भौर रूपी गोलियां भी है। कवि कहता है कि वास्तव में यह कोई बन्दूकधारी है, जिसे शम्भु ने दानवों का सहार करने के लिये नियुक्त किया है। मुख हाथी का है, यह बात तो लोगों ने भ्रान्ति से कह दी है। ऐसे गणेश हमे आनन्द दे।

पुज्योभूद्वक्रतुंडः सुरदितिजनरैः सर्वकार्येपु कस्मा–
त्तन्मन्ये क्रीडनेयं जलनिधिमधिकं शुंडया पीतवान्वै।
लंकास्थद्वारकास्थाऽसुरसुरमनुजाहींद्रलक्ष्मीस्वयंभू–
विष्णुस्तोत्रैस्तु मुंचेसकलमिदमतः सर्ववन्द्यो मुदे सः ।।१८।।

भावार्थः—देव, दानव और मनुष्य अपने सब कामो में गणेश की पूजा क्यो करते है? मै ऐसा मानता हूं कि जब गणेश ने खेल-खेल में अपनी सूँड से समुद्र का बहुत-सा जल पी लिया तब लंका और द्वारका के रहनेवाले देव, दानव, मनुज, शेप, लक्ष्मी, ब्रह्मा और विष्णु ने इनकी स्तुतियाँ की, जिन से प्रसन्न होकर इन्होने उस समुचे जल को वापस उगल दिया। इसी कारण सब लोग इनकी पूजा करने लगे। वे हमारी रक्षा करें।

प्रातर्भानुं रसालोत्तमफलमतितो निर्मलोद्यत्सिताभि-
आजल्लड्डूकबुद्धया निशि मधुरविधुं चंडया शुंडया यत् ।
धृत्वा स्वास्ये दधे तद्ग्रहणमिति जनैः स्नायिभिः श्रांतमस्मा-
त्पार्वत्या मोचितौ तौ सहसितमवतात्क्लेशहर्त्ता गणेशः ॥१९॥

भावार्थः—गणेश ने प्रातः सूर्य को आम का फल और रात्रि में चन्द्रमा को शक्कर का लड्डू समझकर अपनी प्रचण्ड सूँड से जब उन्हे अपने मुख में रख लिया तव स्नान करनेवाले लोगों ने समझा कि ग्रहण है। यह देखकर पार्वती हँसी और उसने उन दोनो को मुक्त करवाया। वे क्लेश-हर्त्ता गणेश हमारी रक्षा करें।

भ्रातः किं वाहनस्य प्रकटयसि न वा लालनं स्कंदवाक्या-
देवं प्रोद्दंडशुंडामुखकलितमहामूषकस्पर्शलेशः ।
भोक्तुं भोगी किमित्थं द्रवति कृतमतौ मूषकेस्मादकस्मा-
त्स्कंधात्तस्य स्खलन्नस्खलितमतिवचश्चारु दद्याद्गणेशः ॥२०॥

भावार्थः—कार्तिकेय के कहने पर कि क्यों भाई ! अने वाहन को कभी प्यार करते हो या नही, गणेश ने जव अपनी लम्बी सूँड से अपने विशाल मूषक को थोडा-सा छुआ, तव चूहे ने समझा कि यह कोई सांप है, जो मुझे निगलने के लिये आया है। इस कारण वह अचानक भागा। उसके भागने पर उसके कधे पर से गणेश भी गिर गये। ऐसे गणेश हमे अकुंठित और सुन्दर वुद्धि तथा वाणी प्रदान करें।

सत्कुंभौ दुंदुभी द्वौ भुजगसुखकरं वाद्यमुद्दंडशुंडां
तालौ वा कर्णतालौ त्रिपुरहरमहातांडवाडंवरे यत् ।
चंडाद्या वादयंति द्विपवदनविभोरेष तुष्टो विशिष्टं
स्वाविष्टः स्पष्टनृत्यं प्रविदधदधिकं पातु मामिष्टशिष्टं ॥२१॥

भावार्थः—शिव के ताण्डव नृत्य का जव विशाल समारोह होता है, तव चण्ड आदि गण गजानन के दो कुम्भस्थलों, कानो तथा लम्वी सूँड को क्रमशः दुन्दुभियो, तालो और पूंगी के रूप मे वजाते है। प्रसन्न होकर गणेश भी तव आवेश मे आजाते हैं और विशेप प्रकार का एक नृत्य करने लगते है वे मुझ कृपा-पात्र भक्त की रक्षा करें।

श्रीवक्रतुंडस्तव एष तुंड-
स्थितः सतां मंडितसूक्तिकुंडः ।
उद्दंडवेतंडघटाप्रचंड-
विद्यामणीकुंडलदः सदा स्यात् ।।२२।।

भावार्थः—गणेश का यह स्तोत्र मनोहर सूक्तियों का कुण्ड है। इसे पढ़कर साधु पुरुष प्रमत्त हाथी, प्रचण्ड विद्या, मणि और कुण्डल सदा प्राप्त करें।

इति गणेशस्तोत्रम् ।

स्वनामस्रजं गायतः स्रस्तरोगा-
नजस्रं जनान्दस्रवद्वै वितन्वन् ।
जयन्नस्रपान्भूषयन्घस्रमुच्चैः
सहस्रद्युतिस्संमुदेस्तादुदुस्रः ।।२३।।

भावार्थ—अपने नाम का स्मरण करने वाले लोगों को सूर्य अश्विनी कुमारों के समान सदा नीरोग बनाता रहा है। वह राक्षसों पर विजय पाता रहा है। उसकी हजार किरणें हैं वह हमें आनन्द प्रदान करे।

सत्पीतं चामरं किं कलयति तपनो धार्यमाणं दिगीशैः
सूताभावाहभाभिः कृतपटघटनायापि सूचीसहस्रं ।
वेध्दुं तद्ध्वांतदंतावलसबलबलं स्वर्णबाणव्रजं वा
तर्क्यंते तर्क्यलोकैरिति रविकिरणा येत्र ते पुत्रदाः स्युः ।।२४।।

भावार्थ—"क्या यह सूर्य दिक्पालों पर सुनहला चँवर उड़ा रहा है ? या अरुण और अश्वों की आभाओं के बने लाल-हरे रंग के वस्त्रों को जोड़ने के लिये हजार सुइयां तैयार चला रहा है ? अथवा अन्धकार रूपी हाथियों के सबल सैन्य को बींधने के लिये सोने के वाण छोड़ रहा है ?" तर्क शील मनुष्य सूर्य की जिन रवि--किरणों के विषय में इस प्रकार तर्कना करते हैं, वे हमें पुत्र प्रदान करें।

जाते यस्योदये सावुदयगिरिवरः सूर्यवाहारुणाभा–
रूपैः शुद्धैर्हिरण्यैर्मरकतमणिभिः पद्मरागैः कृतं द्राक्
शृंगस्तोमे समस्ते रचयति निचयं भूषणानां यथेच्छं
यादृग्यत्रोपयुक्तं स भवतु भगवन्भूतये भानुमाली ।।२५।।

भावार्थः—वह ऐश्वर्यशाली सूर्य हमें वैभव प्रदान करे, जिसके उदय होने पर यह उदयाचल अपने समस्त शिखरो को मनचाहे और सुन्दर आभूषणो से अलंकृत करता है। ये आभूपण सूर्य, अश्व एवं अरुण की सुनहली, हरी तथा लाल किरणों के रूप मे क्रमशः सुवर्ण, मरकत मणि और पद्मराग के वने प्रतीत हो है।

प्राच्या मूर्द्धना धृतोसौ मरकतकनकोद्भासितोत्तंस उच्चै–
र्वृत्तोद्यत्स्वर्णपत्रं हरिदरुणपटं छत्रकं मूर्द्धिन मेरोः ।
वर्षाशंस्यद्भुतं वा हरिधनुरधुना कुंडलीभूतमित्थं
सूतस्वाश्वप्रभाभृत्सुमुनिभिरुदितं मंडलं पातु पूष्णः ।।२६।।

भावार्थः—"क्या यह पूर्व दिशा ने अपने मस्तक पर शिरोभूषण पहना है, जो सोने का बना है और मरकत मणि जटित है? अथवा मेरु के मस्तक पर यह वृत्ताकार विशाल सोने का छत्र है, जिसमे लाल–हरे रंग के वस्त्र लगे है? या वर्षा सूचक यह इन्द्र–धनुप है, जो इस समय कुंडलाकार हो गया है?" मुनियो ने सारथी अरुण की, सूर्य की तथा अश्वों की लाल, पीली और हरी किरणों वाले जिस रवि–मंडल का इस प्रकार वर्णन किया है, वह हमारी रक्षा करें।

मुक्तागुच्छं विवस्वद्वपुररुणमणि विद्रुमं सूतरूपं
छत्रं सत्पुष्परागं हरिहरितमणीन्दीर्घवैडूर्यदंडान् ।
विभ्रद्वज्रस्य चक्रं त्वसितमणिधुर धन्यगोमेदमंचं
श्रीभानोः स्यंदनस्ते मनसि खलु धृतो हंतु सर्वग्रहार्ति ।।२७।।

भावार्थः—सूर्य के रथ मे मोतियों के गुच्छे सुशोभित है। वहाँ सूर्य का देह रूप पद्मराग, सारथी रूप विद्रुम, छत्र रूप पुखराज और अश्व रूप मरकत मणियाँ

भी विद्यमान है। उसके डंडे वैडूर्य मणि के है। पहिया वज्र मणि का है। इसी प्रकार उसका धुरा नील मणि का और मच गोमेद मणि का है। हे राजन् ! आप उसका ध्यान कीजिये। वह आपके नवों ग्रहों से उत्पन्न होने वाले कष्टों को दूर करे।

विश्रामच्छद्मना ये लघुगमनकरा मूर्द्ध्नि मेरोर्द्युनद्याः
कल्लोलोल्लासितेस्मिन्मयुवरयुवतीसंचये चंचलाक्षाः।
हेषासंकेतशब्दैर्विदधति भृशमासक्तिमह्नां गुरुत्वं
ग्रीष्मे कुर्वंति युक्तं हरिहरय इतस्ते श्रियं ते दिशंतु ॥२८॥

भावार्थः—सूर्य के अश्व मेरुपर्वत पर विश्राम करने के बहाने धीमी चाल से चल कर, आकाश गंगा की तरंगों से प्रफुल्लित किन्नर युवतियों को चंचल नेत्रों से देखते है और हिनहिनाकर सांकेतिक शब्दों से उनके प्रति अतिशय अनुराग व्यक्त करते हैं। ग्रीष्मकाल में दिन के बड़े होने का कारण यही है। हे राजन् ! ऐसे अश्व आप को लक्ष्मी प्रदान करें।

चक्राग्रं शक्र सम्यक् धुरि यम समतामक्षमाधेहि रक्ष–
स्त्वं वीतीन्वीतिहोत्रारुणमिह वरुण स्थापय त्वं रथेशं।
वायो वाऽऽयोजयत्वं रथमथ धनदाराधनं त्वं हरीणां
शंभो त्वं भोः प्रियं मे वदति तदरुणो दिक्पतीन् शास्ति सोव्यात् ॥२९॥

भावार्थः—"हे इन्द्र ! पहिये के अग्र भाग को ठीक तरह थामों। हे यम ! धुरे को सन्तुलित रखो। हे रक्षस् ! सारथी अरुण को यहाँ बिठाओ। हे वायु ! रथ को जोतो। हे कुबेर ! अश्वो की आराधना करो। हे शंभु ! आप मेरा मंगल करो।" जो सूर्य दिक्पालो को इस प्रकार कहकर उन पर शासन करता है, वह हमारी रक्षा करे।

आश्लेषे पश्चिमाशाकुचयुगविलसत्कुंकुमालेपसक्तः
किंवा वालैः प्रवालैर्जलनिधिजठरे स्पर्शनैर्घर्षणैश्च।

प्रेम्णा वाच्छादितः किं हरिहरिदबलापाणिना सत्कुसुंभा-
रक्तेनैवांबरेण .... ॥३०॥

भावार्थः—क्या यह सूर्य पश्चिम दिशा रूपी रमणी से आलिंगन करते समय उसके कुचों पर लगे कुंकुम में सन गया है ? अथवा समुद्र के अन्तराल में नवीन प्रवालों के स्पर्शन घर्षण से इसका रंग लाल हो गया है ? या पूर्व दिशा रूपी सुन्दरी ने इसे कुसुंभिया वस्त्र ओढ़ा दिया है ! ....

[इति सूर्य-स्तोत्रम्]

राजप्रशस्तिः महाकाव्यम् के प्रथम सर्ग की दूसरी शिला का फोटो चित्र

॥ श्रीः ॥

॥ ॐ नमः श्रीगणेशाय नमः ॥

प्रथमः सर्गः

[दूसरी शिला]

मुनिनृपमनुजेभ्यो दर्शनं संप्रदातुं
परमकरुणयैवागत्य कैलासशैलात् ।
तटभुवि कुटिलाया एकलिंगस्त्रिकूटे
स्थित इह विवरेद्रौ राजसिंहेशमव्यात् ॥१॥

भावार्थः—एकलिंग महाराणा राजसिंह की रक्षा करें, जो परम करुणा करके कैलास पर्वत से आकर, मुनियो, नरेशों और मनुष्यों को दर्शन देने के लिये, कुटिला नदी के किनारे त्रिकूठ पर्वत के विवर में विराजमान हुए।

तुहिनकिरणहीरक्षीरकर्पूरगौरं
वपुरपि जलदाभं कालिकापांगवल्ल्याः ।
प्रतिकृतिघटनाभिर्बिभ्रदभ्रांतभक्तः
कलयतु तव राजन्मंगलान्येकलिंगः ॥२॥

भावार्थ—हे राजन् ! भक्तों का ध्यान रखने वाले वे एकलिंग आपका मंगल करें, जिनका शरीर चन्द्र, हीरक, क्षीर और कर्पूर के समान गौरवर्ण होते हुए भी, पार्वती की अपांग-वल्ली के प्रतिबिंब के गिरने से मेघ के समान श्यामवर्ण हो जाता है।

चतुर्मितपुमर्थसद्वितरणाय सद्भ्यः सदा
चतुर्भुजधरो मुदा किल चतुर्युगोद्यद्यशाः ।
चतुर्भुजहरिश्चिरं निजचतुर्भुजाभिः शुभं
चतुःश्रुतिसमीरितं दिशतु राजसिंहप्रभोः ॥३॥

भावार्थ—सज्जन पुरुषों में चारो प्रकार के पुरुषार्थ का वितरण करने के लिये जिसने चार भुजाएँ धारण कर रखी है तथा जिसका यश चारों युगों में फैला

हुआ है, वह चतुर्भुज विष्णु अपने चारों हाथों से, महाराणा राजसिंह का, चारो वेदों में कथित, मंगल प्रदान करे।

जगदखिलजनानां पालनादस्ति यांवा
निगमवचसि यांबालांविकांवा किलोक्ता।
सुखयतु सहितं त्वां पुत्रपौत्रप्रपौत्रै—
रवतु तव तु गोत्रं सांविका राजसिंह ॥४॥

भावार्थः—हे राजसिंह! वह अंबिका पुत्र, पौत्र एवं प्रपौत्र सहित आप को सुखी रखे और आप के गोत्र की रक्षा करे जो संसार के समस्त मनुष्यों का पालन करने से अंबा और निगम-वाणी में अंबाला, अबिका तथा अम्बा कही गई है।

ऐंदिरं विभवं दद्यात् शौक्लीं वृत्तिं दधत्यलं।
बुधे प्रसन्नासौः (सौ) स्फूर्जद्वाला भूप प्रवालभाः ॥५॥

भावार्थः—हे राजन्! सत्व गुण को धारण कर विद्वान् पर अतिशय प्रसन्न होने वाली एव दीप्तिमती वह बाला देवी आप को धन-समृद्धि प्रदान करे, जिसकी कान्ति प्रवाल के समान है।

दधदतुलकरे द्राङ्मोदकं यस्य भक्तः
कलयति सफलार्थं मोदकं राजसिंह।
नृपवर स तु विघ्नं विघ्नराजो विनिघ्नन्
रचयतु तनयस्ते मंगलं मंगलायः ॥६॥

भवार्थः—हे नृप-श्रेष्ठ राजसिंह! पार्वती-पुत्र गणेश आपके विघ्नो का नाश करता हुआ आप का मंगल करे, जिसके हाथ में मोदक रखकर भक्त आनन्द-दायक सफल अर्थ को तत्काल पा लेता ।

प्रथमनृपमनौ यह सिद्धिदाता विवस्वान्
अपरमनुमिव त्वां वीक्ष्य सिद्धिं प्रदातुं।
दशशतकरयुक्तो युक्तमेवेत्यहो त्वा-
मवतु स तु नितांतं भूपते राजसिंह ॥७॥

भावार्थः—हे पृथ्वीपति राजसिंह ! प्रथम नृपति मनु को जिस सूर्य ने सिद्धि प्रदान की थी, उसीने आपको दूसरे मनु के रूप में देखकर सिद्धि देने के लिये मानों सहस्र कर धारण कर लिये है। यह ठीक ही है। वह आपकी रक्षा करे।

धीरः कविः स्फुटपुराणवरोनुशास्ता
धाता स्फुरद्‌गुणगणस्य तमःसपत्नः।
आदित्यवर्ण इह मां मधुसूदनोव्या-
त्कार्येतिदुस्तरतरे प्रविशंतमद्धा ॥८॥

भावार्थः—प्रशस्ति की रचना करना मेरे लिये बड़ा ही कठिन काम है। फिर भी इसे मै हाथ में ले रहा हूँ। इस समय वह मधुसूदन मेरी रक्षा करे, जो धीर, सर्वज्ञ, पुरातन-श्रेष्ठ, सृष्टि का शासक, गुणों का आधार या कर्त्ता, अज्ञान का शत्रु एवं सूर्य सदृश दीप्तिमान है।

इति मंगलाष्टकम्

यस्यासीन्मधुसूदनस्तु जनको जातः कठोंडीकुले
तेलंगः कविपंडितः सुजननी वेणी च गोस्वामिज।
कुर्वे राजसमुद्रनामकजलाधार प्रशस्ति त्वहं
सोदर्य रणछोड़ एष भरताद्यं लक्ष्मणं शिक्षयन् ॥९॥

भावार्थः—मेरे पिता मधुसूदन ने तेलंग जाति के कठोंडी कुल में जन्म लिया। वह कवि और पंडित है। मेरी माता गोस्वामी की पुत्री वेणी है। मेरा नाम रणछोड है। भारत से बड़े सहोदर लक्ष्मण को शिक्षा देते हुए में राजसमुद्र नामक सरोवर की प्रशस्ति रचता हूँ।

पूर्णे सप्तदशे शते समतनोत्स्वष्टादशाख्येब्दके
माघे श्यामलपक्षके नरपतिः सत्सप्तमीवासरे।
धोधुंदावसतिर्जलाशयमहारंभं च तस्याज्ञया
प्रारंभं रणछोड़ एष कृतवाँस्तस्य प्रशस्तेस्तथा ॥१०॥

भावार्थः—गोगूंगा में रहते हुए नृपति राजसिंह ने सं० १७१८, माघ कृष्णा सप्तमी के दिन सरोवर के निर्माण का कार्यारंभ किया। तदनुसार, इस रणछोड़ ने भी, नृपति के आदेश से, उक्त सरोवर की प्रशस्ति की रचना प्रारम्भ की।

वर्ण्यं त्ववर्ण्यमिति वेत्ति न बालको वा
हृद्यार्थकथक एव गुणज्ञजन्तुः ।
सोऽहं तथैव गुणवृन्दसभोपविष्टः
किंचिद्वदामि मम बाल्यमिदं क्षमध्वं ॥११॥

भावार्थः—"क्या वर्णन करना चाहिए और क्या नहीं ?" इस बात को बालक तो नहीं, अर्थ का पारखी और सही बोलने वाला निर्भीक व्यक्ति ही समझ सकता है । मैं भी एक बालक हूँ, जो गुणवानों की सभा में बैठकर कुछ बोल रहा हूँ । मेरी इस धृष्टता को क्षमा करें ।

जिह्वासु चेत्फणिपतिर्लिखनेषु कार्त-
वीर्यार्जुनो वचसि वाक्पतिरेव वाहं ।
ज्ञातुं गुणांस्तव तदा निपुणो भवामि
कांश्चित्ततो नृप वदाम्यति साहसेन ॥१२॥

भावार्थः—हे पृथ्वीपति ! यदि मैं जिह्वा में शेषनाग, लिखने में कार्त्तवीर्यार्जुन और वाणी में बृहस्पति होऊँ, तभी आप के गुणों को समझ सकता हूँ । इस कारण यहाँ मैं आपके कुछ ही गुणों का वर्णन कर पा रहा हूँ और वह भी अति साहस करके ।

पुण्याजनार्दनहरेस्तु कथास्ति पुण्य-
श्लोकस्य वा नलनृपस्य युधिष्ठिरस्य ।
तादृक्कथा जयति बाप्पनृपस्य वक्ष्ये
श्रीराजसिंह नृपतेरपि सत्कथां तत् ॥१३॥

भावार्थः—जनार्दन हरि, पुण्यश्लोक राजा नल एवं युधिष्ठिर की जो पवित्र कथा है, उसी के समान पृथ्वीपति बाप्प और नृपति राजसिंह की कथा भी सर्वोपरि है । उस सुन्दर कथा को मैं कहूंगा ।

रामायणे भारतेऽस्ति प्रोक्तानां भूभुजां यशः ।
यथा राज्ञामिहोक्तानां स्यात्तथाऽऽचंद्रतारकं ॥१४॥

भावार्थः—जिस प्रकार रामायण और महाभारत में वर्णित राजाओं का यश स्थिर है, उसी प्रकार इस प्रशस्ति में कथित राजाओं का यश भी जब तक चन्द्रमा और तारे है तब तक बना रहे।

खंडप्रशस्तिर्भुवने रामचंद्रस्य शोभते।
श्री अखंडप्रशस्तिस्ते राजसिंह विराजते ॥१५॥

भावार्थः—हे राजसिंह ! संसार में रामचन्द्र की 'खंड प्रशस्ति' शोभा पा रही है और आपकी यह अखंड प्रशस्ति।

मर्त्यायुष्यैस्तुल्यमायुस्तु भाषा-
ग्रंथानां स्याद्देववाग्भारतादेः।
देवायुष्यैस्तुल्यमायुस्ततोहं
ग्रंथं कुर्वे राण गीर्वाणवाण्या ॥१६॥

भावार्थः—हे राणा ! भाषा-ग्रन्थों की आयु मनुष्यों की आयु के समान नश्वर और संस्कृत भाषा के महाभारत आदि ग्रन्थो की आयु देवताओं की आयु के समान अमर होती है। अतः मैं इस ग्रन्थ की रचना संस्कृत भाषा में करता हूँ।

व्यासवाल्मीकिवद्वन्द्यो बाणश्रीहर्षवन्नृपैः।
स संस्कृतकवी राज्ञां यशोंगस्थापकश्चिरं ॥१७॥

भावार्थ.—सस्कृत भाषा का कवि राजाओं द्वारा बाण और श्री हर्ष के समान पूजा जाता है, क्योकि वह राजाओं के यश रूपी शरीर को चिरस्थायी बनाने वाला होता है।

श्रीराणाराजसिंहस्य वर्णनं कर्त्तुमुद्यतः।
भूपान्बाप्पादिकान्वक्तुं वक्ष्येह मुनिसंमतिं ॥१८॥

भावार्थः—राणा राजसिंह का वर्णन करने के लिये मै तत्पर हूं। यहा मैं बाप्प आदि राजाओ के वर्णन में मुनियो के मत को कहता हूँ।

वक्ष्ये वायुपुराणस्य मेदपाटीयखंडके ।
षष्ठेऽध्याये त्वेकलिंगमाहात्म्ये वाक्यमीरितं ।।१९।।

भावार्थ—वायुपुराण के मेदपाटीय खंड के छठे अध्याय में एकलिंगमाहात्म्य के अन्तर्गत कहे गये वचन को कहता हूँ ।

अथ शैलात्मजा ब्रह्मन् शोकव्याकुललोचना ।
नंदिनं प्रथमं वाष्पं सृजंती तमुवाच ह ।।२०।।

भावार्थ—"हे ब्रह्मा ! इसके वाद, शोक से व्याकुल नेत्रोंवाली पार्वती आंसू वहाती हुई पहले नन्दी से वोली ।

यस्माद्वाष्पं सृजाम्यद्य वियोगात् शंकरस्य च ।
पूर्वदत्ताच्च मच्छापाद्वाष्पो राजा भविष्यसि ।।२१।।

भावार्थः—क्योंकि आज मैं शंकर के वियोग से वाष्प [=अश्रु] वहा रही हूँ । इस कारण मेरे पूर्वदत्त शाप से तुम वाष्प नामक राजा वनोगे और

आराध्य तं जगन्नाथं तीर्थे नागह्रदे शुभे ।
राज्यं शक्र इव प्राप्य पुनः स्वर्गमवाप्स्यसि ।।२२।।

भावार्थः—नागह्रद नामक तीर्थ मे उस जगन्नाथ की आराधना करके इन्द्र के समान राज्य पाकर पुन; स्वर्ग प्राप्त करोगे ।"

पुनश्चंडगणं प्राह पार्वती व्याकुलेक्षणा ।
मर्यादां हृतवानद्य द्वाररक्षेप्यरक्षणात् ।।२३।।

भावार्थः—इसके वाद व्याकुल नेत्रोंवाली पार्वती चंड नामक गण से वोली:—"द्वार-रक्षक होते हुए भी तुमने आज, रक्षा न कर, मर्यादा भंग की है" ।

हारीत इति नाम्ना त्वं मेदपाटे मुनिर्भव ।
तत्राराध्य शिवं देवं ततः स्वर्गमवाप्स्यसि ।।२४।।

भावार्थः—इस कारण तुम मेदपाट में हारीत नामक मुनि वनों । वहाँ भगवान् शिव की आराधना करने के पश्चात् तुम्हे पुनः स्वर्ग प्राप्त होगा ।

इति वायुपुराणस्य संमतिस्तत्र विस्तरः ।
द्रष्टव्यो वाप्पवंशेस्मिन् कार्यः शिष्टैस्तदादरः ।।२५।।

भावार्थः—यह वायुपुराण की संमति है । विद्वानों को विस्तार पूर्वक इसे वायुपुराण में देखना चाहिये और वाप्प-वंश के संबंध में उसका आदर करना चाहिये ।

न मे विज्ञानतरणी राजसिंहगुणांबुधेः ।
पाराप्त्यै वक्त्रमुडुपमस्याज्ञाकरमाश्रये ।।२६।।

भावार्थः—राजसिंह के गुणों के सागर को पार करने के लिये मेरे पास विज्ञान की नौका नही है, आज्ञाकरी मुख--रूप डोंगी ही है उसीका आश्रय लेता हूँ ।

सालंकारमणिः सूक्तिमौक्तिकः सद्रसामृतः ।
राजप्रशस्तिग्रंथोस्ति समुद्रोन्यः सुवर्णभूः ।।२७।।

भावार्थ.—यह राजप्रशस्ति ग्रन्थ दूसरा समुद्र है । इसमें अलंकार रूप मणियाँ हैं, सूक्तियाँ रूपी मुक्ताएँ है, रस रूप अमृत है तथा यह सुवर्ण =भू [=सुन्दर अक्षरों से रचित, चन्द्र का उत्पत्ति—स्थान] है ।

सेतिहासो भारतवत्प्रोक्तसूर्यान्वयः समः ।
रामायणेन पठनाद्ग्रंथस्तादृक् फलाय नः ।।२८।।

भावार्थः—यह ग्रन्थ महाभारत के समान ऐतिहासिक है । इसमें रामायण के सदृश सूर्य—वंश का वर्णन है । इसे पढ़ने पर हमें उनके समान फल मिले ।

श्रीराणाराजसिंहस्य महावीरस्य वर्णने ।
वाप्पः सूर्यान्वयी सर्गे सूर्यवंशं वदेग्रिमे ।।२९।।

भावार्थः—वाप्प सूर्यवंशी है । इस कारण महान् वीर राणा राजसिंह का वर्णन करने से पूर्व मैं अगले सर्ग में सूर्य—वंश का वर्णन करता हूँ ।

आसीद्भास्करतस्तु माधवबुधोस्माद्रामचंद्रस्ततः
सत्सर्वेश्वरकः कठोंडिकुलजो लक्ष्म्यादिनाथस्ततः ।
तेलंगोस्य तु रामचंद्र इति वा कृष्णोस्य वा माधवः
पुत्रोभून्मधुसूदनस्त्रय इमे ब्रह्मेशविष्णूपमाः ।।३०।।

भावार्थ—भास्कर का पुत्र माधव था । माधव के पुत्र हुआ रामचन्द्र और रामचन्द्र के सर्वेश्वर । सर्वेश्वर का पुत्र था लक्ष्मीनाथ, जो कठोंड़ी कुल मे उत्पन्न हुआ । उसके हुआ तेलंग रामचन्द्र । उस रामचन्द्र के ब्रह्मा, शिव और विष्णु के समान तीन पुत्र हुए—कृष्ण, माधव और मधुसूदन ।

यस्यासीन्मधुसूदनस्तु जनको वेणी च गोस्वामिजा
माता वा रणछोड एष कृतवान्राजप्रशस्त्याह्वयं ।
काव्यं सान्वयराजसिंहनृपति श्रीवर्णनाढ्यं मह–
द्वीरांकं प्रथमोत्र पूर्त्तिमगमत्सर्गोर्थवर्गोत्तमः ।।३१।।

भावार्थः—जिसका पिता मधुसूदन और माता गोस्वामी की पुत्री वेणी है, उस रणछोड़ ने राजप्रशस्ति नामक यह काव्य रचा है। इसमें नृपति राजसिंह, उसके वंश एवं वैभव का वर्णन है। इसके अतिरिक्त यह वड़े–वड़े योद्धाओं के जीवन–चरित्र से अंकित है । यहाँ यह पहला सर्ग सम्पूर्ण हुआ, जिसमें उत्तम अर्थ भरे है ।

इति श्रीमधुसूदनभट्टपुत्ररणछोडकृते
श्रीराजप्रशस्त्याख्ये महाकाव्ये
प्रथम . सर्ग : ।।

॥ ॐ नमः श्रीगणेशाय ॥

द्वितीयः सर्गः

[तीसरी शिला]

गुंजापुंजाभरणनिचयं चंद्रकालीकिरीटं
गोत्रं वेत्रं करकमलयोः पुंजितं चित्रवस्त्रं ।
मध्ये पीतं वसनमपरं किंकिणीं वक्रवेणीं
नासामुक्तां दधदतिमुदे तेस्तु गोवर्द्धनेंद्रः ॥१॥

वह गोवर्द्धनेन्द्र आपको अतिशय आनन्द प्रदान करे, जिसने गुंजाओं के आभूषण पहन रखे है, जिसका किरीट मोर पंख का बना है, जिसने एक हाथ में पर्वत उठा रखा है और दूसरे में बेंत ले रखी है, कमर में जिसके चित-कबरा वस्त्र बँधा हुआ है, जिसने अनुपम पीताम्बर और किंकिणी धारण कर रखी है, जिसकी वेणी वक्र है तथा नाक में जिसने मोती पहन रखा है ।

आदौ जलमयं विश्वं तत्र नारायणःस्थितः ।
हिरण्यहारी तन्नाभौ पद्मकोष इहाभवत् ॥२॥

प्रारंभ में विश्व जलमय था । वहाँ नारायण विद्यमान थे । उनकी नाभी से हिरण्य-हारी पद्मकोष और उस पद्मकोष से

ब्रह्मा चतुर्मुखस्तस्य मरीचिः कश्यपोस्य तु ।
सुतो विवस्वांस्तस्यासीन्मनुरिक्ष्वाकुरस्य सः ॥३॥

चतुर्मुख ब्रह्मा उत्पन्न हुआ । ब्रह्मा के मरीचि, उसके कश्यप, उसके विवस्वान्, उसके मनु और उसके इक्ष्वाकु नामक पुत्र हुआ ।

विकुक्षिः स शशादान्यनामा तस्य पुरंजयः ।
ककुत्स्थापरनामायमस्यानेनास्ततः पृथुः ॥४॥

भावार्थः—इक्ष्वाकु के विकुक्षि, अपरनाम शशाद, उसके पुरंजय, अपरनाम ककुत्स्थ, उसके अनेना, उसके पृथु,

ततोभूद्विश्वरंधिस्तु ततश्चंद्रस्ततोभवत् ।
युवनाश्वोस्य शावस्तो बृहदश्वोस्य वात्मजः ।।५।।

भावार्थः—उसके विश्वरंधि, उसके चन्द्र, उसके युवनाश्व, उसके शावस्त तथा उसके बृहदश्व हुआ ।

ततः कुवलयाश्वोभूद्धंधुमारापराभिधः ।
दृढाश्वोस्यास्य हर्यश्वो निकुंभस्तस्य वा ततः ।।६।।

भावार्थः—उसके हुआ कुवलयाश्व, जिसका अपर नाम धुंधुमार था । उसके दृढाश्व, उसके हर्यश्व, उसके निकुंभ, उसके

बर्हणाश्व; कुशाश्वोस्य सेनजित्तस्य वा ततः ।
युवनाश्वोस्य मांधाता त्रसद्दस्युपराभिधः ।।७।।

भावार्थः—वर्हणाश्व, उसके कृशाश्व, उसके सेनजित्, उसके युवनाश्व और उसके मान्धाता हुआ, जिसका दूसरा नाम त्रसद्दस्यु और वह

चक्रवर्त्यस्य तनयः पुरुकुत्सोस्य वा सुतः ।
त्रसद्दस्युर्द्वितीयोस्मादनरण्यस्ततोभवत् ।।८।।

भावार्थः—चक्रवर्त्ती था । उसके हुआ पुरुकुत्स और पुरुकुत्स के त्रसद्दस्यु, द्वितीय । उसके अनरण्य, उसके

हर्यश्वोस्यारुणस्तस्य त्रिवंधननृपस्ततः ।
सत्यव्रतस्त्रिशंकुस्तु तस्य नामांतरं ततः ।।९।।

भावार्थः—हर्यश्व, उसके अरुण, राजा त्रिवंधन, उसके सत्यव्रत, अपरनाम त्रिशंकु, उसके

हरिश्चंद्रो रोहितोस्य तस्य वा हरितस्ततः ।
चंपस्तस्य सुदेवोस्माद्विजयो भरुकोस्य वा ॥१०॥

भावार्थः—हरिश्चन्द्र, उसके रोहित, उसके चंप, उसके सुदेव, उसके विजय, उसके भरुक,

तस्माद्वृको वाहुकोस्य तत्पुत्रः सगरः स च ।
चक्रवर्त्ती सुमत्यां तु पत्न्यां तस्याभवन् सुताः ॥११॥

भावार्थः—उसके वृक, उसके वाहुक और उसके सगर हुआ। सगर के चक्रवर्त्ती था और उसकी सुमति नामक पत्नी से उसके पुत्र हुए

श्रेष्ठाः षष्टिसहस्रोद्यत्संख्याः सागरकारकाः ।
सगरस्यान्यपत्न्यां तु केशिन्यामसमंजसः ॥१२॥

भावार्थ—साठ हजार। वे श्रेष्ठ और समुद्र के निर्माता थे। सगर के उसकी दूसरी पत्नी केशिनी से उत्पन्न हुआ असमंजस।

ततोंशुमान्दिलीपोस्मात्तस्माज्जातो भगीरथः ।
ततः श्रुतस्ततो नाभः सिंधुद्वीपोस्य तत्सुतः ॥१३॥

भावार्थः—उसके अंशुमान्, उसके दिलीप, उसके भगीरथ, उसके श्रुत, उसके नाभ, उसके सिंधुद्वीप, उसके

अयुतायुस्तस्य जात ऋतुपर्णस्तु तत्सुतः ।
सर्वकाम· सुदासोस्य तस्मान्मित्रसहः पतिः ॥१४॥

भावार्थः—अयुतायु, उसके ऋतुपर्ण, उसके सर्वकाम, उसके सुदास और उसके मित्रसह हुआ। मित्र सह

मदयत्याः स कल्माषपादान्याख्योस्य चाश्मकः ।
मूलकोस्माद्दशरथस्तत ऐडविडस्ततः ॥१५॥

भावार्थ·—मदयन्ती का पति था। उसका अपर नाम कल्माषपाद था। उसके अश्मक, स के मूलक, उसके दशरथ, उसके ऐडविड, उसके

जातो विश्वसहस्तस्मात्खट्वांगश्चक्रवर्त्यतः ।
दीर्घबाहुर्दीलीपोस्य रघुरस्याज इत्यतः ॥१६॥

भावार्थः—विश्वसह, उसके चक्रवर्ती खट्वांग, उसके दीर्घबाहु, उसके रघु, उसके अज तथा उसके

जातो दशरथस्तस्य कौशल्यायां सुतोभवत् ।
श्रीरामचंद्रः कैकेय्यां भरतो रामभक्तिमान् ॥१७॥

भावार्थः—दशरथ हुआ। उसके उसकी पत्नी कौशल्या से रामचन्द्र तथा कैकयी से राम-भक्त भरत हुआ। इसी प्रकार

सुमित्रायां लक्ष्मणश्च शत्रुघ्नश्चेति रामतः ।
श्रीसीतायां कुशो जातो लवश्चेति कुशादभूत् ॥१८॥

भावार्थः—सुमित्रा से लक्ष्मण और शत्रुघ्न । राम के सीता से कुश और लव नामक दो पुत्र हुए। कुश के

कुमुद्वत्यामतिथिको निषधोस्य ततो नलः ।
नभोथ पुंडरीकोस्य क्षैमधन्वा ततोभवत् ॥१९॥

भावार्थः—उसकी पत्नी कुमुद्वती से अतिथि हुआ। उसके निषध, उसके नल, उसके पुंडरीक, उसके क्षेमधन्वा और उसके

देवानीकस्ततोऽहीनः पारियात्रोस्य तत्सुतः ।
वलस्तस्य स्थलस्तस्माद्वज्रनाभस्ततो भवत् ॥२०॥

भावार्थः—देवानीक हुआ। देवानीक के अहीन, उसके पारियात्र, उसके बल, उसके स्थल, उसके वज्रनाभ और उसके हुआ

संगणस्तस्य विधृतिः पुत्रस्तस्य सुतोभवत् ।
हिरण्यनाभः पुष्योस्माद्ध्रुवसिद्धिरततोभवत् ॥२१॥

भावार्थः—संगण । उसके विधृति, उसके हिरण्यनाभ और उसके पुष्य हुआ। पुष्य के ध्रुवसिद्धि, उसके

सुदर्शनोस्याग्निवर्णस्तस्य शीघ्रस्ततो मरुत् ।
ततः प्रसुश्रुतस्तस्मात्संधिस्तस्यतु मर्षणः ॥२२॥

भावार्थः—सुदर्शन, उसके अग्निवर्ण, उसके शीघ्र, उसके मरुत, उसके प्रसुश्रुत, उसके संधि और उसके मर्षण हुआ ।

ततो महस्वाँस्तस्याभूद्विश्वसाह्वः प्रसेनजित् ।
ततस्ततस्तक्षकोस्माद्‌बृहद्‌बल इतित्वयं ॥२३॥

भावार्थः—मर्षण के महस्वान्, उसके विश्वसाह्व, उसके प्रसेनजित्, उसके तक्षक और उसके बृहद्‌वल हुआ । वह

महाभारत संग्रामे निहितस्त्वभिमन्युना ।
एते त्वतीता व्यासेन संप्रोक्ता भारते नृपाः ॥२४॥

भावार्थः—महाभारत संग्राम मे अभिमन्यु के द्वारा मारा गया । व्यासने इन प्राचीन राजाओं का वर्णन महाभारत में किया है ।

अनागतान् जगादैवं व्यासस्तत्र वदामितान् ।
बृहद्‌बलाद्‌बृहद्रणस्तस्योरुक्रिय इत्यतः ॥२५॥

भावार्थः—महाभारत में जिनका समावेश नही हो पाया है, उनका नामोल्लेख व्यासने [भागवत में] इस प्रकार किया है । उनको मैं यहाँ वता रहा हूँ:— बृहद्‌वल के बृहद्रण, उसके उरुक्रिय, उसके

वत्सवृद्धः प्रतिव्योमस्तस्यास्माद्भानुरस्य वा ।
दिवाकस्तस्य पदवी वाहिनीपतिरित्यभूत् ॥२६॥

भावार्थः—वत्सवृद्ध, उसके प्रतिव्योम, उसके भानु और उसके दिवाक हुआ । दिवाक की पदवी 'वाहिनी-पति' थी ।

तस्यामीत्सहदेवोस्य बृहदश्वस्ततोभवत् ।
भानुमान् वा प्रतीकाश्वोस्य तस्मात्सुप्रतीकक: ॥२७॥

भावार्थः—उसके सहदेव, उसके बृहदश्व, उसके भानुमान्, उसके प्रतीकाश्व और उसके सुप्रतीक हुआ ।

ततोभून्मरुदेवोस्मात्सुनक्षत्रोस्य पुष्करः ।
ततोंतरिक्षः सुतपास्तस्मान्मित्रजिदस्य तु ।।२८।।

भावार्थः—सुप्रतीक के मरुदेव, उसके सुनक्षत्र, उसके पुष्कर, उसके अन्तरिक्ष, उसके सुतपा, उसके मित्रजित्, उसके

बृहद्भ्राजस्ततो वर्हिस्तस्मात्तस्य कृतंजयः ।
तस्माद्रणंजयस्तस्य संजयः शाक्य इत्यतः ।।२९।।

भावार्थः—बृहद्भ्राज, उसके वर्हि, उसके कृतंजय, उसके रणंजय, उसके संजय, उसके शाक्य, उसके

शुद्धोदोस्माल्लांगलोस्य प्रसेनजिदथत्वतः ।
क्षुद्रकस्तस्य रुणकस्तस्यासीत्सुरथस्ततः ।।३०।।

भावार्थः—शुद्धोद, उसके लांगल, उसके प्रसेनजित्, उसके क्षुद्रक, उसके रुणक, उसके सुरथ और उसके

सुमित्रस्तु सुमित्रांत इक्ष्वाकोरन्वयोभवत् ।
उक्ता भागवते स्कंधे नवमे ते मयोदिता : ।।३१।।

भावार्थः—सुमित्र हुआ । सुमित्र पर्यन्त इक्ष्वाकु का वंश चला । भागवत के नवम स्कन्ध में इन राजाओं का उल्लेख हुआ है । उनको मैंने यहाँ बताया है ।

द्वाविंशत्यग्रशतकमेषां संख्या कृता वदे ।
प्रसिद्धान्सूर्यवंशस्थान्वज्रनाभोभवत्ततः ।।३२।।

भावार्थः—इनकी संख्या एकसौ वाईस है । सुमित्र के वाद हुआ वज्रनाभ । उसके

महारथीति राजेद्रस्तस्मादतिरथि नृपः ।
तस्मादचलसेनस्तु सेनास्यत्वचला रणे ।।३३।।

भावार्थः—राजेन्द्र महारथी, उसके राजा अतिरथी और उसके अचलसेन हुआ उसकी सेना युद्ध में अचल रहती थी ।

तस्मात्कनकसेनोस्य महासेनोंग इत्यतः ।
तस्माद्विजयसेनोस्याऽजयसेनस्ततो भवत् ।।३४।।

भावार्थः—उसके कनकसेन, उसके महासेन, उसके अंग, उसके विजयसेन, उसके अजयसेन तथा अजयसेन के

अभंगसेनस्तस्मात्तु मदसेनस्ततोऽभवत् ।
भूपः सिंहरथस्त्वेते अयोध्यावानिनो नृपाः ।।३५।।

भावार्थः—अभंगसेन हुआ । उसके मदनसेन और मदनसेन के राजा सिंहरथ हुआ ये राजा अयोध्या में रहते थे ।

तस्माद्विजयभूपोयं मुक्त्वाऽयोध्यां रणागतान् ।
जित्वा नृपान्दक्षिणस्थानवसद्दक्षिणक्षितौ ।।३६।।

भावार्थः—सिंहरथ के राजा विजय हुआ । उसने अयोध्या छोड़ी और युद्ध-भूमि में दक्षिण देश के राजाओं को परास्तकर वह वहाँ—दक्षिण देश में—रहने लगा ।

तत्रास्याकाशवाण्यासीन्मुक्त्वा राजाभिधामथ ।
आदित्याख्या तु धर्त्तव्या भवता भवदन्वये ।।३७।।

भावार्थः—वहाँ उसके लिये आकाशवाणी हुई कि हे राजन् ! आप इस 'राज' पदवी छोड़कर अपने वंश में 'आदित्य' पदवी को धारण करें ।

जाता विजयभूपांता राजानो मनुपूर्वकाः ।
वीराःसंख्येरिता तेषां पंचत्रिंशद्युतं शतं ।।३८।।

भावार्थः—मनु से लेकर विजय तक जो वीर राजा हुए उनकी संख्या एक सौ पैंतीस बताई गई है ।

आसीदित्यादि ।

[इति] द्वितीयः सर्गः

संवत १७१८ वृषे माघमासे कृष्णपक्षे सप्तम्यां तथौ राजसमुद्रा मुहूरत राणे राजसींहजी कीधो ॥ संवन १७३२ वृषे माघमासे सुकलपक्षे १५ तिथौ राजसमुद्र प्रतिष्ठा कीधी [॥] गजधर मुकंद गजधर कल्याणजी सुत उरजण गजधर सुखदेव गजधर केसो ॥ सुंदर ॥ लाला ॥ सोमपुरा जाति ॥ चतुरा पुरव्य ॥ राम राम वाचनाजी [॥]

तृतीयः सर्गः

[चौथी शिला]

।। श्रीगणेशाय नमः ।।

उल्लोलीभवदुन्नताच्छसुरभीपुच्छच्छटाचामरः
सद्गोवर्द्धनधन्यगोत्रविलसच्छत्रो जितेंद्रो बली ।
गोपालैः कलितश्च गोपतनयासक्तो निजप्रेम वा-
न्यायाद्गोधनभक्तरक्षणपरः सच्चक्रवर्त्ती हरिः ।।१।।

भावार्थः—हरि चक्रवर्त्ती है उसके मस्तक पर गोवर्द्धन पर्वत का सुन्दर छत्र सुशोभित है। सुरभी का उन्नत एवं चंचल श्वेत पुच्छ उसके लिये चँवर है। वह बलशाली है। इन्द्र को उसने जीता है। ग्वाले उसकी सेवा में रहते हैं। वह गोपियों के प्रति अनुराग और स्वजनों पर स्नेह रखता है। गो धन एवं भक्तों की रक्षा करने में भी वह तत्पर रहता है। वह हमारी रक्षा करे।

ततो विजयभूपस्य पद्मादित्योभवत्सुतः ।
शिवादित्योस्य पुत्रोभूद्धरदत्तोस्य वा सुतः ।।२।।

भावार्थः—तदनन्तर विजय के पद्मादित्य, उसके शिवादित्य, उसके हरदत्त, उसके

सुजसादित्यनामास्मात्सुमुखादित्यकस्ततः ।
सोमदत्तस्तस्य पुत्रः शिलादित्योस्य चात्मजः ।।३।।

भावार्थः—सुजसादित्य, उसके सुमुखादित्य, उसके सोमदत्त, उसके शिलादित्य उसके

केशवादित्य एतस्मान्नागादित्योस्य चात्मजः ।
भोगादित्योस्य पुत्रोभूद्देवादित्यस्ततोभवत् ।।४।।

भावार्थः—केशवादित्य, उसके नागादित्य, उसके भोगादित्य, उसके देवादित्य, उसके

आशादित्यः कालभोजादित्योस्मात्तनयोग्य तु ।
ग्रहादित्य इहादित्यास्वतुर्दशमितास्ततः ।।५।।

भावार्थः—आशादित्य, उसके कालभोजादित्य और उसके ग्रहादित्य हुआ । यहाँ ये चौदह आदित्य गिनाये गये हैं इसके बाद

ग्रहादित्यसुताः सर्वे गहिलौताभिधायुताः ।
जाता युक्तं तेषु पुत्रो ज्येष्ठो वाप्पाभिधोभवत् ।।६।।

भावार्थः—ग्रहादित्य के सब पुत्र 'गहलोत' कहलाए । उनमे ज्येष्ठ पुत्र वाप्प हुआ, जो योग्य था ।

यं दृष्ट्वा नंदिनं गौरी दृशोर्वाष्पं पुराऽसृजत् ।
नंदो गणोसौ वाष्पोरिप्रियादृक्वाष्पदोऽभवत् ।।७।।

भावार्थः—जिस नन्दी को देखकर पार्वती ने पहले आँसू वहाये थे, वही नन्दी अव शत्रु-नारियों के नेत्रो को अश्रु देनेवाला 'वाष्प' नाम से उत्पन्न हुआ ।

हारीतराशिः सुमुनिश्चंडः शंभोर्गणोभवत् ।
तस्य शिष्योभवद्वाष्पस्तस्याज्ञातः प्रसादतः ।।८।।

भावार्थः—शंभु का चंड नामक गण मुनि हारीतराशि हुआ । वाष्प ने उसका शिष्यत्व ग्रहण किया । हारीत ने प्रसन्न होकर जव आज्ञा दी तव

नागह्लदपुरे तिष्ठन्नेकलिंगशिवप्रभोः ।
चक्रे वाष्पोऽर्चनंचास्मै वरान्रुद्रो ददौ ततः ।।९।।

भावार्थः—वाप्प ने नागह्लदपुर में रहकर भगवान् एकलिंग शिव की आराधना कीं तदनन्तर शिव ने भी उसे वरदान दिये:—

चित्रकूटपस्त्वं स्यास्त्वद्वंश्यचरणाद्ध्रुवं ।
मा गच्छताच्चित्रकूटः संततिः स्यादखंडिता ।।१०।।

भावार्थः—"तुम चित्रकूट के स्वामी होओ । चित्रकूट तुम्हारे वंशजों के अधिकार से कभी नहीं निकले । तुम्हारी संतति अखंड रहे ।"

प्राप्येत्यादिवरान्वाप्प एकस्मिन्‌शतके गते ।
एकाग्रनवतिस्वब्दे माघे पक्षे वलक्षके ।।११।।

भावार्थः—इत्यादि वरदान पाकर वाप्प १९१ वर्ष के माघ मास के शुक्ल पक्ष की

सप्तमी दिवसे वाप्पः स पंचदशवत्सरः ।
एकलिंगेशहारीतप्रसादाद्भाग्यवानभूत् ।।१२।।

भावार्थः—सप्तमी के दिन भगवान् एकलिंग और हारीत के प्रसाद से भाग्यवान् हुआ । तब उसकी आयु पंद्रह वर्ष की थी ।

नागह्रदाख्ये नगरे विराजी
नरेश्वरः खड्ग धरेषु धन्यः ।
बलेन देहेन च भोजनेन
भीमो रणे भीमतमो रिपूणा ।।१३।।

भावार्थः—वह नरेश नागह्रद नगर मे सुशोभित हुआ । वह खड्ग धारण करनेवालों में श्रेष्ठ तथा बल मे, देह में और आहार में भीम एवं रण-भूमि मे शत्रुओं के लिये भीमतम [=अति भयंकर] था ।

पंचाधिकत्रिंशदमंदहस्त-
प्रमाणयुक्पट्टपटं दधानः ।
बभौ निचोलं किल षोडशोद्य-
त्करप्रमाणं विमलं वसानः ।।१४।।

भावार्थः— पैंतीस हाथ के प्रमाण का तो पट्ट वस्त्र और सोलह हाथ के प्रमाण का स्वच्छ निचोल धारण कर वह शोभा पाता था ।

श्री एकलिंगेन मुदा प्रदत्तां
हारीतनाम्ने मुनयेथ तेन ।

दत्तं दधानः कटकं च हैमं
पंचाशदुद्यत्पलमानमास्ते ।।१५।।

भावार्थः— प्रसन्न होकर एकलिंग ने मुनि हारीत को सोने का एक कड़ा प्रदान किया था। मुनि ने वही कडा वाप्प को दे दिया। वाप्प उसे पहनता था। कड़े का वजन ५० पल था।

द्वात्रिंशदुद्यत्तमढव्वुकाद्यैः
प्रस्थाभिधैः शेरवरैः कृतस्य ।
मरणस्य चैकस्य भरं हि चत्वा-
रिंशन्मितैर्विभ्रदसिं दधानः ।।१६।।

भावार्थः—वत्तीस ढव्वुकों के वरावर एक प्रस्थ अर्थात् एक सेर और चालीस सेर के वरावर एक मन। ऐसे एक मन के वज़न की तलवार को वह धारण करता था।

एकप्रहारान्महिषौ महासे-
र्दुर्गार्चनायां जवतो विनिघ्नन् ।
भुंजन्महाछागचतुष्टयं स
अगस्त्यशस्त्यः प्रवभूव वाप्पः ।।१७।।

भावार्थः— दुर्गा–पूजा के अवसर पर वह अपनी वड़ी तलवार के एक प्रहार में दो महिषों का वध करता था। उसके आहार मे वड़े-वड़े चार वकरे काम आते थे। इस प्रकार वाप्प अगस्त्य के समान प्रशंसनीय हुआ।

ततः स निर्जित्य नृपं तु मोरी–
जातीय भूपं मनुराजसंज्ञं ।
गृहीतवांश्चित्रितचित्रकूटं
चक्रेत्र राज्यं नृपचक्रवर्त्ती ।।१८।।

भावार्थः—तदनन्तर उस चक्रवर्त्ती नरेश वाप्प ने मोरी जाति के मनुराज नामक राजा को पराजित किया और उससे चित्रकूट लेकर वह वहाँ राज्य करने लगा।

राज्यातिपूर्णत्ववरत्वलक्ष्मी-
मयत्वशब्दादिमवर्णयुक्तां।
तां रावलाख्यां पदवीं दधानो
वांप्पाभिधानः सरराज राजा ॥१९॥

भावार्थः— नृपति वाप्प 'रावल' पदवी को धारण कर सुशोभित हुआ, जिसमें 'राज्यातिपूर्णत्व', 'वरत्व' और 'लक्ष्मीमयत्व' शब्दो के प्रथम [तीन] वर्ण [रा व ल] लगे हैं।

ततः खुमानाभिधरावलोस्मा-
द्गोविंदनामाथ महेंद्रनामा।
आलूनृपोस्मादथ सिंहवर्मा
तस्यात्मजः शक्तिकुमारनामा ॥२०॥

भावार्थ — वाप्प के खुमान, उसके गोविन्द, उसके महेन्द्र, उसके आलू, उसके सिंहवर्मा, उसके शक्तिकुमार,

जातस्ततो रावलशालिवाहन-
स्तस्यात्मजोभून्नरवाहनस्ततः।
अबाप्रसादोस्य च कीर्त्तिवर्मक-
स्तत्पुत्र आसीन्नरवर्मनामकः ॥२१॥

भावार्थः— उसके शालिवाहन, उसके नरवाहन, उसके अवा प्रसाद और उसके कीर्त्तिवर्मा हुआ। कीर्त्तिवर्मा का पुत्र था नरवर्मा।

ततो नृपालो नरपत्यभिख्य-
स्त्वथोत्तमोस्मान्नृपभैरवोस्मात्।

श्रीपुंजराजोभवदस्य कर्णा-
दित्य: सुतोस्यापि च भावसिंह: ।।२२।।

भावार्थः— नरवर्मा के नरपति, उसके उत्तम, उसके भैरव, उसके पुंजराज, उसके कर्णादित्य और उसके भावसिंह हुआ ।

श्रीगोत्रसिंहोथ स हंसराजः
सुतोस्य सूनुः शुभयोगराजः ।
स वैरडाख्योथ स वैरिसिंह-
स्ततोस्य वा रावलतेजसिंहः ।।२३।।

भावार्थः— भावसिंह के गोत्रसिंह, उसके हंसराज, उसके शुभयोगराज, उसके तेजसिंह और

ततः समरसिंहाख्यः पृथ्वीराजस्य भूपतेः ।
पृथाख्याया भगिन्यास्तु पतिरित्यतिहार्दतः ।।२४।।

भावार्थः— तेजसिंह के समरसिंह हुआ । समरसिंह राजा पृथ्वीराज की बहिन पृथा का पति था । इस स्नेह के कारण उसने,

गोरी साहिवदीनेन गज्जनीशेन सगर ।
कुर्वतोऽखर्वगर्वस्य महासामतशोभिनः ।।२५।।

भावार्थः—जब गजनी के स्वामी शाहाबुद्दीन गोरी के विरुद्ध बडे बड़े सामन्तो को साथ मे लेकर महाभिमानी

दिल्लीश्वरस्य चोहाननाथस्यास्य सहायकृत् ।
सद्द्वादशसहस्रैः स्ववीराणां सहितो रणे ।।२६।।

भावार्थ.— दिल्ली-पति पृथ्वीराज चौहान लड रहा था, तब उसकी सहायता की । समरसिंह के साथ तब स्वयं के बारह हजार योद्धा थे । उसने रण-भूमि मे

वद्ध्वा गोरीपति दैवात्स्वयतिः सूर्यविवभित् ।
भाषारासापुस्तकेस्य युद्धस्योक्तोस्ति विस्तरः ॥२७॥

भावार्थ.— गौरी-पति को वाधा, पर दैवयोग से सूर्य-मंडल को भेदकर वह स्वर्ग सिधार गया । भाषा की 'रासा' नामक पुस्तक मे इस युद्ध का विस्तृत वर्णन है ।

तस्यात्मजोभून्नृपकर्णरावलः
प्रोक्तास्तु षड्विंशतिरावला इमे ।
कर्णात्मजो माहपरावलोभव-
त्स डूंगराद्ये तु पुरे नृपो वभौ ॥२८॥

भावार्थः— समरसिंह के कर्ण हुआ ये छब्वीस 'रावल' नरेश हुए, जिनका यहाँ उल्लेख हुआ है । कर्ण के हुआ माहप । वह डूंगरपुर का राजा वना ।

कर्णस्य जातस्तनयो द्वितीयः
श्री राहपः कर्णनृपाज्ञयोग्रः ।
वाक्येन वा शाकुनिकस्य गत्वा
मंडोवरे मोकलसीं स जित्वा ॥२९॥

भावार्थः— कर्ण के दूसरा पुत्र हुआ राहप । वह उग्र था नृपति कर्ण की आज्ञा एव शाकुनिक के कथन से मंडोवर पहुंच कर उसने मोकलसी पर विजय पाई तथा

तातांतिके त्वानयति स्म वद्धं
कर्णोस्य राणाविरुदं गृहीत्वा ।
मुमोच तं चारु ददौ तदीयं
रानाभिधानं प्रियराहपाय ॥३०॥

भावार्थः— उसे वाँध कर वह अपने पिता के समीप ले आया । कर्ण ने मोकलसी का 'राणा' विरुद छीनकर उसे छोड दिया और अपने प्रिय राहप को वह पदवी दे दी ।

भव्याशिषा ब्राह्मणपल्लिवाल-
ज्ञातीय विद्वच्छरशल्यनाम्नः ।
श्री चित्रकूटे बललब्धराज्यं ।।
चक्रे ततो राहप एष वीरः ।।३१।।

भावार्थः— तदनन्तर पल्लिवाल जाति के शरशल्य नामक विद्वान् ब्राह्मण के उत्तम आशीर्वाद से उस वीर राहप ने चित्रकूट पर बलपूर्वक राज्य किया ।

ततो बभौ चित्रकूटे राहपो वाहपोषकः ।
पूर्वं सीसोदनगरे वासात्सीसोदिया स्मृतः ।।३२।।

भावार्थः— तब अश्वों का पोषक वह राहप चित्रकूट पर सुशोभित हुआ । वह पहले सीसोद नगर में रहने के कारण सीसोदिया कहलाता था ।

रानाविरुदलाभेन रानेत्युक्तोखिलैर्बभौ ।
वंशस्याग्रे भविष्यति रानाविरुदिनो नृपाः ।।३३।।

भावार्थः— 'राना' विरुद के मिलजाने पर उसे सब लोग 'राणा' कहने लगे आगे भी इसवंश मे जो राजा होगे, वे 'राणा' विरुद धारण करेगे ।

राजेंद्रराजीपूज्योयं नारायणपरायण ।
विशेपणादिवर्णाढ्यां वीरा रानाभिधां दधे ।।३४।।

भावार्थः— वह राजेन्द्र-राजी-पूज्य एवं नारायण-परायण था । अर्थात् बड़े-बड़े राजा उसकी पूजा करते थे तथा वह नारायण का परम भक्त था । उसने जो 'राना' पदवी धारण की उसमें इन्ही दो विशेषणों के प्रथम दो वर्ण [राना] लगे हैं ।

आसीद्भास्करतस्तु माधवबुधोऽस्माद्रामचंद्रस्ततः
सत्सर्वेश्वरकः कठोंडिकुलजो लक्ष्मायादिनाथस्ततः ।
तेलंगोस्य तु रामचंद्र इति वा कृष्णोस्य वा माधवः
पुत्रोभून्मधुसूदनस्त्रय इमे ब्रह्मेशविष्णूपमाः ।।३५।।

भावार्थः—भास्कर का पुत्र माधव था। माधव के पुत्र हुआ रामचन्द्र और रामचन्द्र के सर्वेश्वर। सर्वेश्वर का पुत्र था लक्ष्मीनाथ, जो कठोंडी कुल में उत्पन्न हुआ उसके हुआ तेलंग रामचन्द्र। उस रामचन्द्र के ब्रह्मा, शिव और विष्णु के समान तीन पुत्र हुए —कृष्ण, माधव और मधुसूदन।

यस्यासीन्मधुसूदनस्तु जनको वेणी च गोस्वामिजाऽ-
भून्माता रणछोड एष कृतवान्राजप्रशस्त्याह्वयं।
काव्यं सान्वयराजसिंहसुगुणश्रीवर्णनाढ्यं मह-
द्वीराकं समभूत्तृतीय इह सत्सर्गः सुसर्गः स्फुटं ॥३६॥

भावार्थः—जिसका पिता मधुसूदन और माता गोस्वामी की पुत्री वेणी है, उस रणछोड़ ने राजप्रशस्ति नामक यह काव्य रचा है। इसमे नृपति राजसिंह, उसके वंश, वैभव एवं गुणो का वर्णन है। इसके अतिरिक्त यह बड़े-बड़े योद्धाओं के जीवन-चरित से अंकित है। यहाँ यह तीसरा सर्ग संपूर्ण हुआ जिसकी रचना बहुत सुन्दर हुई है।

इति श्रीतेलंगज्ञातीयकठोंडीकविपंडितोपनाममधुसूदन-भट्टपुत्ररण छोडकृते राजप्रशस्त्याह्वये महाकाव्ये तृतीयः सर्गः।

सं० १७३२ वर्षे माघी १५ राजसमुद्रप्रतिष्ठा ॥

चतुर्थः सर्गः

[पाँचवी शिला]

।। गणेशाय नमः ।।

कलितहलिनिचोलो नीललोलोंतिकेसौ
तरुरिति धृतवस्त्रा वेगतो यत्र गोप्यः ।
विदधति जलकेलिं यं च सिंचंति सोस्मा
न्सुखयतु यमुनायास्तीर[व]र्त्ती तमालः ।।१।।

भावार्थः—बलराम का नीला निचोल धारण कर यमुना-तट पर पास ही में खड़े साँवले और चंचल [कृष्ण] को देखकर गोपियो ने समझा कि यह तमाल का वृक्ष है और वे वस्त्र उतारकर चपलता से जल-केलि करने व उस वृक्ष पर पानी छिड़कने लगी । गोपियों का वह तमाल तरु हमे आनन्द प्रदान करे ।

तस्य पुत्रो नरपतो रानास्य जसकर्णकः ।
तत्सुतो नागपालोस्य पुण्यपालः सुतोस्य तु ।।२।।

भावार्थः—राहप के नरपति, उसके जसकर्ण, उसके नागपाल, उसके पुण्यपाल, उसके

पृथ्वीमल्लः सुतस्तस्य पुत्रो भुवनसिंहकः ।
तस्य पुत्रो भीमसिंहो जयसिंहोस्य तत्सुतः ।।३।।

भावार्थः—पृथ्वीमल्ल, उसके भुवनसिंह उसके भीमसिंह, उसके जयसिंह तथा उसके

लक्ष्मसिंहस्त्वेष गढमंडलीकाभिधोस्य तु ।
कनिष्ठो रत्नसी भ्राता पद्मिनी तत्प्रियाभवत् ।।४।।

भावार्थः—लक्ष्मणसिंह हुआ । वह 'गढमंडलीक' कहलाता था । उसका छोटा भाई रत्नसी था । रत्नसी की पत्नी पद्मिनी थी ।

तत्कृतेल्लावदीनेन रुद्धे श्रीचित्रकूटके ।
लक्ष्मसिंहो द्वादशस्वभ्रातृभिः सप्तभिः सुतैः ॥५॥

भावार्थः—पद्मिनी के लिये अल्लाउद्दीन ने जब चित्रकूट को घेर लिया तब लक्ष्मणसिंह अपने बारह भाइयों तथा सात पुत्रों

सहितः शस्त्रपूतोसौ दिवं यातोस्य चात्मजः ।
एक उर्वरितोऽजेसी राज्यं चक्रे ततोऽरसी ।[।६॥]

भावार्थः—सहित शस्त्राहत होकर स्वर्ग सिधार गया। उसका अजैसी नामक एक पुत्र बचा जिसने राज्य किया। उसके बाद, अरसी,

ज्येष्ठः सुतः पितुः संगे यो हतस्तत्सुतो दधे ।
राज्यं हमीरो दानींद्रो मूर्द्ध गंगाप्रदर्शकः ॥७॥

भावार्थः—जो लक्ष्मणसिंह का ज्येष्ठ पुत्र था और अपने पिता के साथ युद्ध में मारा गया था, के पुत्र हमीर ने राज्य किया। वह दानियों में श्रेष्ठ था। उसके मस्तक पर गंगा दिखाई देती थी। उसने,

विद्धरे त्विंद्रसरसि श्रीमूर्त्ति स्फाटिकीं धृतां ।
न प्राप्तां सुस्थ समये एकलिंगस्य तद्व्यधात् ॥८॥

भावार्थः—स्फटिक की बनी एकलिंग की मूर्ति, जो संकट के समय इन्द्रसर नामक सरोवर मे रख दी गई थी, के न मिलने पर, शुभ समय में,

मूर्त्ति चतुर्मुखीमेतां श्यामां श्यामायुतां ततः ।
क्षेत्रसिंहस्ततो लाखा लक्षदो मोकलस्ततः ॥९॥

भावार्थः—श्याम [पाषाण-निर्मित] इस चतुर्मुखी प्रतिमा की प्रतिष्ठा की। साथ में पार्वती की भी। तदनन्तर हमीर के क्षेत्रसिंह और उसके लाखा हुआ वह लाखों का दान देता था। उसके हुआ मोकल। उसने

भ्रातृरावतवाघस्याऽनपत्स्य फलाप्तये ।
वाघेलाख्यं तडागं तन्नाम्ना नागह्रदेकरोत् ।।१०।।

भावार्थः—सन्तति-हीन भाई रावत वाघ के मोक्ष के लिये नागह्रद में उसके नाम से 'वाघेला' नाम का एक तड़ाग वनवाया ।

त्रिद्वारं स्फटिकाभाश्मजुष्टं कैलासवन्नृपः ।
प्राकारमुत्तमाकारमेकलिंगप्रभोर्व्यधात् ।।११।।

भावार्थः—नृपति मोकल ने भगवान् एकलिंग के मन्दिर का उत्तम आकारवाला कैलास के समान परकोटा वनवाया, जिसकी जुडाई स्फटिक के समान सफेद पत्थरो से हुई है । उसमें तीन द्वार रखे गये ।

कृत्वायं द्वारका यात्रां शंखोद्धारं गतस्ततः ।
सिद्ध एकोस्य पत्न्यास्तु गर्भे राज्याप्तयेविशत् ।।१२।।

भावार्थः—इसके वाद द्वारका यात्रा करके वह शंखोद्धार नामक तीर्थ-स्थान पर पहुँचा । वहाँ एक सिद्ध ने राज्य प्राप्ति के लिये उसकी पत्नी के गर्भ में प्रवेश किया ।

स कुंभकर्णोभूत्पुत्रो मोकलस्यास्य मस्तकात् ।
स्रवति स्म जलं गांगं प्रसिद्धमिति निश्यभूत् ।।१३।।

भावार्थः—वही सिद्ध कुंभकर्ण नाम से मोकल का पुत्र हुआ । मोकल के मस्तक से रात में गंगा का जल वहता था, जो प्रसिद्ध ही है ।

कुंभकर्णोथ भूपोभूद्दुर्गकुंभलमेरुकृत् ।
स षोडशशतस्त्रीयुक् रायमल्लोथ राज्यकृत् ।।१४।।

भावार्थः—मोकल के वाद कुंभकर्ण राजा वना । उसने 'कुंभलमेरु' नाम का एक दुर्ग वनवाया । उसके सोलह सौ स्त्रियाँ थी । कुंभकर्ण के वाद रायमल ने राज्य किया ।

संग्रामसिंहस्तत्पुत्रः स द्विलक्षमितैर्भटैः ।
युक्तो वावरदिल्लीशदेशे फत्तेपुरावधि ।।१५।।

भावार्थः—रायमल के पुत्र संग्रामसिंह हुआ। दो लाख सैनिकों को साथ लेकर वह दिल्ली के स्वामी बाबर के देश में फतहपुर तक

गत्वात्र पीलियाखालपर्य(तं) पर्यकल्पयत् ।
स्वदेशसीमानमयं रत्नसिंहोथ राज्यकृत् ।।१६।।

भावार्थः—पहुँचा। वहाँ उसने पीलियाखाल पर्यन्त अपने देश की सीमा बनाई। तदनन्तर रत्नसिंह ने राज्य किया।

तद्भ्राता विक्रमादित्यो भूपोभूत्तस्य सोदरः।
राना उदयसिंहोथ स दिव्योदयसागरं ।।१७।।

भावार्थः—रत्नसिंह के बाद उसका भाई विक्रमादित्य पृथ्वीपति बना। तत्पश्चात् विक्रमादित्य का सहोदर उदयसिंह राणा हुआ। उसने उदयसागर नाम का एक सुन्दर सरोवर

तथोदयपुरं चक्रे तडागोत्सर्गकर्मणि ।
छीतूभट्टाय सोदर्यलक्ष्मीनाथयुतायच ।।१८।।

भावार्थः—बनवाया और उदयपुर नगर की स्थापना की। तड़ाग के प्रतिष्ठा-कार्य में उसने छीतूभट्ट एवं उसके सहोदर लक्ष्मीनाथ को

भूरवाडाग्राममदाद्व्यधाद्दानं तुलादिकं ।
चित्रकूटेथ योद्धास्य राठोडो जैमलो रणं ।।१९।।

भावार्थः—भूरवाड़ा नामक गाँव दिया। उस अवसर पर उसने तुलादिक दान भी दिये। तदनन्तर उसके योद्धा राठोड़ जैमल,

पत्ता सीसोदिया चक्रे दिल्लीशेन महायशाः।
अकब्बरेण भटयुग्वीर ईश्वरदासकः ।।२०।।कुलकं।।

भावार्थः—महान् यशस्वी सीसोदिया पत्ता और सैनिकों सहित वीर ईश्वरदास ने दिल्ली-पति अकबर से युद्ध किया।

प्रतापसिंहोथ नृपः कच्छवाहेन मानिना ।
मानसिंहेन तस्यासीद्वैमनस्यं भुजेर्विधौ ।।२१।।

भावार्थः—उदयसिंह के बाद प्रतापसिंह राजा हुआ । भोजन के प्रसग को लेकर अभिमानी मानसिंह कछवाहा से उसकी शत्रुता हो गई ।

अकब्बरप्रभोः पार्श्वे मानसिंहस्ततो गतः ।
गृहीत्वा तद्‌बलं ग्रामे खँभनौरे समागतः ।।२२।।

भावार्थः—इस कारण मानसिंह बादशाह अकबर के पास गया और उसकी सेना लेकर खमणोर गाँव मे आया ।

तयोर्युद्धमभूद्‌घोरं लोहकोष्ठगतस्य सः ।
मानसिंहस्य कुंभींद्रकुंभे शुंभपराक्रमः ।।२३।।

भावार्थः—वहाँ प्रताप और मानसिंह के बीच भीषण युद्ध हुआ । मानसिंह हाथी पर लोहे के बने होदे मे बैठा था । उसी हाथी के कुंभस्थल पर, शुंभ के समान पराक्रमी,

ज्येष्ठः प्रतापसिंहस्य अमरेशाभिधः सुतः ।
कुंतं शकुंतवेगोयं मुमुचारुणलोचनः ।।२४।।

भावार्थः—प्रतापसिंह के ज्येष्ठ पुत्र, अमरसिंह ने पक्षी की तरह झपटकर अपना भाला फैंका । उसकी आँखें क्रोध के कारण लाल हो रही थी ।

राणाप्रतापसिंहोथ मानसिंहस्य हस्तिन ।
कुंभे कुंतं मुमोचाशु पश्चाद्दंती पलायितः ।।२५।।

भावार्थः—इसके बाद राणा प्रतापसिंह ने भी मानसिंह के उस हाथी के कुंभस्थल पर अपना भाला अविलब फैंका । हाथी भाग गया ।

समयेत्र प्रतापेशं शक्तसिंहोस्य सोदरः ।
मानसिंहस्य संगस्थो दृष्ट्वैवं स्नेहतोवदत् ।।२६।।

भावार्थः—इसी समय राणा प्रताप को देखकर उसका सहोदर शक्तिसिंह, जो मानसिंह के समीप खड़ा था, स्नेह पूर्वक इस प्रकार बोलाः—

नीलाश्वस्याश्ववार त्व पश्चात्पश्य प्रभो ततः ।
प्रतापसिंहो ददृशे श्वमेकमथ निर्ययौ ॥२७॥

भावार्थः—"हे स्वामी ! नीले घोड़े के सवार !! पीछे देखो !" प्रताप ने एक अश्व देखा । इसके बाद वह वहाँ से निकल गया ।

ततो द्वौ मुगलौ वीरौ मानसिंहेन वेगतः ।
प्रेषितौ शक्तसिंहोपि गृहीत्वाज्ञा महाबलः ॥२८॥

भावार्थः—तदनन्तर मानसिंह ने तत्काल दो मुगल वीरों को [उसके पीछे] भेजा । मानसिंह की आज्ञा लेकर महाबली शक्तिसिंह भी चल पड़ा ।

मानसिंहस्य मुगलौ प्रतापेंद्रेण संगरं ।
चक्रतुः श्री प्रतापेन शक्तसिंहेन तौ ततः ॥२९॥

भावार्थः—मानसिंह के उन दो मुगलो ने राणा प्रताप से युद्ध किया । तब प्रताप और शक्तिसिंह के द्वारा वे दोनो

निहतौ हितकारीति शक्तसिंह सहोदरः ।
राणेनोक्तं शक्तसिंहवंशस्तद्राणवल्लभः ॥३०॥

भावार्थः—मारे गये । राणा ने कहा—"सहोदर शक्तिसिंह हितैषी है ।" इसी कारण शक्तिसिंह का वंश राणा का प्रिय बना ।

अकब्बर इहायातस्ततश्चक्रे स संगरं ।
प्रतापसिंहं बलिनं मत्वा शेखूसुनामकं ॥३१॥

भावार्थः—इसके बाद अकबर वहाँ पहुँचा और उसने युद्ध किया लेकिन प्रताप सिंह को बलशाली समझकर वह अपने शेखू नामक

संस्थाप्यात्र सुतं ज्येष्ठमागरां प्रति निर्ययौ ।
अमरेशः खानखानादाराणां हरणं व्यधात् ॥३२॥

ज्येष्ठ पुत्र को वहाँ रख स्वयं आगरा की ओर चला गया । अमरसिंह ने खानखाना की स्त्रियों का हरण किया ।

सुवासिनीवत्संतोष्य प्रेषयामास ताः पुनः ।
खानखानस्याद्भुतं तज्जातं शेखूमनस्यापि ।।३३।।

भावार्थः—किन्तु बहिन-बेटियों के समान उन्हें सन्तुष्ट कर उसने वापस भेज दिया । इस बात को लेकर खानखाना और शेखू के मन में आश्चर्य हुआ ।

ततः शेखू जहांगीरनामा दिल्लीश्वरोभवत् ।
पुनरत्रागतो युद्धं कृत्वा खुर्रमनामकं ।।३४।।

भावार्थः—इसके बाद शेखू जहाँगीर नाम से दिल्ली का स्वामी बना । एक बार फिर वहाँ आकर उसने युद्ध किया । तत्पश्चात् खुर्रम नामक

संस्थाप्यात्र सुतं स्वीयं रुद्धं कृत्वा प्रतापिनं ।
प्रतापसिंहं चतुरशीतिसैन्यैर्वृतं गतः ।।३५।।

भावार्थः—अपने पुत्र को वहाँ रखकर तथा प्रतापी प्रतापसिंह को चौरासी सैनिकों से घेरकर वह

दिल्लीं प्रति प्रतापेशो घट्टे देवेरनामके ।
सुलतानं सेरिमाख्यं चकताख्य गजस्थितं ।।३६।।

भावार्थः—दिल्ली की ओर चला गया । प्रताप ने दीवेर के घाटे में, हाथी पर बैठे हुए सुलतान सेरिम चकता को

दिल्लीशस्य पितृव्यं तं वीक्ष्याभूत्संमुखस्ततः ।
सोलंकिभृत्यश्चिच्छेद गजांह्री पडिहारकः ।।३७।।

भावार्थः—देखकर उसका सामना किया । चकता दिल्ली-पति का काका था । तब सोलकि-भृत्य पड़िहार ने सेरिम के हाथी के दो पाँव काट दिये ।

प्रता [प] सिंहो राणेंद्रो रणे रावणविक्रमः ।
शकुंतवेगः कुंतेन कुंभिकुंभं बभंज सः ।।३८।।

भावार्थः—युद्ध में रावण के समान पराक्रमी राणा प्रतापसिंह ने भी पक्षी की तरह झपटकर भाले से उस हाथी के कुंभस्थल को फोड़ दिया ।

पपात कुंभी तुरगमारुरोहाथ सेरिमः ।
अमरेशः स्वकुंतेन न्यहनत्सेरिमाभिधं ।।३९।।

भावार्थः—हाथी गिर गया। तब सेरिम घोड़े पर चढ़ा। अमरसिंह ने भाले से सेरिम पर वार किया।

स कुंतः सशिरस्त्राणवर्माश्वं तमखंडयत् ।
अमरेशकराकृष्टः सकुंतो न विनिःसृतः ।।४०।।

भावार्थः—अमरसिंह के भाले ने टोप, कवच और अश्व सहित उसे छिन्न-भिन्न कर दिया। अमरसिंह ने हाथ से भाले को खींचा, पर वह निकला नहीं।

ततः प्रतापेंद्राज्ञातो दत्त्वा लत्तां पदेन सः ।
कुतं चकर्षामिर्षेण कुंताप्त्या हर्षमादधे ।।४१।।

भावार्थः—तब प्रताप की आज्ञा से उसने पाँव से लात देकर भाले को क्रोध पूर्वक खीचा। भाले के निकल जाने पर उसे हर्ष हुआ।

दर्शनीयः स येनाहं निहतः सेरिमोवदत् ।
प्रतापसिंहस्तच्छ्रुत्वा प्रैषयत्कंचिदुद्भटं ।।४२।।

भावार्थः—सेरिम ने कहा—"जिसने मुझे मारा है, उसे दिखलाइये।" यह सुनकर प्रतापसिंह ने उसके पास किसी योद्धा को भेजा।

भटं तं वीक्ष्य तेनोक्तं नायं प्रेष्यः स एव तु ।
राणेंद्रः प्रेषयामास अमरेशं रणोत्कटं ।।४३।।

भावार्थः—उस वीर को देखकर सेरिम बोला—"यह नहीं है। उसी को भेजिये।" महाराणा ने तब रणोन्मत्त अमरसिंह को भेजा।

तं दृष्ट्वा सेरिमोवाच सोयमस्ति मयेक्षितः ।
युद्धकाले नभोभूमिव्यापिशीर्षशरीरवान् ।।४४।।

भावार्थः—उसे देखकर सेरिम ने कहा:—"यह वही है, जिसे मैंने युद्ध में देखा है। उस समय इसका मस्तक तो आसमान से जा लगा था और शरीर पृथ्वी पर फैल गया था।

देवानेन हतोहं हि यास्ये स्थानं शुभं ततः ।
कोसीथलाद्येषु चतुरशीतिप्रमिता गताः ।।४५।।

भावार्थ.—हे महाराणा ! मैं इसके द्वारा मारा गया हूँ । इस कारण मैं देवलोक में जाऊँगा । इसके वाद कोसीथल आदि स्थानों मे नियुक्त चौरासी

स्थानपालाः प्रतापेंद्रो महोदयपुरेवसत् ।
दानं ददौ कोपि भाटः प्राप्योष्णीषादिकं धनं ।।४६।।

भावार्थः—थानैत चले गये । प्रतापसिंह उदयपुर में रहने लगा । वह दान भी करता रहा । कोई भाट पगड़ी आदि धन

प्रतापसिंहादिल्लीशं द्रष्टुं यातस्तदंतिके ।
यदा प्राप्तस्तदा बद्धं तदुष्णीषं करेदधत् ।।४७।।

भावार्थः—प्रतापसिंह से लेकर दिल्ली-पति को देखने के लिये दिल्ली गया । वह जव वादशाह के समीप पहुँचा तव उसने बँधी हुई पगडी हाथ में रखली ।

गत्वा सलामं कृतवान्दिल्लीशेन तदेरितं ।
किमिदं सोवदद्राणाप्रतापोष्णीषमित्यतः ।।४८।।

भावार्थः—निकट जाकर जव उसने सलाम किया तव वादशाह ने कहा—"ऐसा क्यों ?" भाट ने उत्तर दिया—'राणा प्रताप की दी हुई यह पगड़ी है इस कारण

न धृतं मूर्न्धि दिल्लीशस्तुतोष ज्ञापिताशयः ।
तदा समस्ते जगति सर्वैर्हिंदूतुरुष्ककैः ।।४९।।

भावार्थः—मैंने इसे मस्तक पर धारण नहीं किया ।" आशय को समझकर वादशाह प्रसन्न हुआ । तव सारे संसार में समस्त हिन्दुओं और तुर्कों ने

अनम्रः श्रीप्रतापेंद्रो वीर इत्युक्तमौचिती ।
इति राणाप्रतापस्य प्रतापः कथितो मया ।।५०।।

भावार्थः— यह कहा—"श्री प्रतापसिंह अनम्र वीर है ।" यह उचित ही है । राणा प्रताप के प्रताप का मैंने इस प्रकार वर्णन किया ।

इति श्रीराजप्रशस्त्याह्वये महाकाव्ये वीरांके चतुर्थः सर्ग. ।

पंचमः सर्गः

[छठी शिला]

।। श्री गणपतये नमः ।।

राना अमरसिंहाख्योऽकरोद्राज्यं ततः पुरा ।
मानसिंहस्य संग्रामे खानखानावधूहृतौ ।।१।।

भावार्थः—प्रताप के बाद राणा अमरसिंह ने राज्य किया। पहले, मानसिंह के संग्राम, खानखाना की स्त्रियों के अपहरण और

सेरिमासुलतानस्य वधे प्रोक्तोस्य विक्रमः ।
जहांगीरस्थापितेन खुर्रमेणाथ युद्धकृत् ।।२।।

भावार्थः—सुलतान सेरिम के वध के प्रसंग में इसके पराक्रम का वर्णन किया जा चुका है। तत्पश्चात् उसने जहाँगीर के द्वारा नियुक्त खुर्रम से युद्ध किया।

अब्दुल्लहखानेन वक्रश्चक्रे रणं ततः ।
चतुर्विंशतिसंख्यैस्तै रुद्धः स्थानेश्वरैरलं ।।३।।

भावार्थः—तदनन्तर उस वक्र वीर अमरसिंह ने अब्दुल्लाखाँ से युद्ध किया। इसके बाद उसे चौबीस थानेतों ने घेर लिया।

दिल्लीपतेर्भृत्यवरं जघ्ने कायमखानकं ।
ऊंटालायां मालपुरभंगं चक्रेत्र दंडकृत् ।।४।।

भावार्थः—दिल्ली-पति के भृत्यवर कायमखाँ को उसने ऊँटाला में मारा। मालपुर को नष्ट कर उसने वहाँ से कर वसुल-किया

पुत्रोस्य कर्णसिंहाख्यः सिरोंजं मालवाभुवं ।
धँधेराक्ष्मां वभंजात्र दंडं चेक्रेतिलुंटनं ।।५।।

भावार्थः—अमरसिंह के पुत्र कर्णसिंह ने सिरोंज तथा मालवा और धँधेरा देश को नष्ट कर उन्हे खूब लूटा और वहाँ से कर वसूल किया।

ततो जहाँगीराज्ञातः खुर्रमो मिलनं व्यधात् ।
गोघूँदायां समायातः अमरेशो निजस्थलात् ॥६॥

भावार्थः—इसके वाद जहाँगीर की आज्ञा से खुर्रम ने [अमरसिंह से] संधि की अमरसिंह् अपने स्थान से गोगूँदा में आया ।

महोदयपुरात्तत्र खुर्रमोपि समागतः ।
श्लाघ्यरीत्या सादरं तौ सस्नेहौ मिलितौ ततः ॥७॥

भावार्थः—उदयपुर से खुर्रम भी वहाँ पहुँचा । और सस्नेह वे दोनों प्रशंसनीय रीति से आदरपूर्वक मिले । तत्पश्चात्

राना अमरसिंहेंद्रो महोदयपुरेऽवसत् ।
महादानानि विदधे चक्रे राज्यं सुखान्वितं ॥८॥

भावार्थ—राणा अमरसिंह उदयपुर में रहने लगा । उसने वड़े-वडे दान दिये । और सुखपूर्वक राज्य किया ।

लक्ष्मीनाथाख्यभट्टाय गुरवेमंत्रदायिने ।
राना अमरसिंहेंद्रो होलीग्रामं ददौ मुदा ॥९॥

भावार्थः—प्रसन्न होकर राणा अमरसिंह ने मन्त्र देने वाले गुरु लक्ष्मीनाथ भट्ट को होली गाँव प्रदान किया ।

अथ रानाकर्णसिंहश्चक्रे राज्यं पुराकरोत् ।
सत्कौमारपदे गंगातीरे रूप्यतुलां ददौ ॥१०॥

भावार्थः—इसके वाद राणा कर्णसिंह ने राज्य किया । पहले, जवकि वह कुमार पद पर था, उसने गंगा के तट पर चाँदी का तुलादान किया ।

शूकरक्षेत्रविप्रेभ्यो ग्रामं पूर्वं तु विद्धरे ।
धँधेरामालवादेशसिरोंजपुर भंगकृत् ॥११॥

भावार्थः—शूकर-क्षेत्र के व्राह्मण को तव उसने एक गाँव भी दिया । पहले, जैसा कि कह आये हैं, युद्ध धँधेरा और मालवा देश को तथा सिरोजपुर को नष्ट किया ।

अखैराजं सिरोहीशं चक्रे शत्रुजितं बलात् ।
पद्मलक्ष्मांह्रिकमलः कर्णदानपराक्रमः ।।१२।।

भावार्थः—अखैराज को शत्रुओं ने जीत लिया था। पर उसने बलपूर्वक उसे सिरोही का स्वामी बनाया। कर्णसिंह के चरण कमलों में पद्म-चिन्ह थे। वह कर्ण के समान दानी एवं पराक्रमी था। उसने

दिल्लीश्वरराज्जहाँगोरात्तस्य खुर्रमनामकं ।
पुत्रं विमुखतां प्राप्तं स्थापयित्वा निजक्षितौ ।।१३।।

भावार्थः—दिल्ली-पति जहाँगीर से विमुख हुए उसके पुत्र खुर्रम को अपने देश में ठहराया और

जहाँगीरे दिवं याते संगे भ्रातरमर्जुनं ।
दत्वा दिल्लीश्वरं चक्रे सोऽभूत्साहिजहाँभिधः ।।१४।।युग्मं

भावार्थः—जहाँगीर के देवलोक होजाने पर साथ में भाई अर्जुन को भेजकर उसे दिल्ली का स्वामी बनाया। खुर्रम 'शाहजहाँ' नाम से प्रसिद्ध हुआ।

शते षोडशकेतीते चतुःषष्ट्यभिधेब्दके ।
भाद्रशुक्लद्विती [या] यां कर्णसिंहनृपादभूत् ।।१५।।

भावार्थः—संवत् १६६४, भाद्रपद शुक्ला द्वितीया के दिन नृपति कर्णसिंह के,

जगत्सिहो महेचाख्यराठोडजसवन्तजा ।
श्रीमज्जांबुवती तस्याः कुक्षेर्जातो बली महान् ।।१६।।

भावार्थः—महेचा राठौड़ जसवन्तसिंह की पुत्री श्रीमती जांबुवती की कोख से, महाबली जगतसिंह हुआ।

शते षोडशकेतीते पंचाशीत्यभिधेब्दके ।
राधशुक्लतृतीयायां राज्यं प्राप जगत्पतिः ।।१७।।

भावार्थः—जगतसिंह ने संवत् १६८५, वैशाख शुक्ला तृतीया के दिन राज्य प्राप्त किया।

जगत्सिहाज्ञया मंत्री अखैराजो वलान्वितः ।
स डूंगरपुर प्राप्तः पुजानामाय रावलः ॥१८॥

भावार्थः—जगतसिंह की आज्ञा से मन्त्री अखराज सेना लेकर डूंगरपुर पहुँचा उसके पहुँचने पर रावल पुंजा वहाँ से

पलायितः पातितं तच्चंदनस्य गवाक्षकं ।
लुंटनं डूंगरपुरे कृतं लोकैरलं ततः ॥१६॥

भावार्थः—भाग गया । लोगों ने उसके चंदन के बने गवाक्ष को गिरा दिया डूंगरपुर को खूब लूटा । तत्पश्चात

जगत्सिहाज्ञया यातो राठोडो रामसिंहकः ।
प्रति देवलियां सेनायुक्तो रावतमुद्भटं ॥२०॥

भावार्थः—जगतसिंह की आज्ञा से रामसिंह राठौड़ सेना लेकर देवलिया की ओर गया । वहाँ के उद्भट रावत

जसवंतं मानसिंहपुत्रयुक्तं जघान सः ।
पुर्यां देवलियायां च लुंटनं रचितं जनैः ॥२१॥

भावार्थः—जसवंतसिंह को उसने मारा । सा र में उसके पुत्र मानसिंह को भी । लोगो ने तब देवलिया नगरी को लूटा ।

शते षोडशकेतीते षडशीत्यभिद्येब्दके ।
ऊर्जेकृष्णाद्वितीयायां जगत्सिहमहीपतेः ॥२२॥

भावार्थः—सवत् १६८६,कात्तिक कृष्णा द्वितीया के दिन पृथ्वीपति जगतसिंह के

पुत्रः श्रीराजसिंहोभूद्वर्षाते अरसी तथा ।
मेडताधिपराठोडराजसिंहमहीभृतः ॥२३॥

भावार्थः—राजसिंह तथा एक वर्ष के वाद अरसी नामक पुत्र हुआ । मेड़ता के स्वामी राजसिंह राठौड़ की

पुत्री जनादेनाम्नो तत्कुक्षिजाताविमौ सुतः ।
अभून्मोहनदासाख्योऽपरिणीताप्रियाभवः ॥२४॥

भावार्थ:—पुत्री जनादे की कोख से ये दो पुत्र हुए। अपरिणीता प्रिया से उसके मोहन दास नामक पुत्र हुआ।

अखैराजं सिरोहीशं वश्यं चक्रेऽग्रहीद्भुवं।
तोगाख्यबालीसाभूपादखैराजेन खण्डितात् ।।२५।।

भावार्थ:—जगतसिंह ने सिरोही के स्वामी अखैराज को वश में किया और अखैराज द्वारा पराजित तोगा बालीसा राजा से पृथ्वी छीन ली।

प्रासादं स्वगृहे चक्रे मेरुमंदिरनामकं।
पीछोलाख्यतटाकस्य तटे मोहनमंदिरं ।।२६।।

भावार्थ:—उसने अपने निवास-स्थान मे 'मेरुमन्दिर' और 'पिछोला' झील के किनारे 'मोहनमन्दिर' नाम के प्रासाद बनवाये।

जगत्सिंहनृपाज्ञातो बाँसवालापुरे गतः।
प्रधानो भागचंदाख्यो रावलः सावलो गिरौ ।।२७।।

भावार्थ:—नृपति जगतसिंह की आज्ञा से प्रधान भागचंद बाँसवाड़ा नगर में पहुँचा। उसके पहुँचने पर स्त्रियों को साथ लेकर वहाँ का रावल

गतः समरसीनामा ततो लक्षद्वयं ददौ।
दंड रजतमुद्राणां भृत्यभावं सदा दधे ।।२८।।

भावार्थ:—समरसी पहाड़ों में चला गया। रावल ने तब दो लाख रुपये दंड स्वरूप दिये और सदा के लिये महाराणा की अधीनता स्वीकार की।

बूँदीशत्रुशल्यस्य भावसिंहाख्यसूनवे।
स्वकन्यां विधिना भूपो दत्वात्रैव ददौ पुन ।।२९।।

भावार्थ:—इसके बाद जगतसिंह ने बूँदी के स्वामी शत्रुशल्य के पुत्र भावसिंह के साथ अपनी पुत्री का विधिपूर्वक विवाह किया और उसी अवसर पर

सप्तविंशतिसंख्यास्तु राजन्येभ्योन्यकन्यकाः।
एकलिंगालये चक्रे हेमकुंभध्वजादिकान् ।।३०।।

भावार्थः—सत्ताईस अन्य कन्याएँ क्षत्रियों को दीं। उसने एकलिंग के मन्दिर पर स्वर्ण-कलश, ध्वजा आदि चढाये।

वत्सरेऽष्टनवत्याख्ये शते षोडशके गते।
दीपावल्युत्सवे वाईराजजांबुवती व्यधात् ॥३१॥

भावार्थः—संवत् १६९८ में दीपावली के उत्सव पर वाईराज जांबुवती ने

द्वारकातीर्थयात्रां श्रीरणछोडस्य सेवनं।
तथा रूप्यतुलां चक्रे दानान्यन्यानि सादरं ॥३२॥

भावार्थः—द्वारका की तीर्थ यात्रा और रणछोड़ की सेवा की। उसने आदर-पूर्वक चाँदी का तुलादान किया और अन्य दान दिये।

गोस्वामिधन्ययदुनाथसुतासुवेण्यै
भूमिं हलद्वयमितां पुरआहडाख्ये।
तद्भर्तृधीरमधुसूदनभट्टनाम्ना
पत्रं विधाय च ददौ जगदीशमाता ॥३३॥

भावार्थः—जगतसिंह की माता ने गोस्वामी यदुनाथ की पुत्री वेणी को 'आहड़' नगर में दो हलवाह भूमि और उसके पति मधुसूदन भट्ट के नाम से बनाकर उस भूमि का पट्टा दिया।

राज्यप्राप्तेः समारभ्य तुलां रूप्यमयीं व्यधात्।
प्रतिवर्षं जगत्सिंहो दानान्यन्यानि वातनोत् ॥३४॥

भावार्थः—जगतसिंह जब से राजा बना तब से वह प्रतिवर्ष चाँदी का तुलादान एवं अन्य दान करता रहा।

शते सप्तदशे पूर्णे चतुराख्येब्दके शुचौ
सूर्यग्रहे जगत्सिंहः संपूज्यामरकंटके ॥३५॥

भावार्थः—संवत् १७०४ के आषाढ़ में सूर्यग्रहण के अवसर पर अमरकंटक में

ज्योतिर्लिंगं तु मांधातृसेव्यमोंकारमीश्वरं ।
सुवर्णस्य तुलां चक्रे अथ प्रत्यब्दमातनोत् ॥३६॥

भावार्थः—मान्धाता के पूजनीय ज्योतिर्लिंग ओंकारेश्वर की पूजाकर उसने सोने की तुला की । इसके बाद वह प्रति वर्ष करता रहा ।

स्वजन्मदिवसे मोदान्महादानं पुरा व्यधात् ।
कल्पवृक्षं स्वर्णपृथ्वीं सप्तसागरनामकं ॥३७॥

भावार्थः—अपने जन्म-दिन पर पहले वह बड़े-बड़े दान देता रहा । तदनन्तर उसने कल्पवृक्ष स्वर्णपृथ्वी, सप्तसागर और

विश्वचक्रं क्रमादस्मिन्वर्षे माता जगत्पतेः ।
श्रीमज्जांबुवतीबाई प्रतस्थे तीर्थदृष्टये ॥३८॥

भावार्थः—विश्वचक्र नामक दान क्रम से दिये । इसी वर्ष जगतसिंह की माता श्रीमती जांबुवती बाई ने तीर्थ-दर्शन करने के लिये प्रस्थान किया ।

कार्त्तिके मथुरायात्रां चक्रे गोकुलदर्शनं ।
श्रीगोवर्द्धननाथस्य दीपावल्यन्नकूटयोः ॥३९॥

भावार्थः—उसने कार्त्तिक माह में मथुरा की यात्रा की, गोकुल के दर्शन किये तथा श्री गोवर्द्धननाथ के दीपावली और अन्नकूट के

अपश्यदुत्सवं तूर्जपौर्णमास्यां तु शौकरे ।
क्षेत्रे गंगातटे चक्रे तुलां रूप्यस्य वातनोत् ॥४०॥

भावार्थः—उत्सव को देखा । कार्त्तिक की पूर्णिमा को उसने शूकर-क्षेत्र में गंगा के तट पर चाँदी का तुलादान किया ।

बीकानेरीशकर्णस्य सुता रामपुराप्रभोः ।
हठीसिंहस्य सत्पत्नी उदारानंदकूंवरिः ॥४१॥

भावार्थः—बीकानेर के स्वामी कर्णसिंह की पुत्री एवं रामपुरा के स्वामी हठीसिंह की पत्नी उदार नंदकुँवरि ने

मातामह्या जांबुवत्याः संगे रूप्यतुलां व्यधात् ।
पूर्ववर्षे जांबुवत्या आज्ञया नंदकूंवरिः ॥४२॥

भावार्थः—अपनी नानी जाँबुवती के साथ चाँदी की तुला की। इससे एक वर्ष पहले जांबुवती की आज्ञा से नंदकुँवरि ने

श्रीजांबुवत्याग्रे मां स्थापयित्वा मुदा ददौ ।
रणछोडाय भट्टाय सा दानं सोमामहेश्वरं ॥४३॥

भावार्थः—मुझ रणछोड़ भट्ट को उमामहेश्वर दान सहर्ष दिया। यह दान जांबुवती के समक्ष उपस्थित कर मुझे दिया गया था।

प्रयागे राजततुलां काश्ययोध्यादिदर्शनं ।
कृत्वा गृहे समायाता चक्रे रूप्यतुलागणं ॥४४॥

भावार्थः—तदनन्तर प्रयाग में चाँदी का तुलादान कर काशी, अयोध्या आदि तीर्थ-स्थानों के दर्शन करती हुई जांबुवती घर पहुँची। घर पहुँचकर उसने चाँदी के तुलादान किये।

वेणीमाकार्य गोस्वामितनयां मधुसूदनं ।
तत्पतिं श्रीजगत्सिंहस्त्रिया सोमामहेश्वरं ॥४५॥

भावार्थः—गोस्वामी की पुत्री वेणी और उसके पति मधुसूदन को बुलाकर उन्हें जगतसिंह की पत्नी से,

अदापयत्कृतं दानं श्रीमज्जांबुवती यथा ।
राणा अमरसिंहस्य राज्ञीभिर्दत्तमादितः ॥४६॥

भावार्थः—श्रीमती जांबुवती ने उमामहेश्वर दान दिलवाया। जिस प्रकार पहले राणा अमरसिंह की रानियों ने

इदं दानं यथैवाभ्यामद्यावधि मितिं वदे ।
त्रिंशत्संमितदानानि आभ्यां लब्धानि तत्स्फुटं ॥४७॥

भावार्थः—यह दान दिया था, उसी प्रकार इन दोनों ने भी दिया। वेणी और मधुसूदन ने अबतक जो दान प्राप्त किये, उनकी संख्या मैं ३० बता रहा हूँ, जो स्पष्ट है।

अस्मिन्वर्षे पूर्णिमायां वैशाखे श्रीजगत्पतिः।
श्रीजगन्नाथरायं सत्प्रासादे स्थापयन्बभौ ॥४८॥

भावार्थः—इसी वर्ष, वैशाखी पूर्णिमा को जगतसिंह ने भव्य मन्दिर में श्री जगन्नाथराय की मूर्त्ति की प्रतिष्ठा करवाई।

गोसहस्रं महादानं दानं कल्पलताभिधं।
हिरण्याश्वमहादानं ग्रामपंचकमप्यदात् ॥४९॥

भावार्थः—[उस अवसर पर] उसने गोसहस्र, कल्पलता और हिरण्याश्व नामक महादान तथा पाँच गाँव प्रदान किये।

मधुसूदनभट्टाय महागोदानमप्यदात्।
कृष्णभट्टाय सुग्रामं भैंसडा रत्नधेनुदं ॥५०॥

भावार्थः—उसने मधुसूदन भट्ट को महागोदान और कृष्णभट्ट को 'भैंसड़ा' गाँव तथा 'रत्नधेनु' दान दिया।

श्रीराणोदयसिंहसूनुरभवत् श्रीमत्प्रतापः सुत-
स्तस्य श्री अमरेश्वरोस्य तनयः श्रीकर्णसिंहोस्य वा।
पुत्रो रानजगत्पतिश्च तनयोस्माद्राजसिंहोस्य वा
पुत्रः श्रीजयसिंह एष कृतवान्सत्प्रस्तराऽऽलेखितं ॥५१॥

भावार्थः—राणा उदयसिंह के प्रताप, उसके अमरसिंह, उसके कर्णसिंह, उसके जगतसिंह, उसके राजसिंह तथा राजसिंह के जयसिंह हुआ, जिसने यह शिलालेख उत्कीर्ण करवाया।

वीरांकं रणछोडभट्टरचितं द्वात्रिंशदाख्येव्दके
पूर्णे सप्तदशे शते तपसि वा सत्पूर्णिमायां तिथौ ।
काव्यं राजसमुद्रमिष्ट जलधेः श्री राजसिंहेन वा
सृष्टोत्सर्गविधेः सुवर्णनमयं राजप्रशस्त्याह्वयं ।।५२।।

भावार्थः—योद्धाओं के जीवन-चरित से अंकित यह 'राजप्रशस्ति' काव्य है। इसकी रचना रणछोड़ भट्ट ने की। इसमें क्षीरसागर-रूप राजसमुद्र का सुन्दर वर्णन हुआ है, जिसकी प्रतिष्ठा राजसिंह ने सं० १७३२ के माघ महीने की पूर्णिमा को करवाई।

इति पंचमस्सर्गः ।

गजधर उरजण गजधर सुखदेव सूत्रधार केसो लाडो सूंदरमणजी [?] लाला जात सोमपुरा चूतरा पुरवीय्या—संवत् १७४४ [।।]

षष्ठः सर्गः

[सातवीं शिला]

।। श्रीगणेशाय नमः ।।

शते सप्तदशे पूर्णे नवाख्येऽब्देकरोत्तुलां।
रूप्यस्य मार्गे चक्रेऽथ फाल्गुने कृष्णपक्षके ।।१।।

भावार्थः—नृपति राजसिंह ने सं० १७०९ के मार्गशीर्ष मास में चांदी की तुला की। इसके बाद फाल्गुन कृष्णा

द्वितीयादिवसे राज्यं राजसिंहो नरेश्वरः।
राज्ञो भुरटियाकर्णनाम्नो ज्येष्ठाय सूनवे ।।२।।

भावार्थः—द्वितीया के दिन उसका राज्याभिषेक हुआ। उसने भुरटिया राजा कर्ण के ज्येष्ठ पुत्र

अनूपसिंहाय ददौ स्वसारं विधिना नृपः।
क्षत्रेभ्योऽदाद्बंधुकन्या एकसप्ततिसंमिताः ।।३।।

भावार्थः—अनूपसिंह के साथ अपनी बहिन का विधिपूर्वक विवाह किया। तब नृपति ने अपने संबंधियों की ७१ कन्याएँ क्षत्रियकुमारों को दिलाई।

धुलकं

शते सप्तदशे पूर्णे दशाख्येऽब्दे तु पौषके।
कृष्णैकादशिकायां तु राजसिंहनरेश्वरात् ।।४।।

भावार्थः—संवत् १७१० पौषकृष्ण एकादशी के दिन नृपति राजसिंह के,

पंवार इंद्रभानाख्यरावस्य तनया तु या।
सदाकुंवरिनाम्नी तत्कुक्षेर्जातो जगत्प्रियः ॥५॥

भावार्थः—राव इन्द्रभान पँवार की पुत्री सदाकुँवरि की कोख से संसार का प्यारा

जयसिंहाभिधः पुत्रः पवित्रश्चित्रकेलिकृत्।
संजातो जगदाह्लादचंद्रमाः कीर्त्तिचंद्रवान् ॥६॥

भावार्थ.—जयसिंह नामक पुत्र हुआ। वह पुण्यशाली और नाना प्रकार की क्रीड़ाएँ करनेवाला था। उसकी कीर्त्ति चन्द्र के समान उज्ज्वल थी। संसार को आह्लाद देने में वह चन्द्रमा था।

भीमसिंहः पुत्र आस्ते गजसिंहः सुतस्तथा।
सूर्जसिंहाभिधः पुत्र इन्द्रसिंहः सुतस्तथा ॥७॥

भावार्थः—इसके अतिरिक्त राजसिंह के भीमसिंह, गजसिंह, सूरजसिंह, इन्द्रसिंह तथा

स बहादुरसिंहः श्रीराजसिंहात्मजास्तथा।
स नारायणदासा वाऽपरिणीताप्रियाभव [:] ॥८॥

भावार्थः—बहादुरसिंह ये पुत्र हुए। नारायणदास उसकी उपपत्नी से हुआ।

आरभ्य कौमारपदात्सर्वर्त्तुसुखलब्धये।
श्रीसर्वर्त्तुविलासाख्यं स्वारामं कृतवान्नृपः ॥९॥

भावार्थः—सब ऋतुओं का आनन्द लेने के लिये नृपति राजसिंह ने 'सर्वर्त्तुविलास' नाम का एक उद्यान लगवाया, जिसका आरंभ वह कुमार-पद में करवा चुका था।

वाप्यां क्षीरनिधौ धन्यो लक्ष्मीयुक्तो विराजते।
नारायणगुणो राणा नौकाशेषफणाश्रयः ॥१०॥

भावार्थः—राणा राजसिंह नारायण के समान है। वह वापी-रूप क्षीरसागर में नौका-रूपी शेष फण पर लक्ष्मी-सहित विराजमान है।

शते सप्तदशे पूर्णे वर्षे एकादशे त्विषे।
अजमेरौ साहिजहां दिल्लीशं तं समागतं ॥११॥

भावार्थः—संवत १७११ के आश्विन मास में बादशाह शाहजहाँ अजमेर में आया और

श्रुत्वाथ राजसिंहेंद्रश्चित्रकूटे समागतं।
तं सादुल्लहखानाख्यं दिल्लीशवरमंत्रिणं ॥१२॥

भावार्थः—इसके बाद उसका मन्त्री सादुल्लाखाँ चित्रकूट पहुँचा। यह सुनकर राजसिंह ने

प्रेषयामास तत्पार्श्वे भट्टं तु मधुसूदनं।
कठोंडीवंशतेलंगं स गतः खानसन्निधौ ॥१३॥

भावार्थः—कठौंड़ी कुलोत्पन्न तैलग मधुसूदन भट्ट को उसके पास भेजा। मधुसूदन खान के पास पहुँचा।

खानः पंडितसंवुद्ध्या भट्टं प्रत्युक्तवान्कथं।
गरीबदासो राणेन कथमाकारितस्तथा ॥१४॥

भावार्थः—खान ने पंडित समझकर भट्ट से कहा "राणा ने गरीब दास और

झालाख्यरायसिंहश्च भट्टेनोक्तं सदादितः।
जातमेवं प्रतापाख्यरानाभ्राता रणोत्कटः ॥१५॥

भावार्थः—झाला रायसिंह को क्यों बुलवा लिया ?" भट्ट ने उत्तर दिया:—
"ऐसा पहले भी हुआ है। राणा प्रताप का भाई रणोन्मत्त

शक्तसिंहो मेघनामा रावतो मेदपाटतः ।
आयातौ स्थापितौ दिल्लीनाथेन किल तौ पुनः ॥१६॥

भावार्थः—शक्तिसिंह एवं रावत मेघसिंह मेदपाट से दिल्ली गये । दिल्ली-पति ने उन्हें अपने यहाँ रखा । फिर वे

मेदपाटे समायातौ चकार परमेश्वरः ।
इति स्वामिप्रमुक्तानां राजन्यानां स्थलद्वयं ॥१७॥

भावार्थः—मेदपाट चले आये । अपने स्वामियों से विलग हुए क्षत्रियों के लिये भगवान् ने दो ही स्थान बनाये हैं ।"

खानेनोक्तं सत्यमेतत्पुन(ः) खानस्ततोवदत् ।
रानेशस्याश्ववाराणां संख्यां कथय पंडित ॥१८॥

भावार्थः—तब खान बोला—"यह सत्य है ।" उसने फिर कहा—"हे पंडित ! राणा के अश्वारोहियों की संख्या बताओ ।"

सद्विंशतिसहस्राणि भट्टेनोक्तं स उक्तवान् ।
दिल्लीशस्याश्ववाराणां लक्षसंख्यास्ति तत्कथं ॥१९॥

भावार्थः—भट्ट ने उत्तर दिया—"बीसहजार ।" इस पर खान ने कहा—"दिल्ली पति के अश्वारोहियों की संख्या एक लाख है । कैसे

कार्यं समानं भट्टेन प्रोक्तं खान शृणु स्फुटं ।
दिल्लीशस्याश्ववाराणां लक्षं राणमहीपतेः ॥२०॥

भावार्थः—समता की जाय ?" भट्ट ने कहा—"हे खान ! स्पष्ट सुनों ! दिल्ली-पति के एक लाख और महाराणा के

सद्विंशतिसहस्राणि साम्यं सृष्टिकृता कृतं ।
खानोतः कोपवान् खानो जयसिंहस्तदोचतुः ॥२१॥

भावार्थः—बीस हजार अश्वारोहियों को विधाता ने समान बनाया है।" यह सुनकर खान मन ही मन कुपित हुआ। तब खान और जयसिंह ने बातें की।

खानसंगे साहिजहाँदर्शन चेत्करोत्यहो।
राणाकुमास्तु तदा चतुर्दशमिता मया ।।२२।।

भावार्थः—अन्त में निर्णय हुआ कि यदि राणा का कुँवर खान के साथ जाकर शाहजहाँ से मिले तो वह

देशो दिल्लीश्वराद्दाप्या विद्धरे मधुसूदनः।
राणसेवां व्यधादेवं स्वामिधर्मी महोक्तिकृत् ।।२३।।

भावार्थः—उससे [महाराणा को] चौदह देश दिलवाएगा। स्वामिभक्त एवं वाक्पटु मधुसूदन ने संकट के समय राणा की ऐसी सेवा की।

दिल्लीश्वरकुमारस्य संगेऽस्मत्पूर्वजन्मनां।
कुमारा मिलनं चक्रू राजसिंहो विचार्यतत् ।।२४।।

भावार्थः—'हमारे पुरखाओं के कुँवरो ने दिल्ली-पति के शाहजादे के साथ सधि की है।" यह विचारकर राजसिंह ने

सुलतानसिंहनामकमहाकुमारं तु ठक्कुरैः सहितं।
साहिजहांसुतदारासकोहसगेथ संप्रेष्य ।।२५।।

भावार्थः—शाहजहाँ के पुत्र दाराशिकोह के साथ अपने बड़े कुमार सुलतान-सिंह को भेजा। उसके साथ ठाकुर भी गये।

एवं साहिजहांनेन मिलनं कृतवान्नृपः।
राजसिंहो भाग्यदानविक्रमैर्विक्रमार्कवत् ।।२६।।

भावार्थः—इस प्रकार नृपति राजसिंह ने शाहजहां के साथ संधि की। वह भाग्य दान और पराक्रम में विक्रमादित्य के समान था। उसने,

भावार्थः—हे स्वामि-श्रेष्ठ राजसिंह ! आपने ब्राह्मणों को ज्यों ही 'ब्रह्माण्ड' दान प्रदान किया, सूर्य और चन्द्र उसके बालकों के खेलने के लिये चंचल और गोल दो गेंद बन गये। नन्दी तथा ब्रह्मा का श्वेत बड़ा हंस उन बालकों के लिये सवारी का काम देने लगे। उन बालकों को आश्चर्य में डालने के लिये पंचमुखी शिव और अनेक आँखों वाला इन्द्र उपयोग में आने लगे इसके अतिरिक्त हाथी के मुँह वाला गणेश उन बालकों को डराने का काम देने लगा।

श्रीराजसिंहनृपतिः कलिकालमध्ये
कर्त्तुं न योग्यमतुलं हयमेधकर्म।
प्राप्तुं समस्तमधुना हयमेधधर्मं
पूर्णे तु सप्तदशके शतके सुवर्षे ॥३७॥

भावार्थः—नृपति राजसिंह ने यह सोचकर कि कलियुग मे अश्वमेध करना उचित नही है, अश्वमेध का समग्र पुण्य प्राप्त करने के लिये सवत् सत्रह सौ

एकोनविंशतिसुनाम्नि च पौषमासे
एकादशीशुभदिने किल शुक्लपक्षे।
मन्वादिदिव्यदिवसे मधुसूदनाय
तैलंगसद्गुरुकुलस्थकठौडिकाय ॥३८॥

भावार्थः—उन्नीस, पौष शुक्ला एकादशी के उत्तम मन्वादि दिवस पर कठौड़ी वश के तैलंग गुरु मधुसूदन को

श्वेताश्वमुच्चतममुच्चगुणातिगेय-
मुच्चैःश्रवसममहो विधिनैव दत्त्वा
पल्याणहेमगुणमेरुसमं व भाति
प्रायो हरिर्गुरुगुरोर्गुरुरर्चनेन ॥३९॥

भावार्थः—एक श्वेत अश्व विधिपूर्वक प्रदान किया। साथ में सोने के मेरु सदृश एक पलान भी। अश्व बहुत ही प्रशंसनीय गुणोंवाला, बड़ा ऊँचा और इन्द्र के उच्चैःश्रवा नामक घोड़े के समान था। अश्व प्रदानकर राजसिंह उसी प्रकार सुशोभित हुआ, जैसे गुरु बृहस्पति की पूजा करके महान् इन्द्र।

संस्थाप्य तत्र नवलादितुरंगधन्य-
स्कंधे सदुक्तिमधुरं मधुसूदनाख्यं ।
सत्सप्तविंशतिपदानि हयस्य गच्छ-
न्नग्रेस्थ एव धृतवान्हयमेधधर्मं ।।४०।।

भावार्थः—अश्व का नाम नवल था। उसके कंधे पुष्ट थे। मधुर एवं सत्यभाषी मधुसूदन को राजसिंह ने उसपर बिठाया और उसके आगे २७ पाँव चलकर अश्वमेध का पुण्य कार्य किया।

सिंहासने स्फुरितचामरवीज्यमानः
छत्रोपशोभित शिरा रचिताश्वमेध [:]।
श्रीरामचंद्र इव भाति सुलक्षमणाढ्यः
श्रीराजसिंहनृपतिर्नृपसिंह एषः ।।४१।।

भावार्थः—नृप-श्रेष्ठ यह राजसिंह रामचन्द्र के समान है। सिंहासन पर यह सुशोभित है। इस पर चँवर उड़ रहे हैं। मस्तक पर छत्र शोभा पा रहा है। इसने अश्वमेध किया है। यह सुन्दर लक्ष्मण [=राज्य-चिन्ह, राम का भाई] से भी युक्त है।

नवलाख्यतुरंगस्य हेमपल्याणमेरुगं ।
कृतवानुचितं भूपो विबुधं मधुसूदनं ।।४२।।

भावार्थः—'नवल' नामक अश्व के सोने के मेरु सदृश पलान पर राजसिंह ने विबुध मधुसूदन को बिठाया है, जो उचित ही है।

राणाश्रीराजसिंहादि सुखापाठकमुख्यकै [:] ।
अग्रेसरैर्जनैर्युक्तो विभाति मधुसूदनः ।।४३।।

भावार्थः—मधुसूदन को घोड़े पर बिठाकर जब उसके आगे-आगे राजसिंह, मांगलिक पाठ करने वाले इत्यादि लोग चले तब वह बहुत सुशोभित हुआ।

श्वेताश्वे दत्तमात्रे त्वतिहयमखसत्पुण्यतो भास्वरोद्य-
ल्लोकश्रीमेदपाटो भवदतिललिता ते सभासौ सुधर्मा ।
जिष्णुस्त्वं सत्सहस्रेक्षण इह विबुधव्रातकारुण्यदृष्टौ
तुष्टो जेतासुराणां गुरुगुणगुरुता स्थापको युक्तमेतत् ।।४४।।

भावर्थः—हे राजसिंह ! आप जिष्णु [= जयशील, इन्द्र] हैं । आपका यह जगमगाता हुआ मेदपाट स्वर्ग और सुन्दर सभा देव-सभा है । विबुधों [=पंडितों, देवताओं] के प्रति दया-दृष्टि रखने के कारण आपके हजार आँखें हैं । आपने असुरों [=यवनों, राक्षसों] पर विजय पाई है और गुरु [=मधुसूदन, बृहस्पति] के गुण-गौरव को प्रतिष्ठा प्रदान की है । हे राजन् ! केवल एक श्वेत अश्व प्रदान कर आपने अश्वमेध का जो पुण्य प्राप्त किया है, वह उचित ही है ।

दानस्य चास्य नवदिव्यसहस्रसंख्या
दत्त्वा गुणज्ञगुरुरेष सुरूप्यमुद्राः ।
काशीनिवासमथ कारितवान्नरेद्रः
स्वस्यापि पुण्यकृतये मधुसूदनस्य ।।४५।।

भावार्थः—गुण-ज्ञाताओं में श्रेष्ठ नृपति राजसिंह ने मधुसूदन को उक्त दान के नौ हजार रुपये प्रदान कर, अपने पुण्योपार्जन के लिये भी, उसे काशी भेज दिया ।

विश्वेशदर्शनविधौ मणिकर्णिकायां
स्नानेषु तीर्थकृतिषूत्तमदेवतानां ।
पूजासु वाशिषमहो नृपराजसिंह-
वीरोन्नताय स ददौ मधुसूदनाख्यः ।।४६।।

भावर्थः—काशी विश्वनाथ के दर्शन करते समय, मणिकर्णिका घाट पर स्नान करते समय, तीर्थ-यात्राएँ करते समय तथा उत्तम देवताओं की पूजा करते समय मधुसूदन ने वीर शिरोमणि नृपति राजसिंह को आशीर्वाद दिया ।

इति श्रीषष्ठः सर्गः

सप्तमः सर्गः

[आठवीं शिला]

।। श्रीगणेशाय नमः ।।

शते सप्तदशे पूर्णे चतुर्दशमितेब्दके ।
राधे शुक्लदशम्यां तु जैत्रयात्रां नृपो व्यधात् ।।१।।

भावार्थः—संवत् १७१४, वैशाख शुक्ला दशमी के दिन नृपति राजसिंह ने विजय-यात्रा की।

मध्योद्यद्भानुबिंबा द्विजपतिविनुता मंगलाढ्या बुधाति-
स्तुत्या जीवातिवंद्याः कविकृतनुतयोऽमंदरूपप्रकाशाः ।
विस्फूर्जत्सैंहिकेया विदधति चलनं केतवः किं ग्रहास्ते
अग्रे सोग्रप्रतापास्तव विजयकृते राजसिंहेति जाने ।।२।।

भावार्थः—हे राजसिंह ! आपकी सेना प्रचंड है। उसमें सूर्याङ्कित राज-चिह्न चमक रहा है। द्विजपति स्तुति कर रहे हैं । मंगल-पूर्ण वस्तुएँ शोभायमान हैं। बुध प्रशंसा कर रहे हैं। जीव मात्र वन्दना कर रहे हैं। कवि स्तवन कर रहे हैं। उसका अमन्द रूप प्रकाशित हो रहा है। सैंहिकेय कड़क रहे हैं। केतु फर-फरा रहे हैं। हे राजन् ! मुझे ऐसा लगता है कि मानों ये नौ ग्रह हैं, जो आपको विजय दिलाने के लिये आपके समक्ष उपस्थित हैं।

पार्श्वस्थगोलकच्छद्ममुंडमाला अवस्थिताः ।
भांति स्वच्छाः शत्रुभक्षाः कालिकाः किलनालिकाः ।।३।।

भावार्थः-हे राजन् ! ये सुन्दर तोपें शत्रुओं का संहार करने वाली कालिकाएँ हैं। बगल में रखे हुए गोलों के बहाने इन्होंने मुण्ड-मालाएँ पहन रखी हैं।

किं मृत्युदंष्ट्राः किं शत्रुप्राणसंस्थानकंदराः ।
किं वारिलोकभुग्नक्रवक्रास्यानीह नालिकाः ॥४॥

भावार्थ:—ये तोपें क्या हैं, मौत की दाढ़ें हैं अथवा शत्रुओं के प्राणों का संचय करने वाली कंदराएँ है ? या पाताल लोक के घड़ियालों के वक्र मुख हैं ?

किं वा वीररसाब्धिरेव विलसत्कल्लोलमालोन्नतः
किं वा दिक्तरुणीकटाक्षपटलेनालंबितः स्वीकृतः ।
किं वारैः स्फुटमेकलिंगमतितो नीलाब्जपत्रांचितो
रानेंद्रः कवचं दधत्सुरुचिरं लोकैरिति प्रोच्यते ॥५॥

भावार्थ:—महाराणा ने जब सुन्दर कवच धारण किया तब लोग कहने लगे—"क्या यह वीर रस का समुद्र है, जिसमें उत्ताल तरंगें उठ रही हैं ? अथवा कटाक्ष मारकर दिशा रूपी तरुणियों ने इसका वरण किया है ? या इसे प्रत्यक्ष ""कलिंग समझकर लोगो ने इस पर नील कमल की पँखुरियाँ चढ़ाई हैं ?

ततो दुदुभीनां निनादप्रतानै-
र्महाकाहलानां च कोलाहलैश्च
तथा सैंधवैश्चापि वादित्रशब्दै-
र्हयानां च चीत्कारवारैरपारैः ॥६॥

भावार्थ.—तदनन्तर दुन्दुभियों की फैलती हुई ध्वनि को, बड़े-बड़े ढोलों के कोलाहल को, सिन्धू राग तथा रण-वाद्यों की ध्वनि को एवं घोड़ों की चीत्कारों के अपार कोलाहल को सुनकर

त्रिलोकीमहामंडलं यत्त्वखंडं
जनाः खंडखंडं बभूवेत्यथोचुः ।
धरित्री विचित्रीभवत्कंपनार्त्ता
स्फुरद्दिग्गजा [:] कंदुकीभावमापु [:] ॥७॥

भावार्थः—लोग कहने लगे कि क्या त्रिभुवन का अखंड महामंडल खंड-खंड हो गया है। पृथ्वी तब विस्मय में डूब गई। वह डगमग होकर घबराने लगी। दिग्गज भी अस्थिर होकर गेंद की तरह लुढ़कने लगे।

सभूलोकमुख्याखिला ऊर्द्ध्वलोका-
स्तलाद्यास्तथा सप्तलोका अधस्थाः।
सकंपाः समुद्रास्सझंपाः सशंपा-
स्तदाऽभ्रे बभूवुस्तथाभा अशुभ्राः ॥८॥

भावार्थः—भूलोक आदि समस्त ऊर्द्ध्व लोक और तल इत्यादि सात नीचे के लोक काँप उठे। समुद्रों में तूफ़ान आने लगे तथा आकाश में काले-काले बादलों में बिजली कौंधने लगी।

जवेनोच्छलंति स्म सर्वे समुद्रा-
स्तथाऽक्षुद्ररूपाश्च भद्रास्तटिन्यः।
महीध्रास्तथा उच्छिलींध्रानुकाराः
पतंति स्म वृक्षाः सहक्षाः क्षतांगैः ॥६॥

भावार्थः—सभी समुद्र बड़ी जोर से उछलने लगे। सुन्दर नदियों ने भयंकर रूप धारण कर लिया। पर्वत और वृक्ष कुकुरमुत्तों की तरह टूट-टूट कर गिरने लगे।

अलं म्लेच्छसीमस्थिता [:] सर्ववीरा-
स्तथा मानुषा मंक्षु दिक्षु स्थिताश्च।
विदीर्णीकृतोद्वक्षसोऽनच्छकर्णा
वमंति स्म रक्तं सुरक्तं मुखेभ्यः ॥१०॥

भावार्थः—कहाँ तक कहें ? म्लेच्छ-सीमा पर रहने वाले समस्त योद्धाओं और सुदूर दिशाओं में बसने वाले मनुष्यों के हृदय तत्काल फट गये और कान बहरे होगये। उनके मुंह से खून की लाल-लाल उल्टियाँ होने लगीं।

हयालीखुरोद्धूतधूलीमधूलीं
गजालीमदार्द्रां च कर्णांशुगोत्थां ।
पिबंति स्फुटं शत्रुपक्षावलानां
गुडारूपलोलालकालिद्विरेफाः ॥११॥

भावार्थः—हे राजसिंह ! आपके घोड़ों की टापों से उठी हुई धूल हाथियों के मद में सनकर पराग बन गई है। हाथियों के कानों की हवा से उड़ने पर उस पराग को शत्रु-नारियों की काली और लोल अलकें रूपी भ्रमर-पंक्तियाँ पी रही है।

महोदयपुरादग्रे भांति नाखर्वपर्वताः ।
तन्मन्ये त्वत्तुरंगालीखुरैश्चूर्णीकृताश्चिरं ॥१२॥

भावार्थः—हे राजसिंह ! उदयपुर के आगे बड़े-बड़े पर्वत, जो अब नहीं रहे हैं, मैं ऐसा मानता हूँ कि उन्हें आपके अश्वों ने खुरों से सदा के लिये चूर्ण कर दिया है।

रिंगत्तुरंगखुरराजिरजः समूहै-
र्नद्यो जलाशयगणाः स्थलभावमापुः ।
दृष्ट्वा जगद्गतजलं सभयो महेंद्रो
ज्येष्ठेपि वर्षणमहो सहसा चकार ॥१३॥

भावार्थः—प्रयाण करते हुए घोडों की टापों से जो रज-राशि उड़ी, उससे नदियाँ और जलाशय स्थल सदृश बन गये। इस प्रकार संसार को जल-हीन देखकर भयभीत इन्द्र ने ज्येष्ठ मास में ही अचानक वर्षा कर दी। यह आश्चर्य है।

युष्मज्जैत्रप्रयाणश्रवणविगलितत्राणनिष्प्राणकानां
म्लेच्छानां छादनार्थं भवति हयखुरोत्खातधूलीसमूहः ।
माद्यन्मातंगगल्लस्थलगलदतुलोद्दामदानांबुवृंदं
हिंदूकानां निवापांजलिसलिलकृते म्लेच्छपक्षस्थितानां ॥१४॥

भावार्थः—हे राजसिंह ! आपकी विजय-यात्रा को सुनते ही म्लेच्छ और उनके साथी हिन्दू कहीं शरण नहीं पा सके और मर गये। आपके घोड़ों की टापों से खोदी गई यह धूल उन म्लेच्छों के कफ़न का काम दे रही है तथा प्रमत्त हाथियो के गंडस्थल से निरन्तर चूने वाली मद--जल की धारा उन हिन्दुओं के तर्पण का।

रिंगद्‌दंतावलानां पदभरविगलद्‌भूरिसंभूतगर्त्ताः
प्रोल्लोलत्कर्णवातैः प्रचलितविलसत्पर्वतानामखर्वाः।
ग्रावाणः प्राणहीनप्रतिभटकुटिलम्लेच्छकानां तनूनां
प्रक्षेपाच्छादनार्थं स्वत इह नृपते जैत्रयात्रासु जाता [:] ।।१५।।

भावार्थः—हे राजन् ! हाथियों ने जब प्रयाण किया तब उनके पद-भार से धँसकर पृथ्वी पर बने गड्ढे तथा उनके फड़फड़ाते हुए कानों की हवा से विचलित हुए पहाड़ों के बड़े-बड़े पत्थर आपकी विजय-यात्रा में मारे गये प्रतिद्वन्द्वी एवं कुटिल म्लेच्छों को गाडने व ढाँकने के लिये अपने आप तैयार हो गये।

अंगो जातप्रभंगो भवति भयभृतो सगरंग कलिंगो
वंगः पूर्णार्त्तिसंगः कलकलकलितोप्युत्कलो निष्कलश्च।
शैथिल्यं मैथिलेपि स्फुरति भयमयक्रोडको गौडलोको
देशः पूर्वो विगर्वस्तव विजयकृते प्रासपाणे प्रयाणे ।।१६।।

भावार्थः—हे कुन्तधारी ! विजय के लिये जब आपने प्रयाण किया तब अंग देश नष्ट-भ्रष्ट हो गया। कलिंग रंग-हीन होकर भयभीत हो उठा। वंग दुःखी हो गया। कल–कल ध्वनि से मुखरित रहने वाले उत्कल देश की कलाएँ नष्ट हो गई। जग–मगाते हुए मैथिल देश में शिथिलता छा गई। गौड़ देश का हृदय भय से भर गया। पूर्व देश का अभिमान चूर्ण हो गया।

लंकातंकाकुलाभूत्करगलदवलाकंकणा कुंकणाशा
कर्णाटः सत्कपाटश्चल इह मलयो द्राविडो द्रावितेशः।
देशश्चोलश्च लोलश्चपल इह भयात्केतुवत्सेतुबंधः
श्रीराणाराजसिंह प्रभुवर भवतो जैत्रयात्रोत्सवेषु ।।१७।।

भावार्थः—हे स्वामिश्रेष्ठ राणा राजसिंह ! आपके विजय-यात्रोत्सव मे लंका आपके आतंक से व्याकुल हो गई। कोंकण की दिशा रूपी अबला के हाथ कंकण-रहित हो गए। कर्णाट देश के द्वार बन्द हो गए। मलय काँप उठा। द्रविड़ का स्वामी भाग गया। चोल देश डगमगा गया तथा सेतुबन्ध भय से पताका की तरह काँप उठा।

सौराष्ट्रो राष्ट्रहीनः प्रभवति सकलः कच्छदेशोप्यनच्छ
ष्टट्टा हट्टातिहीना विगलति वलको रोमधर्त्ता······· ।
खंधारः सांधकारो धनददिगधुना निर्धना धावतेद्धा
श्रीरानाराजसिंह क्षितिधव भवतो जैं[त्र]यात्रोत्सवोस्मिन् ॥१८॥

भावार्थः—हे पृथ्वीपति राणा राजसिंह ! आपकी इस विजय-यात्रा के उत्सव में सौराष्ट्र की शासन-व्यवस्था टूट गई है। समूचे कच्छ की दशा बिगड़ गई है। टट्टा का बाजार उजड़ गया है। वलक नष्ट हो गया है। रोमधारी····। खंधार अंधकार से भर गया है। कुबेर की उज्ज्वल दिशा भी आज निर्धन होकर चक्कर खा रही है।

दरीवाजनास्ते दरीवासभाजो
　　जना मांडिलस्थास्तथा स्थंडिलस्थाः ।
जनाः फूलियायाः शिरोधूलियासा-
　　स्त्वदीयप्रयाणे　खुमानेशरत्न ॥१९॥

भावार्थः—हे खुमाण ! आपके प्रयाण करने पर दरीवा के लोग नगर छोड़कर कन्दराओं में रहने लगे हैं। मांडल के निवासी घर-बार छोड़कर खुली धरती पर रह रहे हैं। फूलिया के मनुष्यों के मस्तक धूल में लुढ़क रहे हैं।

राहेलायाश्चित्तहेलाश्चीनचेलाः सुयोषितः ।
सर्ववेलासु　निर्वेला　भर्तृहेलाकृतोभवन् ॥२०॥

भावार्थः—चीन के रेशमी वस्त्रों से अलंकृत एवं सदा प्रसन्न चित्त रहने वाली, रायला की स्त्रियाँ अपने भर्तारों का अत्यधिक अनादर करने लगीं।

एषा साहिपुरा प्रवाहितसुखा सा केकरी किंकरी-
भावं वा विदधाति मंक्षु सभयाऽकुक्षिभरिः साँभरिः ।
आजज्जाजपुराधिभाजनमहो दुःखावरः सावरः
श्रीरानामणिराजसिंह भवति त्वज्जैत्रयात्रोत्सवे ।।२१।।

भावार्थ —हे महाराणा राजसिंह ! आपकी विजय-यात्रा के उत्सव में शाहपुरा का सुख नष्ट हो गया है। केकड़ी आप का दासत्व ग्रहण कर रही है। भय के मारे साँभर ने खाना छोड़ दिया है। जगमगाने वाला जहाजपुर चिन्तित हो उठा है। सावर भी अत्यन्त दुःखी हो गया है।

गौडजातीयभूपानां देशः क्लेशविशेषवान् ।
अनच्छः कच्छवाहानां जैत्रयात्रासु तेभवत् ।।२२।।

भावार्थः—आपकी विजय-यात्रा में गौड़ जाति के राजाओं का देश अतिशय दुःखी और कच्छवाहो का देश उदास हो गया है।

रणस्तंभसंस्थाः रणस्तंभयुक्ताः
प्रमत्तेतरास्तेपि फत्तेपुरस्थाः ।
वयानाजना दूरसंसृष्टयाना
जयार्थं प्रयाणे खुमानेश ते स्युः ।।२३।।

भावार्थः—हे खुँमाण ! विजय के लिये आपके प्रयाण करने पर रणथंभोर के लोग रण-भूमि में ठिठक जायँ । फतेपुर के निवासियों का अभिमान चूर्ण हो जाय । वयाना के लोग अपने रथों को छोड़ दें।

मेरौ लक्ष्म्याजमेरो विजय उरुभयं जायते स्फीतफेरो
क्रोडाद्या भांति तोडाद्यवनिषु गलितत्राणमाना वयाना ।
धत्ते फत्तेपुरं न क्षणमपि न सुखं दक्षयुद्धे तवाद्धा
श्रीराणाराजसिंह क्षितिप जयकृतेऽमानमाने प्रयाणे ।।२४।।

भावार्थः—हे पृथ्वी-पति राणा राजसिंह ! आपके योद्धा रण-कुशल और बड़े स्वाभिमानी हैं। उनको लेकर जब आपने विजय के लिये प्रस्थान किया,

तब अजमेर राज्य, जो वैभव मे मेरु है, मे गीदड़ फैल गये। इस कारण वह बड़ा भयावना हो गया है। तोड़ा आदि देशों में सूग्रर आदि जंगली जीव घूमने लगे हैं। बयाना का अभिमान चूर्ण हो गया है। उसे कोई बचा नही पा रहा है। फतेपुरा को एक क्षण के लिये भी चैन नही है।

पूर्वमेवाखर्वगर्वैर्लुंटितं भवतो भटैः।
दरीवानगरं शून्यदरीभावं समादधौ ॥२५॥

भावार्थ—इसके पहले आपके बड़े स्वाभिमानी योद्धाओं ने दरीवा नगरी को लूटा। लूटी जाने पर वह सूनी कन्दरा के समान हो गई।

मंडपास्ते मांडिलस्य श्रिता योधैस्तु तद्भटाः।
द्वाविंशतिसहस्राणि रूप्यमुद्रावलेर्ददु [ ] ॥२६॥

भावार्थ—आपके 'योद्धाओं' ने 'मांडल' के सुरा पीने वाले सैनिकों को अधीन बनाया और उनसे उन्होने दड के रूप में बाईस हजार रुपये लिये।

वनहेडास्थिता वीरा रानेंद्र भवते ददु।
सद्विंशतिसहस्रोद्यद्रूप्यमुद्राः करं वर ॥२७॥

भावार्थ—हे महाराणा ! वनेड़ा के वीरों ने आपको कर के रूप में बीस हजार रुपये दिये।

धीराः साहिपुरावीरा रानेंद्र भवते ददुः।
द्वाविंशतिसहस्रोद्यद्रूप्यमुद्रा [:] करं परं ॥२८॥

भावार्थ—हे महाराणा ! शाहपुरा के सधीर योद्धाओं ने भी आपको दंड के रूप में बाईस हजार रुपये दिये।

तोडायां प्रेषयित्वा भटपटलभृतौ रायसिंहस्य राज्ञः
फत्तेचंदं सहस्रत्रयमितसुभटभ्राजमानं प्रधानं।
षष्टिस्फूर्जत्सहस्रप्रमितरजतसन्मुद्रिकासंख्यदंडं
तन्मात्रासंप्रणीतं प्रहरदशकतस्त्वं गृहीत्वा विभासि ॥२९॥

भावार्थः—राजा रायसिंह की तोडा नगरी में यद्यपि अनेक बहादुर थे, फिर भी आपने जब तीन हजार सैनिक देकर प्रधान फतेचन्द को वहाँ भेजा, तब रायसिंह की माता ने दस पहर के भीतर-भीतर साठ हजार रुपयों का दंड भरा। हे राजसिंह! उस धन-राशि को प्राप्त कर आप सुशोभित हो रहे हैं।

अहो वीरमदेवस्य पुरं महिरवं परं।
राजन्वह्नौ जुहोति स्म कोपि कोपोद्भटो भटः ।।३०।।

भावार्थः—हे राजन्! आश्चर्य है कि क्रोध में प्रचंड हुए, आपके किसी योद्धा ने वीरमदेव के महिरव नामक सुन्दर नगर को जला डाला।

भवान्मालपुरे रान लक्ष्मीमालातिलुंटनं।
शौर्याऽऽलोकै रचितवाँल्लोकैर्नवदिनावधि ।।३१।।

भावार्थः—हे राणा! आपने पराक्रमी लोगों से मालपुर में नौ दिनों तक प्रचुर धन लुटवाया।

युष्मद्रिंगत्तुरंगप्रचुरखुरपुटैश्चूर्णितानां पुरेस्मि-
न्पूर्णानां शर्कराणां पटुकरटिघटाकर्णतालप्रवातैः।
उड्डीनानां समूहैर्जलनिधय इमे पूरिताः क्षारभावं
मुक्ता मिष्टत्वभाजः कृत इति भवता भूप विश्वोपकारः।।३२।।

भावार्थः—हे राजन्! आपके घोड़े जब मालपुर में चले, तब उनकी असंख्य टापों की टक्कर से शक्कर के ढेले चूर-चूर हो गये और जब वह पिसी हुई शक्कर प्रचंड हाथियों के कर्ण-तालों की हवा से उड़कर समुद्रों में जा गिरी तब वे खारापन छोड़कर मीठे बन गये। यह आपने संसार का उपकार किया है।

जाते मालपुरस्य लुंटनविधौ सच्छर्कराणां पुरः
कर्पूरप्रकरस्य वा हयखुरप्रोद्धूतशुद्धं रजः।
उड्डीनं गगने विभाति भवतो भूयो मया तर्कितं
श्रीरानामणिराजसिंहनृपतेः कीर्त्ते [:] प्रकाशः परः ।।३३।।

भावार्थः—मालपुर को जब आपने लूटा तब घोड़ों की टापों से शक्कर अथवा कपूर के ढेर की सफेद धूल उड़ी और आकाश में शोभा पाने लगी। उसे देखकर मैंने तर्कना की कि वह तो महाराणा राजसिंह की कीर्ति का सुन्दर प्रकाश है।

गुच्छवद्गुच्छहारास्ते कनकं कनकोपमं।
प्रवालवत्प्रवालाश्च प्राचुर्याल्लुंटनेभवत् ॥३४॥

भावार्थः—मालपुर में मुक्ताहार तृणादि के गुच्छो की तरह, स्वर्ण धतूरे के समान और मूंगे कोंपलों की तरह अतिशय लूटे गये।

सुकर्बुराः सुदुर्वर्णाः सद्वरिष्ठाः प्रवालकाः।
हट्टेभ्यश्च गृहेभ्यश्च संप्राप्ता लुंटने जनैः ॥३५॥

भावार्थः—उस लूट मे लोगो ने दुकानों और घरों से सोना, चाँदी और मूंगे प्राप्त किये।

सुजातरूपकं तीक्ष्णं श्वेतशोभं जनैर्मुहुः।
नानाम्लेच्छ मुखं दृष्टं पतित पथि लुंटने ॥३६॥

भावार्थः—उस लूट मे लोगों को सोना, लोहा, चाँदी और नाना प्रकार के म्लेच्छ-मुंड मार्ग में बिखरे हुए बार-बार दिखाई दिये।

लुंटने लुंटनकरैर्लुंटितं येन यत्त्वया।
तस्मै प्रदत्तं तद्दृष्ट्वा तवोदारं चरित्रता ॥३७॥

भावार्थः—हे राजन्! लूट में जिसने जो लूटा, आप ने उसे वह दे दिया। लूटने वालों ने आपकी यह उदार चरित्रता देखी।

प्राप्ता भूपालतां रंका निःशंका धनलाभतः।
लुंटने पुरभूपास्तु निर्धना रंकतां गताः ॥३८॥

भावार्थः—लूट में जो धन मिला, उससे रंक निःशंक होकर राजा बन गये और नगर के राजा निर्धन होकर रंक हो गये।

लक्ष्मीसन्मणिकल्पवृक्षसुरभीहालाधनुर्वाजिनः
शंखाश्चंद्रसुधागजेंद्रसुमनःस्त्रीवैद्यविद्याधराः ।
लोकैर्मालपुरोल्लसज्जलनिधेर्मथेषु रत्नान्यलं
लब्धानीति विचित्रमत्र न विषं केनापि लब्धं क्वचित् ।।३९।।

भावार्थः—मालपुर रूपी सुन्दर समुद्र के मंथन में लोगो ने लक्ष्मी, मणि, कल्पवृक्ष, सुरभी, हाला, धनुष, अश्व, शंख, चन्द्र, सुधा, गजेन्द्र, सुमनःस्त्री, वैद्य तथा विद्याधर ये पूरे चोदह रत्न प्राप्त किये । लेकिन आश्चर्य है कि वहाँ किसी को कहीं विप प्राप्त नहीं हुआ ।

सुवर्णमूल्यस्य तु रूप्यमुद्रिका
सद्वस्तुनो मूल्यमभूद्विलुंटने ।
सद्रूप्यमुद्रामितवस्तुनः पुनः
कर्षोपि कर्षस्य वराटकं तथा ।।४०।।

भावार्थः—लूट में सुवर्ण के मूल्य की वस्तु का मूल्य रुपया हो गया । इसी प्रकार रुपये के मूल्य की वस्तु का कर्ष और कर्ष के मूल्य की वस्तु का मूल्य वराटक हो गया ।

स्वीयब्राह्मणमंडलीकृतमहाहोमाग्निहोत्राष्टभि-
र्यज्ञैर्भूरिकृतादिवस्तुरचिताजीर्णस्यशांत्यै मुखे ।
वह्नेर्मालपुरं शुभौषधमयं होमीकृतं सृष्टवा-
न्मन्ये खांडवमेष पांडव इव श्रीराजसिंहोनृपः ।।४१।।

भावार्थः—अपने ब्राह्मणो द्वारा राजसिंह ने जो बड़े-बड़े हवन, अग्निहोत्र और आठ यज्ञ करवाये, उनकी प्रचुर घृत आदि सामग्री से अग्निदेव को अजीर्ण हो गया । ऐसा लगता है कि उस अजीर्ण को मिटाने के लिये उत्तम औषधियों से भरा यह मालपुर अग्निदेव के मुख में झौंक दिया गया है । इस प्रकार अर्जुन के समान नृपति राजसिंह ने मालपुरा को खाण्डव वन बना दिया ।

टोंकं च सांभरिं ग्रामाँल्लालसोटिं च चाटसूं ।
रानेंद्रसुभटा जित्वा दंडयित्वा बभुर्भृशं ।।४२।।

भावार्थः—टोंक, सांभर, लालसोट और चाटसू ग्रामों को जीतकर तथा दंडित कर महाराणा के योद्धा अतिशय र् शोभित हुए ।

राना अमरसिंहोत्र बलीयामद्वयं स्थितः ।
राजसिंहः स्थितस्तत्र चित्रं नवदिनावधि ।।४३।।

भावार्थ.—शक्तिशाली राणा अमरसिंह जहाँ केवल दो पहर ठहर सका, आश्चर्य है कि राजसिंह वहाँ नौ दिनों तक ठहरा ।

घनांबुयुक्छाइनिनिम्नगाऽऽगता
नदी भवत्येव हि नीचगामिनी ।
विघ्न. कृतो नीचतया तया तत [:]
श्रीराजसिंह [.] स्वपुरे समागतः ।।४४।।

भावार्थ.—छाइनि नदी में बाढ़ आ गई । चूँकि नदी नीचगामिनी होती ही है उसने अपनी नीचता के कारण विघ्न उपस्थित किया । इसीलिये राजसिंह अपने नगर लौट आया ।

मनोज्ञतरुणीगणाश्रितगवाक्षपक्षद्वये
विचित्रपटघट्टनाविलसदट्टहट्टे पुनः ।
समुद्भटभटैर्युते करटिसद्घटाटोपके
महोदयपुरे नृपः प्रविशति स्म वीरोन्नतः ।।४५।।

भावार्थः—विजय यात्रा से लौटकर वीर–शिरोमणि राजसिंह ने जब उदयपुर में प्रवेश किया तब मार्ग के दोनों तरफ के गवाक्ष सुन्दर तरुणियों से भर गये। दुकानें और अट्टालिकाएँ चंचल एवं रंगबिरंगी पताकाओं से शोभा पा रही थी । जुलूस में प्रचंड योद्धा और अगणित हाथी विद्यमान थे ।

इति राजप्रशस्तिमहाकाव्ये सप्तम [:] सर्ग [:] ।।

गजधर कल्याण तत्पुत्र जगनाथ भ्रात्र उरजण तत्पुत्र लाला लपाः जसा हरजी जात सोमपुरा गोत्र भाद्वाज वास उदैपुर····

अष्टम: सर्ग:

[नवीं शिला]

।। श्रीगणेशाय नम:

शते सप्तदशेतीते चतुर्दशमितेब्दके ।
शिविरे छाइनिनदीतीरस्थे ज्येष्ठमासके ।।१।।

भावार्थ:—संवत् १७१४ के ज्येष्ठ महीने में, छाइनि नदी के तट पर, शिविर में

औरंगजेबं दिल्लीशं जातं श्रुत्वाथ तन्मुदे ।
अरिसिंहं प्रेषितवान् भ्रातरं नृपतिस्तत: ।।२।।

भावार्थ:—राजसिंह ने औरंगजेब के दिल्ली-पति बनने के समाचार सुने। तब उसने बादशाह को प्रसन्न करने के लिये अपने भाई अरिसिंह को भेजा ।

अरिसिंह [:] सिंहनदपर्यंतं गतवान्ददौ ।
अरिसिंहाय दिल्लीश: स डूंगरपुरादिकान् ।।३।।

भावार्थ:—अरिसिंह सिंहनद तक गया । दिल्ली-पति ने उसे डूंगरपुर आदि

देशान्गजादि तत्सर्वं अरिसिंह: समार्पयत् ।
श्रीराजसिंहचरणे सोस्मै योग्यं ददौ मुदा ।।४।।

भावार्थ:—देश एवं हाथी इत्यादि दिये । अरिसिंह ने उन सब को राजसिंह के चरणों में रख दिया । प्रसन्न होकर राजसिंह ने उसका यथोचित सम्मान किया ।

गत्वा शते सप्तदशे तु वर्षे
चतुर्दशाख्ये बहुवाणवर्षं ।
सूजाख्यसोदर्यवरेण युद्धं
औरंगजेवस्य वितन्वतोस्य ।।५।।

भावार्थः—संवत् १७१४ में जब औरंगजेब और उसके ज्येष्ठ सहोदर शुजा के बीच भीषण युद्ध हुआ तब औरंगजेब को

मुदे कुमारं सिरदारसिंहं
स प्रेषयामास नृपः पुरैव ।
औरंगजेबस्य पुरः स्थितोसौ
रणे कुमारो जयवान्स जातः ॥६॥

भावार्थः—प्रसन्न करने के लिये राजसिंह ने कुँवर सरदारसिंह को भेजा था, जिसने वहाँ पहुँचकर युद्ध में औरंगजेब के समक्ष विजय पाई थी । इस कारण

औरंगजेबः सिरदारसिंह-
वीराय देशाश्वगजाद्यदात्सः ।
राणांह्रिपद्मेर्पयदेव सर्वं
योग्यं स चास्मै पददे नृपेंद्रः ॥७॥

भावार्थः—औरंगजेब ने उसे भी देश, अश्व, गज आदि प्रदान किये । सरदारसिंह ने इन सब को महाराणा के चरण–कमलों में भेंट कर दिया । राजसिंह ने उसका यथोचित सम्मान किया ।

पूर्णे सप्तदशे शते नरपतिः सत् षोडशाख्येब्दके
आकार्योत्तमठक्कुरैर्गिरिधरं तं डूंगराद्ये पुरे ।
सद्राज्य किल रावलं विदधतं कृत्वात्मनः सेवकं
प्रेम्णास्मै प्रददौ सुयोग्यमखिलं सेवां व्यधाद्रावलः ॥८॥

भावार्थः—सं० १७१६ में राजसिंह ने ठाकुरों द्वारा रावल गिरिधर को, जो उस समय डूंगरपुर में राज्य कर रहा था, बुलवाकर उसे अपना सेवक बनाया तथा उचित उपहार के रूप में उसको समूचा डूंगरपुर राज्य प्रेम–पूर्वक प्रदान किया । रावल ने भी राजसिंह की सेवा को निभाया ।

शते सप्तदशे पूर्णे वर्षे षोडशनामके।
श्रावणे तु वसाडाख्यदेशं द्रष्टुं नृपो ययौ ।।९।।

भावार्थः—संवत् १७१६ के श्रावण महीने में राजसिंह वसाड़ देश को देखने गया।

भटैरुद्भटै रावलाद्यैर्बलाढ्यैः
प्रचंडैश्च वेतंडवर्यैरुपेतां।
गृहीत्वा महावाहिनीं राजसिंहः
प्रतस्थे वसाडप्रदेशेक्षणाय ।।१०।।

भावार्थः—वसाड़ देश को देखने के लिये जब राजसिंह ने प्रस्थान किया, तब उसने अपने साथ बड़ी सेना ली, जिसमें रावल आदि शक्तिशाली एवं उद्‌भट योद्धा और बड़े-बड़े प्रचंड हाथी थे।

ततो दुंदुभिः प्रोच्चशब्दैर्जिताब्दा-
रवैः पार्श्वदेशस्थितानां जनानां।
विदीर्णानि वक्षांसि वक्षो विभिन्नं
महारावतस्यापि नश्यद्बलस्य ।।११।।

भावार्थः—तदनन्तर घन-गर्जन से भी बढकर दुन्दुभियों की गड़गड़ाहट से पड़ौसी देशों मे रहने वाले लोगों के हृदय फट गये। सेना-विहीन हुए महारावत का हृदय भी विदीर्ण हो गया।

झालोद्यत्सुलतानाख्यं चोहाणं तं महाबलं।
रावं सबलसिंहाख्यं रघुनाथाख्यरावतं ।।१२।।

भावार्थः—सुलतान झाला, राव सबलसिंह चौहान, रावत रघुनाथ

चोडावतं मुहकमसिंहं शक्तावतोत्तमं।
एतान्पुरोगमान्कृत्वा एतेषां बाहुमाश्रयन् ।।१३।।

भावार्थः—चूँडावत और मुहकमसिंह शक्तावत को आगे करके तथा उनकी बाहु का आश्रय लेकर

स रावतो हरीसिंहो ययौ देवलियापुरात् ।
आगत्य राजसिंहस्य राजेंद्रस्य पदेऽपतत् ॥१४॥

भावार्थः—रावत हरीसिंह, देवलिया से चला और आकर महाराणा राजसिंह के चरणों में गिर गया ।

रूप्यमुद्रासुपंचाशत्सहस्राणि न्यवेदयत् ।
मनरावतनामानं करिणं करिणीमपि ॥१५॥

भावार्थः—उसने पचास हजार रुपये, एक हथिनी और मनरावत नामक एक हाथी महाराणा को भेंट किया ।

शते सप्तदशे पूर्णे वर्षे पंचदशाभिधे ।
वैशाखे कृष्णनवमीदिवसे भौमवासरे ॥१६॥

भावार्थः—संवत् १७१५, वैशाख कृष्णा नवमी, मंगलवार को

महाराजसिंहाज्ञया वाँसवाले-
क्षणार्थं फतेचंदमंत्री प्रतस्थे ।
चमूं पंचराजत्सहस्राश्ववारै-
र्महाठक्कुरैर्गुंठितां तां गृहीत्वा ॥१७॥

भावार्थः—बड़े-बड़े पाँच हजार अश्वारोही ठाकुरों की सेना लेकर मंत्री फतेचंद ने महाराणा राजसिंह की आज्ञा से वाँसवाड़ा को देखने के लिये प्रस्थान किया ।

ततः समरसिंहस्य रावलस्याबलस्य वै ।
लक्षसंख्या रूप्यमुद्रा देशदानं च हस्तिनीं ॥१८॥

भावार्थः—उसने सेना--हीन रावल समरसिंह से एक लाख रुपये, देशदान, एक हथिनी,

गजं दंडं दशग्रामान्कृत्वाऽपातयदंह्रिषु ।
राणेंद्रस्य फतेचंदो भृत्यं कृत्वैव रावलं ॥१९॥

भावार्थः—एक हाथी और दश गांव दंड स्वरूप लेकर उसे महाराणा के चरणों में झुका दिया। फतेचंद ने रावल को महाराणा का अधीन बनाकर ही छोड़ा।

दशग्रामान्देशदानं रूप्यमुद्रावलेर्नृपः।
सद्विंशतिसहस्राणि रावलाय ददौ मुदा ॥२०॥

भावार्थः—प्रसन्न होकर राजसिंह ने दस गांव, देशदान और बीस हजार रुपये रावल को दिये।

श्रीराजसिंहवचनात्फतेचंदः सठक्कुरः।
चक्रे देवलियाभंगं हरीसिंहः पलायितः ॥२१॥

भावार्थः—राजसिंह की आज्ञा से ठाकुरों को साथ लेकर फतेचंद ने देवलिया का विध्वंस कर दिया। हरीसिंह वहाँ से भाग गया।

हरीसिंहस्य माता तु गृहीत्वा पौत्रमागता।
प्रतापसिंहं विदधे प्रसन्नं राणमंत्रिणं ॥२२॥

भावार्थः—तब हरीसिंह की माता अपने पौत्र प्रतापसिंह को लेकर महाराणा के पास पहुँची तथा उसने उसे प्रसन्न किया।

रूप्यमुद्रासहस्राणि विंशत्याख्यानि हस्तिनीं।
दंडं प्रकल्प्य स्वल्पं स फतेचंदो दयामयः ॥२३॥

भावार्थः—दयालु फतेचंद ने उससे स्वल्प दंड के रूप में बीस हजार रुपये और एक हथिनी ली। इसके बाद वह

राणेंद्रचरणाभ्यर्णे आनायामास तं बलात्।
प्रतापसिंहं जातस्तत्फतेचंदः प्रभोः प्रिय[:] ॥२४॥

भावार्थः—प्रतापसिंह को महाराणा के चरणों में बलपूर्वक ले आया। इस प्रकार फतेचंद अपने स्वामी का प्रिय बन गया।

अखेराजं सिरोहीशं रावं भक्ततमं स्फुटं ।
प्रेम्णैव वश्यं कृतवान्राजसिंहो महीपतिः ॥२५॥

भावार्थः—पृथ्वीपति राजसिंह ने सिरोही के स्वामी राव अखैराज को, जो बड़ा भक्त था, केवल प्रेम से अधीन कर लिया। यह प्रसिद्ध है।

शते सप्तदशे पूर्णे षोड़शेब्देथ फाल्गुने ।
देहवारीमहाघट्टे शैलश्लिष्टे नृपो व्यधात् ॥२६॥

भावार्थः—संवत् १७१६ के फाल्गुन महीने में राजसिंह नें देवारी के विशाल घाटे में, जहाँ पहाड़ आकर जुड़ते हैं, एक दरवाज़ा बनवाया।

द्विट्चक्रकरपत्राभंलोहपत्रोच्चकीलयुक् ।
वैरिधीपाटनं प्रोच्चकपाटयुगलं दधत् ॥२७॥

भावार्थः—उसमें बहुत ऊँचे दो किंवाड लगवाए गये, जिन्हें देखकर शत्रुओं की बुद्धि नष्ट होजाती है। उन पर लोहे के पतरे और ऊँचे-ऊँचे कीले लगे हुए हैं। शत्रुओं को काटने में वे करवत के समान हैं।

अनर्गलद्विषच्चिंतार्गलरूपार्गलायुत ।
सिंहप्रकोष्ठं सत्कोष्ठं द्वारं द्विड्वारवारणं ॥२८॥

भावार्थः—उस दरवाजे मे शत्रुओं द्वारा निरन्तर पैदा की जाने वाली चिन्ताओं की रुकावट के लिये एक अर्गला लगवाई गई। वहाँ सिंह के प्रकोष्ठ [=पहुँची] के समान सुदृढ़ कोट भी बनवाया गया।

शते सप्तदशे पूर्णे वर्षे सप्तदशे ततः ।
गत्वा कृष्णगढे दिव्ये महत्या सेनया युतः ॥२९॥

भावार्थः—संवत १७१७ मे, कृष्णगढ़ नामक सुन्दर नगर मे बड़ी सेना के साथ पहुँचकर -

दिल्लीशार्थं रक्षितायाः राजसिंहनरेश्वरः ।
राठोडरूपसिंहस्य पुत्र्याः पाणिग्रहं व्यधात् ॥३०॥

भावार्थः—नृपति राजसिंह ने, दिल्ली-पति के लिये सुरक्षित, राठौड़ रूपसिंह की पुत्री से विवाह किया।

एकोनविंशतिस्वब्दे शते सप्तदशे गते
मेवलं देशमतनोत्स्वकार्यं तं बलान्नृपः ॥३१॥

भावार्थः—संवत् १७१९ में राजसिंह ने मेवल देश को बलपूर्वक अपने अधीन कर लिया।

मीनान्निर्जलमीनाभान् रुद्ध्वा बद्ध्वातिदुष्करान् ।
खंडयामासुरधिकं मीनासैन्यं महाभटाः ॥३२॥

भावार्थः—कठिनाई से पकड़ में आने वाले मीणों को जल-विहीन मच्छों की तरह घेर कर और बांधकर राजसिंह के योद्धाओं ने उनकी भारी सेना को नष्ट कर दिया।

श्रीराणाराजसिंहेंद्रो मेवलं त्वखिलं ददौ ।
स्वीयराजन्यधन्येभ्यो वासोहयधनानि [च] ॥३३॥

भावार्थः—महाराणा राजसिंह ने अपने योग्य सामन्तों को वस्त्र, अश्व, धन और समूचा मेवल देश दे दिया।

शते शप्तदशेतीते विंशत्याह्वयवत्सरे ।
श्रीराजसिंहस्याज्ञातः सिरोहीनगरे गतः ॥३४॥

भावार्थः—संवत् १७२० मे राजसिंह की आज्ञा से

रानावतो रामसिंहः ससैन्यो रावमाकुलं ।
पुत्रेणोदयभानेन रुद्धममोचयद्बलात् ॥३५॥

भावार्थः—रानावत रामसिंह ससैन्य सिरोही नगर पहुँचा। उसने दुःखी राव अखैराज को, जिसे उसके पुत्र उदयभान ने कैद कर रखा था, बलपूर्वक छुड़ाया और

अखेराजं तस्य राज्ये स्थापयामास तत्स्फुटं ।
राणा मित्रारिराज्यानां स्थापकोत्थापका इति ।।३६।।

भावार्थः—उसे उसके राज्य पर स्थापित किया । तभी से यह प्रसिद्ध हुआ कि राणा मित्र और शत्रु के राज्यों के स्थापक और उत्थापक हैं ।

शते सप्तदशे पूर्णे एकविंशतिनामके ।
वर्षे मार्गेऽसिताष्टम्यां राजसिंहो महीपतिः ।।३७।।

भावार्थः—संवत् १७२१, मार्गशीर्ष कृष्णा अष्टमी को पृथ्वीपति राजसिंह ने

अनूपसिंहभूपस्य बाघेलाबांधवप्रभोः ।
भावसिंहकुमाराय कन्यामजबकुँवरिं ।।३८।।

भावार्थः—बांधव के स्वामी बाघेला राजा अनूपसिंह के कुमार भावसिंह के साथ अपनी पुत्री अजब कुँवरि का

संकल्प्य विधिना दत्त्वा महाराजन्यपंक्तये ।
गोत्रजाद्यन्यकन्यानामष्टाग्रां नवतिं ददौ ।।३९।।

भावार्थः—विवाह विधिपूर्वक किया । उस अवसर पर उसने अपने वंश के क्षत्रियों की १८ कन्याओं का विवाह [रीवा के] राजपूतों के साथ कराया ।

अथायं पाकशालायां राजसिंहो नरेश्वरः ।
भावसिंहकुमाराद्यैर्बांधवीयैस्तु बाहुजैः ।।४०।।

भावार्थः—इसके बाद पाकशाला में बांधव के निवासी भावसिंह आदि

अस्पर्शभोजिभिः साकमुपविष्टो विशिष्टभाः ।
कुर्वाणो भोजनं भाति बांधवीयैस्तदेरितं ।।४१।।

भावार्थः—अस्पर्शभोजी क्षत्रियों के साथ बैठकर तेजस्वी नृपति राजसिंह जब भोजन करने लगा तब वे बोले—

श्रीराणाराजसिंहस्य यदन्नमतिपावनं ।
तज्जगन्नाथरायस्य प्रसादान्नं न संशयः ॥४२॥

भावार्थः—'राणा राजसिंह का जो यह अन्न है, वह जगन्नाथराय का प्रसाद है और इसलिये अति पवित्र है। इसमें कोई संशय नहीं।

तदन्नभोजिनो ह्यद्य वयं प्राप्ताः पवित्रतां ।
हयान्गजान्भूषणानि वरेभ्योदान्महीपति[ः] ॥४३॥

भावार्थ.—इस अन्न को खाकर हम आज पवित्र हो गये हैं।" तदुपरान्त राजसिंह ने दूल्हों को घोड़े, हाथी और आभूषण दिये।

पूर्णे शते सप्तदशे सुवर्षे
तथैकविंशत्यभिधे तु माघे।
सुरूप्यमुद्राद्विसहस्रहेम-
कृतां शुभोपस्करपूरितां च ॥४४॥

भावार्थः—संवत् १७२१ के माघ महीने के सूर्यग्रहण के अवसर पर विर-शिरोमणि राजसिंह ने दो हजार रुपयों का, सोने का बना,

सूर्योपरागे तु हिरण्यकामधेनुं
महादानमदात्स रूप्यां।
व्यधात्तुलां वा गजमौक्तिकाख्य-
गजं ददौ वीरवरो नरेंद्रः ॥४५॥

भावार्थ.—हिरण्यकामधेनु नामक महादान दिया। उसके साथ अन्य सुन्दर सामग्री भी। तब उसने चाँदी की तुला भी की तथा गजमौक्तिक नाम का एक हाथी प्रदान किया।

शते सप्तदशे पूर्णे पंचविंशतिनामके।
वर्षे माघे राजसिंहो दशम्यां शुक्लपक्षके ॥४६॥

भावार्थः—संवत् १७२५, माघ शुक्ला दशमी को राजसिंह ने

बडीग्रामे तडागस्योत्सर्गं रूप्यतुलां व्यधात् ।
नामाकरोत्तडागस्य जनासागर इत्ययं ।।४७।।

भावार्थः—बड़ी गाँव में एक तड़ाग की प्रतिष्ठा कराई और उस अवसर पर चाँदी का तुलादान किया । महाराणा ने उस तड़ाग का नाम 'जनासागर' रखा ।

ददौ गरीबदासाख्यपुरोहितवरस्य सः ।
ग्रामं तु गुणहंडाख्यं तथा देवपुराभिधं ।।४८।।

भावार्थः—तब राजसिंह ने बडे पुरोहित गरीबदास को गुणहंडा और देवपुरा नाम के दो गाँव प्रदान किये ।

षड्लक्षाणि सहस्राणि अष्टाशीतिमितान्यहो ।
लग्नानि रूप्यमुद्राणां तडागे भद्रदायके ।।४९।।

भावार्थः—उस कल्याणकारी तड़ाग मे छह लाख और अस्सी हजार रुपये व्यय हुए ।

जनादेनामयुक्तायाः स्वमातु[ः] स्वर्गसंस्थितेः ।
अर्पयामास सुकृतं राजसिंह इदं नृप[ः] ।।५०।।

भावार्थः—नृपति राजसिंह ने वह पुण्य अपनी दिवगत माता जनादे को अर्पित कर दिया ।

तथोदयपुरे त्वस्मिन्दिने राणनृपोक्तितः ।
महाराजकुमारश्रीजयसिंहो महाश्रिया ।।५१।।

भावार्थः—उसी दिन महाराणा की आज्ञा से महाराजकुमार जयसिंह ने वड़े ठाट-बाट से

उत्सर्गं रंगसरसस्तडागस्याकरोन्मुदा ।
महादानानि कृतवान्वीरो बाल्येतिपुण्यकृत् ।।५२।।

भावार्थः—'रंगसर' तड़ाग की प्रतिष्ठा कराई। बाल्यावस्था में पुण्य करनेवाले इस वीर ने उस अवसर पर महादान दिये।

श्रीराणोदयसिहसूनुरभवत् श्रीमत्प्रताप[:] सुत-
स्तस्य श्री अमरेश्वरोस्य तनयः श्रीकर्णसिंहोस्य वा।
पुत्रो राणजगत्पतिश्च तनयोस्माद्राजसिंहोस्य वा
पुत्र[:] श्रीज[य]सिंह एष कृतवान्वीरः शिलाऽऽलेखितं ॥५३॥

भावार्थः—राणा उदयसिंह के प्रताप, उसके अमरसिंह, उसके कर्णसिंह, उसके जगतसिंह, उसके राजसिंह तथा राजसिंह के जयसिंह हुआ। उस वीर जयसिंह ने यह शिला ।ख उत्कीर्ण करवाया।

पूर्णे सप्तदशे शते तपसि वा सत्पूर्णिमाख्ये दिने
द्वाविशन्मितवत्सरे नरपतेः श्रीराजसिंहप्रभोः।
काव्यं राजसमुद्रमिष्टजलधेरुत्सर्गसद्वर्णना-
सपूर्ण रणछोडभट्टरचितं राजप्रशस्त्याह्वयं ॥५४॥

भावार्थः—यह राजप्रशस्ति नाम का काव्य है। इसकी रचना रणछोड़ भट्ट ने की। संवत् १७३२ के माघ महीने की पूर्णिमा के दिन नृपति राजसिंह के जिस राजसमुद्र रूपी मधुर सागर की प्रतिष्ठा हुई, उसका इस काव्य में सुन्दर वर्णन है।

इति श्री अष्टम : सर्ग : ॥

संवत् १७१८ अखरे संवत सतरे से अठारहोतरा वरखे माघमासे कृष्णपखे सपतमी दिवसे बुधवारे श्री राजसमुद्र रो आरंभ रो मोहूरत कीधो जी। संवत १७३२ अखरे संवत सतरे से वतीसा विरखे माघमासे सुकलपखे पुरणमासी दिवसे बृहसपतिवारे श्री राजसमुद्र री प्रतीष्टा कीधी जी [।] श्री राजसमुद्र डोरो दीन ६ माहे डोरो फेरेने पाछा पधारेणे तुला सोना री वेसेने समस्त ब्राह्मण भाट चारण ने दांन दीधोजी। भाटरणछोड़जी पुत्र सुत लखमीनाथ ॥ गजधर कल्याणजी गजधर मोहणजी उरजणजी सुखजी केसोजी सुंदरजी लालाजी जात सोमपुरा वास उदैपर [॥]

नवम : सर्ग :

[दसवीं शिला]

।। श्रीगणेशाय नम : ।।

वृत्तास्योडुपशोभितः प्रविलसल्लावण्यकल्लोलवा-
न्प्रोल्लोलन्मकराच्छकुंडलधरो राजीवराजीक्षणः ।
माणिक्योज्ज्वलहीरकोत्तममहाभूपः प्रवालैर्लसन्
शृंगारामृतसागरस्तव मुदे गोवर्द्धनोद्धारकः ।।१।।

भावार्थः—गोवर्द्धनधारी कृष्ण श्रृंगार रूपी अमृत से युक्त सागर है। उनका गोल मुख चन्द्रमा है। लावण्यमयी तरंगों से वह शोभा पारहा है। उसने उल्लोलित मकर-कुंडल धारण कर रखे है। उसके नेत्र कमल हैं। उज्ज्वल माणिक्यों, हीरों और मूंगों से वह अतिशय सुशोभित है। वह आपको आनन्द प्रदान करे।

महाराजाधिराजश्रीजगत्सिंहे विराजति ।
वत्सरेष्टनवत्याख्ये शते षोडशके गते ।।२।।

भावार्थः—संवत् १६९८ में, महाराजाधिराज श्री जगतसिंह की विद्यमानता में,

श्रीकुमारपदे पूर्वे राजसिंहो ययौ प्रति ।
दुर्गं जैसलमेराख्यं पाणिग्रहकृते तदा ।।३।।

भावार्थः—राजसिंह विवाह करने के लिये जैसलमेर दुर्ग गया था। तब वह कँवरपदे में था। उस समय

द्वादशाब्दवया एव प्रवया इव बुद्धिमान् ।
द्वादशात्मस्फुरत्तेजा ईदृशीं मतिमादधे ।।४।।

भावार्थः—उसकी आयु बारह वर्ष की ही थी, पर वह वृद्ध के समान बुद्धिमान् और सूर्य के समान तेजस्वी था। उसने इस प्रकार सोचा और

घोधुंदा सनवाडश्च सिवाली च भिगावँदा।
मोर्चना च पसों[द]श्च खेडो छापरखेडिका ॥५॥

भावार्थः—घोयंदा, सनवाड़, सिवाली, भिगावदा, मोरचणा, पसूंद, खेड़ी, छापर खेड़ी,

तासोल मेडावरको भानो ग्रामो लुहानकः।
वांसोल गुढली एषां कांकरोली मढा इति ॥६॥

भावार्थः—तासोल, मंडावर, भाँण, लुहाणा, बाँसोल, गुढ़ली, कांकरोली एवं मढा इन

ग्रामाणां सीम्नि दृष्ट्वा क्ष्मां तडागकरणोचितां।
स्वमनः स्थापयामास बद्धुमत्र जलाशयं ॥७॥

भावार्थः—गाँवों की सीमा में तड़ाग-निर्माण-योग्य भूमि देखकर वहाँ एक जलाशय बाँधने का मन में निश्चय किया।

धर्मकार्ये मतेर्धर्त्ता शत्रोर्हर्त्ता सदा रणे।
यदा राज्यस्य कर्त्तायं भुवो भर्त्ताभवत्तदा ॥८॥

भावार्थः—धर्म-कार्य में बुद्धि रखनेवाला और रण-भूमि में सदा शत्रु-संहार करनेवाला यह पृथ्वीपति जब राज्याधिरूढ़ हुआ, तब

शते सप्तदशे पूर्णे अष्टादशमितेब्दके।
मासे मार्गे ययौ द्रष्टुं रूपनारायणं हरिं ॥९॥

भावार्थः—संवत् १७१८ के मार्गशीर्ष में उसने रूपनारायण भगवान के दर्शन करने के लिये प्रस्थान किया।

तदैनां वीक्ष्य वसुधां तडागं बद्धुमुद्यतः।
पुरोधसाकरोन्मंत्रं कार्यं स्यादिति सोवदत् ॥१०॥

भावार्थः—तव उस भूमि को फिर से देखकर वह तड़ाग बांधने के लिये तैयार हुआ। पुरोहित से उसने सलाह ली। पुरोहित ने कहा—"यह कार्य होना चाहिये।

श्रद्धा पूर्णाऽविरोधित्व दिल्लीशेन व्ययो वहुः।
द्रव्यस्येति भवेच्चेत्स्याद्राज्ञोक्तं स्यात्त्रय ततः ॥११॥

भावार्थः—यदि पूर्ण श्रद्धा हो, दिल्ली–पति से विरोध न हो तथा धन का प्रचुर व्यय हो तो यह कार्य हो सकता है।" इस पर नृपति ने कहा–'तीनों बातें हो सकती हैं।"

पुरोहितकरश्रीमत्पुरोहितपुरःसरः।
पुरोहितजयी राजा कार्यं कर्त्तुमथोद्यतः ॥१२॥

भावार्थः—फिर वह तड़ाग बँधवाने के लिये तैयार हुआ। पुरोहित आगे से आगे राजसिंह का हित करने वाला था और पुरोहित के प्रभाव से ही उसे विजय मिलती रही थी। इस कारण महाराणा ने इस कार्य में भी उसे आगे रखा।

अखर्वयोः पर्वतयोरन्तरे गोमतीं नदीं।
रोद्धुं बद्धं महासेतुं रानेंद्रो यत्नमादधे ॥१३॥

भावार्थः—महाराणा ने बड़े–बड़े दो पर्वतो के बीच गोमती नदी को रोकने और महासेतु के बाँधने का प्रयत्न किया।

पूर्णे सप्तदशाभिधे तु शतके स्वष्टादशाख्येब्दके
माघे कृष्णसुपक्षके किल बुधे, सत्सप्तमीवासरे।
ईदृक्संख्य इहेदृशाह्वययुते काले तु कार्ये कृते
संख्यानः खलु नामतोपि च समो मे वांछितार्थो भवेत् ॥१४॥

भावार्थः—राजसिंह ने जलाशय का मुहूर्त्त निकलवाया-संवत् १७१८, माघ कृष्णा ७, बुधवार। यह मुहूर्त्त इसलिय निकलवाया कि उसमें प्रयुक्त संख्या [सप्त, दश और अष्टादश] तथा नाम [माघ, कृष्ण पक्ष, बुधवार और सप्तमी] के समानार्थी फल राजसिंह को प्राप्त हों। जैसे —

पूर्णेत्रेति च सप्तसागरदशाशाष्टादशद्वीपक-
श्रेण्यां स्वीययशः प्रकाशकृतये माऽघो मम स्यात्क्वचित्।
कृष्णः पक्षकरो बुधाः स्तुतिकराः सत्सप्तमीदिग्ध्रुव-
ध्रौव्यार्थं तु जलाशयस्य कृतवान्भूपो मुहूर्त्तग्रहं ॥१५॥

भावार्थः—इस कार्य के संपन्न होने पर सातों सागर, दसों दिशाएँ और अठारहों द्वीप पर्यन्त उसका यश फैले। पाप से वह दूर रहे। कृष्ण उसका साथ दे। विद्वान् उसकी स्तुति करें। सातवीं दिशा [=उत्तर] के निवासी ध्रुव की निश्चलता उसे प्राप्त हो।

सेतुं बद्धुं बद्धपर्णैर्धृतचित्रखनित्रकैः।
जनैः खननमारब्धं लुब्धैश्च धनलब्धये ॥१६॥

भावार्थः—धन-प्राप्ति की अभिलाषा से मजदूरों ने सेतु बांधने के लिये नाना प्रकार के औज़ारों से खुदाई करना प्रारम्भ किया।

तदोद्भटैः षष्टिसहस्रसंमितैः
समुद्रसर्गे सगरात्मजैर्यथा।
अकारि भूमेः खननं तथांबुधिं
कर्त्तुं द्वितीयं रचितं नृकोटिभिः ॥१७॥

भावार्थः—समुद्र के निर्माण में जिस प्रकार सगर के साठ हजार उद्भट पुत्रों ने भूमि खोदी, उसी प्रकार इस दूसरे समुद्र के निर्माण के लिये करोड़ों मनुष्य पृथ्वी खोदने लगे।

असंख्ये खनने तत्र जायमाने जनैः कृते।
पृथिव्यां पृथवो जाता मृत्तिकौघेन पर्वताः ॥१८॥

भावार्थः—मनुष्यों ने वहाँ वहुत खोदा। इस कारण मिट्टी के बने ढेरों से पृथ्वी पर बड़े-बड़े पर्वत बन गये।

महत्कार्यं महाराणा मत्वा साधारणैर्जनैः।
न भवेत्तत्स्वयं स्थित्वा कारयन्भाति युक्तता ॥१९॥

भावार्थः—'कार्य महान् है। इसे साधारण लोग नहीं कर सकते।' ऐसा समझकर महाराणा वहीं रहा और स्वयं काम करवाने लगा। यह उचित था।

मत्वा रानो महत्कार्यं सेतुबंधं नृबंधहृत्।
स्वस्याग्रे कारयामास तथैव कृतवान्प्रभुः ॥२०॥

भावार्थः—सेतु-बन्ध को महान् कार्य समझकर मनुष्यों को बन्धन से मुक्त करने वाले महाराणा ने अपने आगे इस काम को उसी प्रकार करवाया, जैसे मनुष्यों को मोक्ष देनेवाले भगवान् राम ने करवाया था।

कार्यस्य महतो ह्यस्य कृत्वा भागाननेकशः।
राजन्यादिकधन्येभ्यो दत्तवांस्तान्धरापतिः ॥२१॥

भावार्थः—कार्य महान् था। इस कारण उसके अनेक भाग बनाकर पृथ्वीपति ने उन्हें योग्य सामन्तों को सौंप दिया।

सेतोर्दृढिर्यंकृते पृथ्व्याः पृष्ठे स्थापयितुं शिलाः।
जलनिःसारणं कर्तुं प्रयत्नं कृतवान्नृपः ॥२२॥

भावार्थः—राजसिंह ने सेतु की दृढ़ता के निमित्त पृथ्वी की पीठ पर शिलाएँ रखवाने के लिये वहाँ से जल निकलवाने का प्रयत्न किया।

शक्रं पराक्रमैः कालमायुषा धनदं धनैः।
जित्वांबुकर्षणे राणा वरुणं जेतुमुद्यतः ॥२३॥

भावार्थः—इन्द्र को पराक्रम से, यम को आयु से और कुबेर को धन से जीतकर जल निकालने में तत्पर महाराणा मानों अब वरुण पर विजय पाने के लिये तैयार हुआ है।

तदा चक्रभृता तत्र घटीयंत्रेण यत्कृतं।
वृषयुक्तेन कार्यस्य साहाय्यमुचितं हि तत् ॥२४॥

भावार्थः—तब जल निकालने के लिये बैल जोतकर चक्रवाले रँहट का उपयोग किया, जो उचित था।

क्रियमाणे घटीयंत्रैर्जलनिःसारणे जनैः।
तेषां तत्कार्यकरणे सार्थकः स घटीगणः ॥२५॥

भावार्थः—लोगों ने जब रँहटों से जल निकालना आरम्भ किया, तब उनके उस काम में रँहट की कलसियाँ सफल हो गईं।

स्वतन्त्रैश्च घटीयंत्रैरस्वतंत्रैः स्फुरद्वृषैः।
घटीमात्रेण घटितैर्भूरिनिःसारितं जलं ॥२६॥

भावार्थः—बैल जुते हुए थे। रँहट बिना रुकावट के चल रहे थे। उनके द्वारा घड़ी चर मे बहुत जल निकल गया।

जलयंत्रैर्बहुविधैरुपर्युपरि कल्पितैः।
लोकैर्भूपृष्ठगं नीर मेवं दूरीकृतं द्रुतं ॥२७॥

भावार्थः—एक के ऊपर एक करके वहाँ रँहट अनेक प्रकार से लगाये गये थे। लोगों ने उनसे पृथ्वी-तल का समस्त जल तत्काल बाहर निकाल दिया।

अस्मिन्भरतखंडे तु यावंतः संति सांप्रतं।
जलनिःसारणोपायास्तावंतः कल्पिता इह ॥२८॥

भावार्थः—वर्त्तमान में भारतवर्ष में जल निकालने के जितने उपाय हैं, उनका प्रयोग यहाँ किया गया।

गुणिभिः सूत्रधारैश्च पामरैरपि ये पुनः।
जलनिःसारणोपायाः प्रोक्तास्ते निर्मिता इह ॥२९॥

भावार्थः—गुणवान् सूत्रधारों तथा पामर लोगों ने जल निकालने के अन्य जो उपाय बताये, वे भी यहाँ काम में लाये गये।

इतो निःसारितं नीरं सारणीप्रसरैः परैः ।
ग्रामे ग्रामे जनैर्नीतं ग्रामा नगरतां गताः ॥३०॥

भावार्थ.—वहाँ से उलीचे गये पानी से बड़ी-बड़ी नहरें निकालकर लोग गाँव-गाँव में ले गये । गाँव, नगरों में बदल गये ।

यथा ज्योतिषसारण्या वासरः श्रेष्ठसाधनं ।
कृतं तथांवुसारण्यावसरः श्रेष्ठसाधनं ॥३१॥

भावार्थः—शुभ दिन निकालने के लिये जिस प्रकार ज्योतिष की सारणी का उपयोग किया जाता है, उसी प्रकार वर्ष को उत्तम वनाने के लिये यहाँ जल-सारणी का उपयोग किया गया ।

एवं नानाप्रकारेण जलं निःसार्य सर्वतः ।
सेतुवंधकृते लोकैर्भूपृष्ठं प्रकटीकृतं ॥३२॥

भावार्थः—इस प्रकार भाँति-भाँति से सब तरफ का जल निकालकर लोगों ने सेतु बाँधने के लिये ज़मीन को साफ कर दिया ।

प्रत्यक्षनीरवर्षो जित इंद्रो गिरधरेण कृष्णेन ।
वरुणः परोक्षपूरितजलो जितो राण तत्त्वया चित्रं ॥३३॥

भावार्थः—प्रत्यक्ष रूप में आकर इन्द्र ने पानी वरसाया, जिसे पर्वत द्वारा कृष्ण ने जीता था । लेकिन आपने उस वरुण पर विजय पाई है, जो छिपकर जल प्रवाहित करता रहा । हे राणा ! यह आश्चर्य है ।

पूर्णे सप्तदशे शतेब्द उदिते दिव्यैकविंशत्यभि-
व्याप्ताख्ये दिवसे त्रयोदशिकया शस्याख्ययाक्ते शुभे ।
वैशाखे सितपक्षके खलु विधोर्वारे किलैतादृशे
काले भावि सुकार्यसूचकसमानार्थव्रजाख्यायुते ॥३४॥

भावार्थः—नीव भरने का मुहूर्त्त निकलवाया गया–संवत् १७२१ वैशाख शुक्ला १३, सोमवार। कवि कहता है कि इस मुहूर्त्त में प्रयुक्त नाम [सप्तदश, एकविंशति, त्रयोदशी का दिन, वैशाख, शुक्ल पक्ष और सोमवार] राजसिंह के भावी पुण्यों की सूचना देने वाले हैं। वे पुण्य उपरोक्त नाम के समानार्थी हैं, जो इस प्रकार हैं:—

जंबूद्वीपवदन्यसप्तदशसु द्वीपेषु कीर्त्याप्तये
निंद्योद्यन्निरयैकविंशतिमहादुःखस्थलादृष्टये।
घस्रेशद्युतिलब्धये कुलमहाशाखाविवृद्ध्यै सदा
लाभार्थं सितपक्षकस्य च विधुस्वाह्लादकत्वाप्तये ॥३५॥

भावार्थः—जंबूद्वीप की तरह दूसरे सत्रह द्वीपों में कीर्ति की प्राप्ति, निंद्य एवं भयंकर इक्कीस नरकों के भीषण दुःख-पूर्ण स्थानों की अदृष्टि, दिन-पति [=सूर्य] के तेज की उपलब्धि, वंश की महाशाखा को विशेष वृद्धि का सदा लाभ और शुक्ल पक्ष के बढ़ते हुए चन्द्रमा के समान आह्लाद की प्राप्ति। इन पुण्यों को पाने के लिये

श्रीराणाराजसिंहोयं सेतोः सत्पदपूरणं।
कर्त्तुं मुहूर्त्तं कृतवान्नवग्रहबलान्वितः ॥३६॥कुलकं॥

भावार्थः—महाराणा राजसिंह ने नव ग्रहों का बल पाकर सेतु की नीव भरने का उक्त मुहूर्त्त निकलवाया।

गरीबदासस्य पुरोहितस्य
ज्येष्ठः कुमारो रणछोडरायः।
महाशिलां पंचसुरत्नपूर्णा-
मादौ दधे तत्र पदस्य पूर्त्यै ॥३७॥

भावार्थः—नीव भरने के लिये प्रारम्भ में पुरोहित गरीबदास के ज्येष्ठ पुत्र रणछोड़ राय ने पांच रत्नों सहित एक बड़ी शिला रखी।

दृढोपलप्रदानेन　सुधापानेन　यत्नतः ।
सेतोः पदस्याजरत्वममरत्वं　कृतं जनैः ॥३८॥

भावार्थः—लोगों ने मजबूत पत्थर लगाकर और चूना पिलाकर बड़ी मेहनत से सेतु की नीव को अजर-अमर बना दिया ।

महासेतोः प्रबंधेस्मिन्महाकार्ये महागजैः ।
सुधाचूर्णं समानीतं परिपूर्णं न चाद्भुतं ॥३९॥

भावार्थः—महासेतु का बांधना एक बड़ा काम था । उसमें बड़े-बड़े हाथी चूने का चूर्ण लाए । यह आश्चर्य करने जैसी बात नही है ।

सर्वतो मुखरूपस्य　जलस्य　मुखमुद्रणं ।
धीरादरकृता युक्तं राजसिंह त्वया कृतं ॥४०॥

भावार्थः—हे राजसिंह ! आप धीर पुरुषों का आदर करने वाले हैं । बहुमुखी जल का मुंह बन्दकर आपने ठीक ही किया ।

छिद्रान्वेषी　जलगण　इह　क्ष्माप　सर्वं हहोद्य-
न्मूर्छिन स्वीयं　दधदतिपदं　दृष्टमात्रं　त्वया तु ।
यत्रै वात्रोचितमिति　शिलाश्रेणिभिः　क्षारचूर्णाऽऽ-
पूर्णाभिर्द्राक्तदतुलमुखोन्मुद्रणं　स्पष्टमेव ॥४१॥

भावार्थः—हे पृथ्वी-पालक ! छिद्रान्वेषी जल जब पृथ्वी पर अपनी मर्यादा का उल्लंघन करते दिखाई दिया तब आपने उचित उपाय ढूंढकर तत्काल खारे चूने में डूबी हुई शिलाओं से उसके विशाल मुख को बन्द कर दिया, जो स्पष्ट ही है ।

नूनं कामोसि राणेंद्र यत्र तत्रोदितच्छलात् ।
शंबरं मुद्रितं तन्वन् युक्तं सेतुप्रबंधकृत् ॥४२॥

भावार्थः—हे महाराणा ! आप सचमुच कामदेव हैं । कामदेव ने जहां छल से शंवर को कैद किया था, वहाँ आपने सेतु बांधकर उसे मूंद दिया ।

कबंधविक्रमजयी वानरव्रजपोषकः ।
रामक्रमाभिरामोसि सेतुं बध्नासि युक्तता ।।४३।।

भावार्थ—हे राजसिंह ! आप राम के चरित्र को निभाने वाले हैं। राम ने कवंध राक्षस के पराक्रम पर विजय पाई और आपने जल को बाँधकर उसके पराक्रम को जीता है। वे वानरों के पोषक थे और आप हैं मनुष्यों के। उन्होंने भी सेतु बांधा था और आप भी सेतु बाँध रहे है। यह ठीक है।

गोत्रेणैकेन चक्रे हरिरमितजलं दूरतः शक्रमुक्तं
सप्ताहं श्रीमता तद्वरुणसमुदितं वारि दूरीकृतं हि ।
आसप्ताब्दं सुगोत्रातुलितभरभृता स्यात्रिलो[क]प्रपूर्त्ति-
स्त्वत्कीर्त्तिः कृष्णकीर्त्तेरपि भवति परा कृष्णभक्तस्य वीर ।।४४।।

भावार्थ—इन्द्र ने दूर से ही अपार जल वरसाया, जिसे कृष्ण ने केवल एक पर्वत को धारण कर दूर किया। लेकिन पृथ्वी के अतुलित भार को धारण कर आप यहां वरण द्वारा प्रवाहित जल को सात वर्षों तक दूर करते रहे। इस कारण, हे वीर ! कृष्णभक्त-आप-की कीर्ति, कृष्ण की कीर्ति से भी बढ़कर है। वह तीनों लोकों में फैले।

श्रीराजसिंहः प्रथमं शरीबंधमकारयत् ।
महासेतोस्ततः पश्चात्सेंभरोबंधनं दृढं ।।४५।।

भावार्थ—राजसिंह ने महासेतु का पहले 'शरीवंध'[1] वँधवाया और इसके वाद सुदृढ़ 'सेंभरोवंध'।[2]

मत्स्याः पांडररक्तपीतरुचयः सेतोस्तु भागे परे
पातालात्किल निर्गताः शुभतरं गर्भोदकं निःसृतं ।
तेनोक्तं त्विह सूत्रधारनिपुणैरंभोत्यगाधं भवे-
द्भूपालाय निवेदितं नरपतिः श्रुत्वा स्मितास्योभवत् ।।४६।।

---

१ शरीवंध=कच्चा बाँध ।
२ सेंभरोबंध = पक्का बाँध ।

भावार्थः—सेतु के अगले भाग में पाताल से सफेद, लाल और पीली मछलियाँ निकलीं तथा अति स्वच्छ भीतरी जल निकला। यह देखकर निपुण सूत्रधारों ने कहा—"यहाँ अति अगाध जल होना चाहिये।

रामो नांभोपसार्य क्षितिशिरसि न वा कारयामास सेतुं
गोत्रैर्द्राग्वानरैर्वाऽदृढ इति धनुषा वानरोमुं[?] बभंज।
दूरीकृत्यांबु पृष्ठे भुव इह सुनरैः सृष्टवान्सूपलैस्त्वं
सच्चूर्णै रामवंश्याधिकदृढ इति ते तत्कृपातोस्ति सेतुः ॥४७॥

भावार्थः—राम ने सेतु का निर्माण करते समय न तो वहाँ से पानी हटवाया और न उसका निर्माण पृथ्वी पर करवाया। उसके बनाने वाले बंदर थे, जिन्होंने उसकी रचना पहाड़ों से तुरंत कर दी। यही कारण है कि वह सुदृढ़ नहीं बन सका तथा उसे बंदर ने [?] धनुष से तोड़ दिया। परन्तु आपने पानी हटवाकर और नीव खुदवाकर इस सेतु का निर्माण करवाया है। इसके निर्माता निपुण लोग थे, जिन्होंने चूने-पत्थर से इसकी रचना की। इस कारण हे राम-कुलोत्पन्न ! आप का यह सेतु अधिक सुदृढ़ है, जो राम की कृपा है।

स्थले जलाशयः सृष्टो जले सेतोः स्थलं त्वया।
कांतारे नगरं सृष्टं वीर ते दैवपूर्णता ॥४८॥

भावार्थः—आपने स्थल पर जलाशय बनाया और जल में सेतु का निर्माणकर स्थल की रचना की। इसके अतिरिक्त जंगल में आपने नगर बसाया। हे वीर ! आप भाग्यशाली हैं।

इति भट्टरणछोडकृते श्रीराजप्रशस्ति महाकाव्ये

नवमः सर्गः।

दशमः सर्गः

[ग्यारहवीं शिला]

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

सुवर्णशैलात्पुरि भात्यमानः
श्रीद्वारकायां घनभासमानः।
चतुर्भुजो राजसमुद्रतीरे
श्रीद्वारकानाथहरिः सुनीरे ॥१॥

भावार्थः—चतुर्भुजधारी घनश्याम द्वारकानाथ हरि निर्मल जल वाले राजसमुद्र के तट पर, सुवर्ण शैल से सुशोभित द्वारका रूपी कांकरोली नगरी में शोभा पा रहे हैं।

आनीतमंभः किल राजमंदिरो-
द्भवे वृषाद्यैर्महिषैर्जनव्रजेः।
सत्कार्यवर्ये बहुशस्तदौचितो
व्याघ्रेण वानीतमिदं तदद्भुतं ॥२॥

भावार्थः—राजमन्दिर के निर्माण के लिये मनुष्य, भैंसे, बैल आदि पानी लाये, यह तो उचित है। लेकिन उस सुन्दर और श्रेष्ठ कार्य के लिये व्याघ्र भी पानी लाया, जो आश्चर्यजनक है।

सुवर्णशैले किल जिष्णुरूपः
श्रीराजसिंहः कृतवान्मनस्वी।
जेतुं जगत्यांमसुरान्स दुर्गं
स्वमंदिरं सुंदरमद्वितीयं ॥३॥

भावार्थः—इन्द्र स्वरूप मनस्वी राजसिंह ने असुरों को जीतने के उद्देश्य से पृथ्वी पर सुवर्ण शैल के ऊपर अपने लिये सुन्दर और अप्रतिम एक दुर्गम राजप्रासाद बनवाया ।

पूर्णे शते सप्तदशे तु मार्गे
वर्षेत्र षड्विंशतिनाम्नि भूपः
पांडौ दशम्यां क्षितिमन्दिरेंद्रः ।
प्रासादमध्ये कृतवान्प्रवेशं ॥४॥

भावार्थः—संवत् १७२६, मार्गशीर्ष शुक्ला दशमी को पृथ्वीपति राजसिंह ने उस राजप्रासाद में प्रवेश किया ।

शते शप्तदशेतीते षड्विंशतिमितेब्दके ।
ऊर्जकृष्णाद्वितीयायां राजसिंहो महीपतिः ॥५॥

भावार्थः—संवत् १७२६, कार्तिक कृष्णा द्वितीया को राजसिंह ने

हेम्नः पलशतै[ः] सृष्टै[ः] पंचकल्पद्रुमैर्युतं ।
हेम्नः पलशतैः सृष्टं महाभूतघटाभिधं ॥६॥

भावार्थः—सौ पल सोने के बने पांच कल्पद्रुम और उनके साथ सौ पल सोने का बना 'महाभूतघट' तथा

हिरण्याश्वरथं रूप्यमुद्रादशशतैः कृतं ।
दत्त्वा महादानयुगमेतद्विप्रानतोषयत् ॥७॥

भावार्थः—एक हजार रुपयों के मूल्य का 'हिरण्याश्वरथ' महादान देकर ब्राह्मणों को सन्तुष्ट किया ।

विप्रेभ्यो राजसिंह प्रभुमुकुट घटः श्रीमहाभूतपूर्वो
दत्तो देवद्रुमाक्तः सकलसुरमयो मेरुरेव त्वयायं ।
तद्देवाः स्थानहीनाः कृतमतय इतो ब्राह्मणेषु प्रविष्टा-
स्ते जाता भूमिदेवा दधति गृहगणे मेरुभोगं त्वदीये ॥८॥

भावार्थः—हे महाराणा राजसिंह ! आपने ब्राह्मणो को कल्पद्रुम सहित और समस्त देवों से युक्त जो 'महाभूतघट' दान दिया है, वह मेरु पर्वत ही है। इस कारण अपने को गृह-विहीन समझकर सभी देवता ब्राह्मणों में प्रविष्ट हो गये हैं और वे उस रूप में आपके मकानों में रहकर मेरु का आनन्द ले रहे हैं।

एकादशसहस्राणि षट् शतानि च सप्ततिः ।
लग्नानि लग्ना रूप्यस्य मुद्राणां दानयोरिह ॥६॥

भावार्थः—इन दो दानो मे ग्यारह हजार छह सौ सत्तर रुपये लगे।

पूर्णे शते सप्तदशेथ वर्षे
चकार पड्विंशतिनाम्नि राधे।
सितत्रयोदश्यभिधेह्नि सेतो-
र्नृपो मुहूर्त्तं पुरि कांकरोल्यां ॥१०॥

भावार्थः—इसके बाद संवत् १७२६, वैशाख शुक्ला त्रयोदशी के दिन कांकरोली में राजसिंह ने सेतु के निर्माण का मुहूर्त्त किया।

ततोत्र खातो रचितः पृथिव्यां
जनैर्विचित्रैः पृथुभिः खनित्रैः।
महाशिलाभिः ससुधाभराभिः
सेतोः पदं पूरितमेव तुंगं ॥११॥

भावार्थः—मनुष्यों ने वहाँ नाना प्रकार के बड़े-बड़े औजारों से नीव खोदी और चूने में भीगी हुई बड़ी-बड़ी शिलाओं से उसे ऊपर तक भर दिया।

पूर्णे शते शप्तदशेय वर्षे
आषाढमासादिक एव जाता।
ज्येष्ठेत्र षड्विंशतिनाम्नि नव्या
जलस्थितिर्वृष्टिभवा तडागे ॥१२॥

भावार्थः—इसके वाद संवत् १७२६ में आषाढ़ से पूर्व ही ज्येष्ठ में वर्षा होने के कारण तड़ाग में नया जल आगया।

वर्षेत्राषाढबहुलपक्षस्मरतिथौ रवौ।
वर्षाष्टकेन वा पंचमासैः षड्भिर्दिनैः कृतं ॥१३॥

भावार्थः—इसी वर्ष आषाढ़ कृष्णा पंचमी रविवार को, आठ वर्ष, पांच माह और छह दिन लगाकर

मुखसेतोस्तु भूपृष्ठं सुधापूर्णं शिलागणैः।
पूरितं भित्तिरूपोच्चं सूत्रधारैर्ध्रुवं कृतं ॥१४॥

भावार्थः—सूत्रधारों ने चूने में डूबी हुई शिलाओं से मुख्य सेतु की नीव को भरकर और भित्ति के रूप में ऊपर उठाकर उसे सुदृढ़ वना दिया।

ईदृक्कालकृतस्यास्य दृष्ट्या सिध्यष्टकं नृणां।
पंचेंद्रियाणां पापांतः षडूर्मिहरणं भवेत् ॥१५॥

भावार्थः—सेतु के निर्माण में इस प्रकार समय लगा है। अतः इसके दर्शन से मनुष्यों को आठों सिद्धियाँ प्राप्त हों, उनकी पंचेन्द्रियों के पाप नष्ट हों और षडूर्मियों का हरण हो।

अस्मिन्महावत्सर एव नव्यं
संस्थापितं यत्तु जलं तडागे।
दूरीकृतं तत्तु समस्तमेवं
जनैश्चतुष्कीकरणे प्रवीणैः ॥१६॥

भावार्थः—इस वर्ष तड़ाग में जो नया जल आया, उसे चतुष्की खोदनेवाले चतुर मनुष्यों ने बाहर निकाल दिया।

आशाचतुष्कागतमानवैर्नवै—
र्नानाचतुष्क्यः खनिता जलाशये।
दृष्ट्या चतुष्कीयुत एष सोद्भुतो
नृणां पुमर्थोच्च चतुष्कदो भवेत् ॥१७॥

भावार्थः—चारों दिशाओं से आये हुए नये-नये लोगों ने जलाशय में अनेक चतुष्कियाँ खोदीं। दर्शन करने पर चतुष्कियों से युक्त यह विस्मयकारक तड़ाग मनुष्यों को चारों प्रकार के पुरुषार्थ प्रदान करे।

ततश्चतुष्कीगणनिःसृतानां
मृदां समूहा मनुजैर्वृषाद्यैः।
सहस्रसंख्यैः सुखतः प्रणीता
मध्यस्य सेतोः परिपूरणाय ॥१८॥

भावार्थः—इसके बाद, सेतु के मध्य भाग को भरने के लिये, लोगों ने हजारों बैल आदि के द्वारा चतुष्कियों से निकली हुई मिट्टी के ढेरों को वहाँ सहज ही पहुँचा दिया।

मृदां गणैः कल्पितपर्वतौघाः
सेतौ विलीनाः क्वच नैव दृश्याः।
यथा पुरा राघवसेतुबंधे
याता विलीनत्वमहो गिरींद्रा ॥१९॥

भावार्थः—प्राचीन काल में राम के सेतुबन्ध में बड़े-बडे पर्वत जिस प्रकार विलीन हो गये, उसी प्रकार इस सेतु में भी मिट्टी के ढेरों के बने पर्वत विलीन हो गये, यहाँ तक कि वे बिलकुल नहीं दिखाई देते हैं।

शते सप्तदशे पूर्णे सप्तविंशतिनामके।
वर्षे स्वजन्मदिवसे हेमहस्तिरथं शुभं ॥२०॥

भावार्थः—संवत् १७२७ में अपने जन्म-दिवस के अवसर पर

हेम्नो विंशत्यग्रदशशततोलकनिर्मितं।
महादानविधानेन राजसिंहनृपो ददौ ॥२१॥

भावार्थः—राजसिंह ने "हेमहस्तिरथ' महादान विधिपूर्वक दिया, जो एक हजार बीस तोले सोने का बना था।

पूर्णे शते सप्तदशे सुवर्षे
सत्सप्तविंशत्यभिधे मुहूर्त्तः।
आषाढमासेऽसितसच्चतुर्थ्यां
नृपेण नौस्थापनकस्य सृष्टः ॥२२॥

भावार्थः—राजसिंह ने नौका-स्थापन का मुहूर्त्त निकलवाया-संवत् १७२७, आषाढ कृष्णा चतुर्थी।

जनैस्तृतीयादिवसे तु नौका—
योग्यं जलं नेति कृते विचारे।
आगामिवर्षे तु बृहस्पतिः स्या—
त्सिंहस्थितस्तत्सुमुहू[र्त्त]एषः ॥२३॥

भावार्थः—उक्त मुहूर्त्त के पूर्व तृतीया के दिन ऐसा सोचने लगे कि वर्त्तमान में नौका तैराने योग्य जल नहीं है। आगामी वर्ष बृहस्पति के सिंहराशि पर रहने से मुहूर्त्त नहीं मिल सकेगा।

नान्योत्र वर्षेस्ति तडाग कार्ये
मुख्यस्तु राणावतरामसिंहः।
तदोक्तवानस्ति हि चोकडीनां
मध्ये जलं क्षेप्यमिहान्यदंभः ॥२४॥

भावार्थः—इस वर्ष नौका तैराने का दूसरा शुभ मुहूर्त्त भी नहीं आता है। तब तडाग के काम में आगे रहने वाला राणावत रामसिंह बोला कि चौकड़ियों[1] में जल भरा हुआ है। उनमें और जल भर कर

नौकामुहूर्त्तोस्तु महापुरोधा
गरीबदासाभिध उक्तवान्वै
अग्रे प्रभोरेष जना विचारं
कुर्वंति राजन्निति वा महांत: ॥२५॥

---

१. चौकड़ी=चतुष्की।

भावार्थः—नौका-मुहूर्त साधा जाय। इसके बाद बड़े पुरोहित गरीबदास ने कहा कि हे राजन्! स्वामी के आगे बड़े-बड़े लोग इस प्रकार विचार कर रहे हैं।

आश्चर्यमेषां मम भाति चित्ते
स्यात्कार्यमासीत्सुखवान्नृपस्ततः ।
श्रुत्वा द्विजान्वारुणसूक्तमंत्रान्
जप्तुं स विद्वानदिशत्पुरो[धाः] ॥२६॥

भावार्थः—इसका मुझे आश्चर्य है। लेकिन मेरा मन कहता है कि यह कार्य तो होगा। पुरोहित के वचन सुनकर राजसिंह को सुख हुआ। विद्वान् पुरोहित ने तब वारुणसूक्त के मन्त्रों का जप करने के लिये ब्राह्मणों को आदेश दिया।

शृंगारपूर्णां प्रविधाय नौकां
मुहूर्तमागामिसुवासरे तु ।
नौकाधिरोहस्य मुदा विधातुं
कृतप्रतिज्ञं नृपराजसिंहं ॥२७॥

भावार्थः—नौका सजाकर राजसिंह ने प्रसन्नता से आगामी शुभ दिन में नौकाधिरोहण का मुहूर्त साधने की प्रतिज्ञा की। उसे इस प्रकार तैयार

समीक्ष्य शक्रोपि सचिंत एवा—
भवत्तदस्मिन्समये मया चेत् ।
क्रियेत वृष्टिर्न तदा ममैव
दोषं वदिष्यंति जनाः समस्ताः ॥२८॥

भावार्थः—देखकर इन्द्र को भी चिन्ता हुई कि यदि मैंने इस समय वृष्टि नहीं की तो समस्त मनुष्य मेरा ही दोष बतलावेंगे।

इन्द्रात्प्रभुत्वं त्विति पद्यपाठं
चित्तेऽवधार्येति ममांश एषः ।
पूर्णास्य कार्येति मया प्रतिज्ञा
रक्ष्या द्विजानामपि सुप्रतिष्ठा ॥२९॥

भावार्थः—उसने सोचा—'इन्द्रात्प्रभुत्वम्' तथा 'यह राजा मेरा ही अंश है' इस बात को ध्यान में रखकर मुझे उसकी प्रतिज्ञा पूरी करने में सहायक होना चाहिये। साथ ही ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा को भी बचाना चाहिये।

ततस्तृतीयादिवसे द्वितीये
यामे ववर्षुर्जलदा मुहूर्त्ते ।
नौकाधिरोहस्य चकार भूपो
मंदाकिनीनौस्थितशक्रतुल्यः ॥३०॥

भावार्थः—इसके बाद तृतीया के दूसरे पहर में वर्षा हुई पृथ्वीपति ने नौकाधिरोहण का मुहूर्त्त किया। उस समय उसकी शोभा आकाश गंगा में नौका पर बैठे हुए इन्द्र के समान थी।

उक्तं जनैः कर्तुमयं यदेव
समुद्यतस्तत्परमेश्वरोऽत्र ।
करोति चाग्रे सफलं सुकार्यं
भविष्यतीत्यस्य तथाभवत्तत् ॥३१॥

भावार्थः—तब लोगों ने कहा कि राजसिंह जिस काम को करने के लिये तैयार होता है, भगवान् उसे आगे होकर पूर्ण करता है। जिस प्रकार इसके सत्कार्य पहले सफल हुए हैं, उसी प्रकार भविष्य में भी होंगे।

पूर्णे शते सप्तदशे सुवर्षेऽ—
ष्टाविंशतिभ्राजितनामधेये ।
राकातिथौ नालविमुद्रणं द्राक्
ज्येष्ठे कृतं सूत्रधरैर्नृपोक्तया ॥३२॥

भावार्थः—संवत् १७२८ के ज्येष्ठ की पूर्णिमा के दिन नृपति की आज्ञा से सूत्रधारों ने नाले को तत्काल मूंद दिया।

शते सप्तदशे पूर्णे एकोनत्रिंशदाह्वये।
वर्षे विधुग्रहे माघे दानं कल्पलतात्मकं ॥३३॥

भावार्थः—संवत् १७२९ के माघ महीने में चन्द्रग्रहण के अवसर पर राजसिंह ने कल्पलता नामक दान

हेम्नः सार्द्धशतद्वंद्वपलैः सृष्टं ददौ तथा।
हेम्नस्त्वशीत्यग्रशततोलकैः परिकल्पितैः ॥३४॥

भावार्थः—दिया, जो दो सौ पचास पल सोने का बना था। इसी प्रकार एक सौ अस्सी तोले सोने के बने

हलैस्तु पंचभिर्युक्तं पंचलांगलनामकं।
भावलीग्रामसंयुक्त महादानं ददौ नृपः ॥३५॥

भावार्थः—पाँच हल और उनके साथ भावली नामका एक गांव रखकर 'पंचलांगल' महादान दिया।

अष्टाविंशत्यग्रदशशततोलकसंमितिः।
हेम्नः समभवद्दिव्यदानयोरनयोरिह ॥३६॥

भावार्थः—इन दो महादानों में एक हजार अट्ठाईस तोले सोना लगा।

पूर्णे शते सप्तदशे सदेको—
नत्रिंशदाख्याब्दसु फाल्गुनेत्र।
कृष्णोत्तमैकादशिकादिने वा
शुभे भवानीगिरिपार्श्वदेशे ॥३७॥

भावार्थः—संवत् १७२९, फाल्गुन कृष्णा एकादशी के दिन, भवानीगिरि के पार्श्व देश में

सत्संगिकार्यस्य तु मुख्य सेतौ
नृपो मुहूर्त्तं कृतवान्कृतींद्रः ।
श्लक्ष्णीकृतैः पांडरवर्ण[युक्तैः]
सुधाधिसिक्तैर्दृढसंधिबंधैः ॥३८॥

भावार्थ.—मुख्य सेतु पर राजसिंह ने संगिकार्य का मुहूर्त्त करवाया। पत्थर वड़े-वड़े, चिकने और सफेद रंग के थे। उनकी जोड़ों में चूना भरकर उन्हें मज़बूत बनाया जाने लगा।

महोपलैः देशलसूत्रधारै—
र्विस्तीर्यमाणे किल संगिकार्ये।
घृतोदये संगिनि कार्यवर्ये
नृपस्य चित्तं सुखसंगि जातं ॥३९॥

भावार्थ—इस प्रकार चतुर सूत्रधारों के काम करते रहने पर वह संगिकार्य पूरा हो गया। उसके पूर्ण होने पर राजसिंह का मन भी सुख से पूर्ण हो गया।

शते सप्तदशेतीते एकोनत्रिंशदाह्वये ।
ज्येष्ठस्य शुक्लसप्तम्यां राजसिंहो महीपतिः ॥४०॥

भावार्थः—संवत् १७२९, ज्येष्ठ शुक्ला सप्तमी को पृथ्वीपति राजसिंह ने

एकलिंगालये त्विंद्रसर आख्ये जलाशये।
ससोपाने जीर्णसेतौ प्रतोलीनां चतुष्टयं ॥४१॥

भावार्थः—एकलिंगजी के मन्दिर के इन्द्रसर नामक जलाशय पर, जिसके सोपान और सेतु जीर्ण हो गये थे, चार प्रतोलियां एवं

व्यधात्सुवप्रं सत्कायं सुशिलागणरंजितं ।
अष्टादशसहस्राणि रूप्यमुद्रावलेरिह ॥४२॥

भावार्थः—पत्थरों की सुन्दर और सुदृढ़ दीवार बनवाई। इस कार्य में अठारह हजार रुपये

लग्नानि राणवीरोक्त्या प्रशस्तिर्निर्मिता मया ।
श्रुत्वा तां स ददावाज्ञां शिलायां लिखनाय मे ।।४३।ः

भावार्थः—व्यय हुए । महाराणा के आदेश से मैंने एक प्रशस्ति की रचना की जिसे सुनकर उसने उसे शिला पर खुदवाने की मुझे आज्ञा दी ।

इति श्रीराजप्रशस्तिनाममहाकाव्ये रणछोडभट्टरचिते
दशम[ः] सर्गः ।।

एकादशः सर्गः

[बारहवीं शिला]

।। श्रीगणेशाय नमः ।।

सेतोर्मितिः पंचशतानि दैर्घ्ये
मुख्यस्य वै पंचदशोत्तराणि ।
तले गजानां च शतानि पंच
सैकान्यशीति प्रमितानि मूर्ध्नि ।।१।।

भावार्थः—मुख्य सेतु की लंबाई नीव में पाँच सौ पन्द्रह और सिरे पर पाँच सौ इक्यासी गज है ।

विस्तरे पंचपंचाशन्मिता निम्नक्षितौ गजाः ।
दशोपर्युदये संति द्वाविंशतिमिताः क्षितौ ।।२।।

भावार्थः—उसकी चौड़ाई नीव में पचपन और सिरे पर दस गज है । ऊँचाई में वह बाईस गज

निम्नायां पंचयुक्त्रिंशदूर्ध्वं तत्र क्रमं वदे ।
भूम्यूर्ध्वमाष्टगजकं पीठमेकोर्ध्वयुग्गजः ।।३।।

भावार्थः—नीव में तथा पैंतीस गज सिरे पर है । इसमें जो क्रम है, वह इस प्रकार है—पृथ्वी के ऊपर आठ गज का पीठ और डेढ गज की

मेखलात्रयमानं त्वासार्द्धद्वादशसद्गजाः ।
त्रिलकत्रयमग्रेय त्रयोदशगजावधि ।।४।।

भावार्थः—तीन मेखलाएँ। इनके ऊपर साढ़े बारह गज के तीन तिलक। इसके बाद तेरह गज के

चत्वारः संगिकार्यस्य स्थरा एकस्थरं प्रति।
सोपाननवकं त्वेवं षट्त्रिंशत्प्रमितिः स्फुटा ॥५॥

भावार्थः—चार स्थर, जहाँसंगि कार्य हुआ है। प्रत्येक स्थर में नौ सोपान हैं। इस प्रकार कुल सोपान छत्तीस हैं।

सोपानानामित्युदये पंचत्रिंशद्गजैर्मितिः।
सप्तपंचाशदित्येवं गजाः सर्वोदयास्थितौ ॥६॥

भावार्थः—ऊँचाई का यह योग पैंतीस गज हुआ और इस प्रकार मुख्य सेतु की संपूर्ण ऊंचाई सत्तावन गज हुई।

त्रयं बुरिजकोष्ठानां कोष्ठे प्रासाददिक्स्थिते।
दैर्घ्येगजास्तु पंचाशन्निर्गमे पंचविंशतिः ॥७॥

भावार्थः—वहाँ तीन बुर्ज़ों वाले कोष्ठ हैं। प्रासाद की ओर बने हुए कोष्ठ की लंबाई पचास और निर्गम पच्चीस गज है।

सत्पंचसप्ततिर्वृत्ते त्रिंशदेवोदये गजाः।
गर्भकोष्ठं लंवतायां पंचसप्ततिका गजाः ॥८॥

भावार्थः—उसका घेरा पचहत्तर और ऊँचाई तीस गज की है। मध्य का कोष्ठ लंबाई में पचहत्तर

सार्द्धसप्ताग्रकत्रिंशन्निर्गमे वृत्तरूपके।
शतं सार्द्धद्वादशकं गजानां च तथोदये ॥९॥

भावार्थः—और निर्गम में साढ़े सैंतीस गज है। उसका घेरा एक सौ साढ़े बारह तथा ऊँचाई

पंचत्रिंशद्गजाः कोष्टं तृतीयं पूर्वकोष्ठवत् ।
पंचचत्वारिंशदग्रशतमानं गजा मृदः ॥१०॥

भावार्थः—पैंतीस गज है। तीसरा कोष्ठ प्रथम कोष्ठ के समान है। मिट्टी के भराव का प्रमाण एक सौ पैंतालीस गज का है।

भृती सेतोस्तु पाश्चात्यभागे प्रोक्तास्ति लंबता ।
गजसप्तशतीमाना विस्तारे निम्नभूतले ॥११॥

भावार्थः—सेतु के पिछले भाग की लंबाई सात सौ गज बताई गई है। नीव में उसकी चौड़ाई

गजा अष्टादशैवोर्द्ध्वं पंचैवमुदये तथा ।
अष्टाविंशतिसंख्यास्तु सर्वा सेतोरियं स्थितिः ॥१२॥

भावार्थः—अठारह और ऊपर पांच गज है तथा ऊंचाई अट्ठाईस गज है। सेतु की संपूर्ण स्थिति इस प्रकार है।

षट्त्रिंशदुद्यन्मितिशोभमाना
सोपानमाला महतो हि सेतोः ।
विभाति कोष्ठत्रितयं तदेत-
द्भूपालंबनकारि नून ॥१३॥

भावार्थः—महा सेतु की सोपान-माला, जिसमें छत्तीस सोपान हैं, सुशोभित है। इसी प्रकार यहाँ ये तीन कोष्ठ शोभा पा रहे हैं, जो भूपालों को सुरक्षा एवं आश्रय देने वाले हैं।

धर्माम्बुधौ तत्र महास्मृतीना—
मुपस्मृतीनां विदधत्सुसंगं ।
वेदत्रयं चात्र करोति वासं
कलिप्लुतां म्लेच्छभुवं विमुच्य ॥१४॥

भावार्थः—'धर्मसिन्धु' में महास्मृतियो और उपस्मृतियों के साथ तीन वेद विद्यमान हैं। धर्म के इस सिन्धु राजसमुद्र पर भी तीन वेद [चबूतरे] सुशोभित हैं, जो मानों म्लेच्छों से कलुपित हुई पृथ्वी को छोड़कर यहाँ आ गये हैं।

राजमंदिरदिश्यस्ति स्थानं तु चतुरस्रकं।
सेतौ तत्राथर्वणाख्यो वेदस्तिष्ठति मंत्रवान् ॥१५॥

भावार्थः—राजमन्दिर की दिशा में सेतु पर जो चौकोर स्थान है, वहां मन्त्र-युक्त अथर्वण नामक चतुर्थ वेद [चबूतरा] विद्यमान है।

जलहट्टमयं तत्र शोभतेत्रारहट्टकं।
तद्राजमन्दिराख्येस्मिन्दुर्गे वाप्यां जलार्थकं ॥१६॥

भावार्थः—यहाँ प्रचुर जल बहानेवाला एक रँहट है, जिससे 'राजमन्दिर' दुर्ग की वापी में जल पहुंचाया जाता है।

आस्ते नवचतुष्कीयुङ्मडपं त्वत्र सुंदरं।
जलदर्शिगवाक्षात्तमतिचित्रकरं नृणां ॥१७॥

भावार्थः—यहाँ नौ चौकियों वाला एक सुन्दर मंडप है। उसमें एक गवाक्ष है, जिससे राजसमुद्र का जल देखा जाता है। वह मनुष्यों को विस्मय में डालता है।

महासेतौ संगिकार्यवर्ये विजयते परं।
युक्तं नवचतुष्कीभी राजमंडपयुग्मकं ॥१८॥

भावार्थः—महासेतु पर, जहाँ सुन्दर संगिकार्य हुआ है, नौ चौकियों वाले दो राजमंडप हैं। वे अति उत्कृष्ट हैं।

नवखंडस्थलोकानां दर्शनाच्चित्रकारकं।
षट्चतुष्कीविलसितमेकं वा भाति मंडपं ॥१९॥

भावार्थः—उन्हें देखकर नवों खडो के लोग आश्चर्य करते हैं। वहां एक मंडप छह चौकियों वाला भी है।

पश्चाद्भागे महासेतोर्मंडपत्रितयं तथा।
सभामंडपमेकं हि महासेतोरियं स्थितिः ॥२०॥

भावार्थः—महासेतु के पिछले भाग में तीन मंडप और एक सभामंडप है। महासेतु का यह स्वरूप है।

निंवसेतुप्रमाणं तु वक्ष्मामि क्षितिपाल ते।
दैर्घ्ये गजानां द्वात्रिंशदग्रं शतचतुष्टयं ॥२१॥

भावार्थः—हे पृथ्वीपति! अब मैं आपको निंवसेतु का प्रमाण बताता हूं। लंबाई में वह चार सौ बत्तीस गज है।

विस्तारे पंचदशवे निम्नभूमौ गजास्तथा।
पंचोर्द्ध्वमुदये चैत्रं दशाथो भद्रसेतुके ॥२२॥

भावार्थः—नीव में उसकी चौड़ाई पन्द्रह गज और सिरे पर पाँच गज है। ऊँचाई में वह दश गज है। इसके बाद भद्रसेतु की

चतुश्चत्वारिंशदग्रं गजानां दैर्घ्यतः शतं।
विस्तारे द्वादश गजास्तले पंचैव मस्तके ॥२३॥

भावार्थः—लंबाई एक सो चौवालीस गज है। नीव में उसकी चौड़ाई बारह तथा सिरे पर पाँच गज है।

त्रयोदशोदये भद्रं सुभद्रं चतुरस्रकं।
कोष्ठकं विंशतिगजा मृद्भृताविति सस्थितिः ॥२४॥

भावार्थः—भद्रसेतु ऊँचाई में तेरह गज है, वहाँ चौकोर सुन्दर कोष्ठ है, जिसमे बीस गज मिट्टी का भराव है। भद्रसेतु की यह स्थिति है।

कांकरोली ग्रामसेतौ दैर्घ्ये निम्नधरातले।
पंचाशद्युक्पंचशती गजानां मूर्द्धिन सप्त वै ॥२५॥

भावार्थः—कांकरोली के सेतु की लंबाई नीव में पांच सौ पचास और सिरे पर सात

शतानि षट्पंचाशच्च पंचत्रिंशच्च विस्तरे।
निम्नभूमौ सप्त गजा मस्तके तूदये तथा ॥२६॥

भावार्थः -सौ छप्पन गज है। उसकी चौड़ाई नीव में पैंतीस और सिरे पर सात गज है। उसकी ऊँचाई

निम्नभूमौ सप्तदश गजा उपरि वा भुवः।
गजा अष्टत्रिंशदेव कोष्ठकत्रितयं त्विह ॥२७॥

भावार्थः—नीव में सत्रह और पृथ्वी के ऊपर अड़तीस गज है। यहाँ तीन कोष्ठ है।

सभामंडपदिक्संस्थकोष्ठेऽष्टाविंशतिर्गजाः।
विस्तारे निर्गमे माने चतुर्दश तथोदये ॥२८॥

भावार्थः—सभामंडप की ओर बना हुआ कोष्ठ चौड़ाई में अट्ठाईस तथा निर्गम में चौदह गज है। उसकी ऊँचाई

सार्द्धषट्त्रिंशदेवाथ सुभद्रे मध्यकोष्ठके।
षटत्रिंशद्विस्तरे पंचदश निर्गमने गजाः ॥२९॥

भावार्थः—साढ़े छत्तीस गज है। इसके बाद मध्य के कोष्ठ की चौड़ाई छत्तीस और निर्गम पन्द्रह गज है।

उदयेष्टत्रिंशदेव तृतीये पूर्वदिक्स्थिते।
कोष्ठेऽष्टाविंशतिर्माने विस्तारे निर्गमे गजाः ॥३०॥

भावार्थः—उसकी ऊँचाई अड़तीस गज है। पूर्व की ओर बने कोष्ठ की चौड़ाई अट्ठाईस और निर्गम

द्वादशैवोदये सप्तत्रिंशदेव मृदो भृतौ ।
पंचचत्वारिंशदग्रं गजानां शतकं ततः ॥३१॥

भावार्थः—बारह गज है। उसकी ऊंचाई सैंतीस गज है। मिट्टी का भराव एक सौ पैंतालीस गज है।

पाश्चात्यभागे सेतोस्तु गजानां तु सहस्रकं ।
दैर्घ्ये विस्तारतः पंचदश निम्नक्षितौ गजाः ॥३२॥

भावार्थः—सेतु के पीछे के भाग की लंबाई एक हजार गज है उसकी चौड़ाई नीव में पन्द्रह और

दश मूर्द्धन्युदये त्वद्य द्वाविंशतिमिता गजाः ।
अत्रोदयस्तु भवति अष्टत्रिंशद्गजावधि ॥३३॥

भावार्थः—सिरे पर दस गज है। ऊंचाई में वह आज बाईस है। वैसे उसकी ऊंचाई अड़तीस गज होती है।

अयोध्यारेणुकाक्षेत्रव्रजेभ्यो म्लेच्छभीतितः ।
भात्यागत्याध्यात्मरूपैस्त्रिरामी कोष्ठकत्रये ॥३४॥

भावार्थः—म्लेच्छों के भय के कारण, अयोध्या, रेणुका और ब्रज से आकर तीनों राम [राम; परशुराम और बलराम] अध्यात्म रूप से इन तीनों कोष्ठों में निवास करते हैं।

भृतौ जीर्णेशनिलयमागतं स्थापितं हि तत् ।
मार्गोस्य स्थापितस्तस्य दर्शनं जायते सदा ॥३५॥

भावार्थः—भराव में एक प्राचीन शिव मन्दिर आ गया। उसकी स्थापना की गई और उसके लिये मार्ग बनाया गया। उसके दर्शन हमेशा होते हैं।

रामसेतौ यथा भाति [श्री] रामेश्वरमंदिरं ।
तत्तुल्यं कांकरोलीस्थसेतौ भाति शिवालयः ॥३६॥

भावार्थः—राम के सेतु पर जिस प्रकार रामेश्वर का मन्दिर सुशोभित है, उसी प्रकार, कांकरोली के सेतु पर यह शिवालय।

कांकरोलीस्थसेत्वग्रभागे वा मंडपस्त्रयः।
चतुःस्तंभा विशोभंते सभामंडप एककः ।।३७।।

भावार्थः—कांकरोली के सेतु के अगले भाग पर तीन मंडप हैं, जिनमें चार-चार स्तम्भ हैं। वहाँ एक सभामंडप भी है।

कांकरोलीस्फुरत्सेतोरग्रे तूपरि भूभृतः।
शिलाकार्यं कृतं तत्र दैर्घ्ये गजशतत्रयं ।।३८।।

भावार्थः—कांकरोली के सुन्दर सेतु के आगे जो पर्वत है, उसपर पत्थर जड़े गये हैं। वहाँ उसकी लंबाई तीन सौ गज है।

विस्तारोदययोः पंच गजाः पंचाघनाशकः।
गोघट्टपार्श्वे दैर्घ्येत्र चतुःपंचाशदुत्तमाः ।।३९।।

भावार्थः—उसकी चौड़ाई और ऊँचाई पाँच गज है। वह पाँच प्रकार के पापों का नाशकरनेवाला है। गोघाट के पार्श्व में उसकी लंबाई चौवन गज

गजा दशैव विस्तारे उदये तु त्रयो गजा।
गोघट्टस्य गजा दैर्घ्ये चतुःपंचाशदेव तु [।। ४० ।।]

भावार्थः—और चौड़ाई दस गज है। ऊँचाई में वह तीन गज है। गोघाट की लंबाई चौवन गज है।

चतुःपंचाशदेवात्र विस्तारे घट्टभूतले।
उदये तु गजाः पंच भात्येकमिह मंडपं ।।४१।।

भावार्थः—उसकी चौड़ाई भी चौवन गज है। नीव में उसकी ऊँचाई पाँच गज है। वहाँ एक मंडप सुशोभित है।

आ[सो]टियाग्रामपार्श्वे सेतोर्दैर्घ्ये गजावलेः ।
द्वे सहस्रे ष्टऽषष्टिश्च विस्तारेष्टादश स्फुटं ।।४२।।

भावार्थः—आसोटिया गांव के पास जो सेतु है, उसकी लंबाई दो हजार अड़सठ गज है। उसकी चौड़ाई

तले मून्द्धि न गजाः सप्त चतुर्विंशति सद्गजाः ।
उदये कोष्ठकद्वंद्वमत्राष्टास्रमथैककं ।।४३।।

भावार्थः—नीव में अठारह और सिरे पर सात गज है। ऊँचाई में वह चौबीस गज है। यहां दो कोष्ठ हैं। उनमें से पहला कोष्ठ अष्टकोण है।

गजा अष्टाविंशतिस्तु तत्र दैर्घ्येथ निर्गमे ।
चतुर्दशोदये संति चतुर्विंशतिसद्गजाः ।।४४।।

भावार्थ—वह लंबाई में अट्ठाईस, निर्गम में चौदह और ऊँचाई में चौवीस गज है।

सप्तांगस्यापि राज्यस्य धर्मस्यात्रास्ति सुस्थितिः ।
राणराज्ये ज्ञापकाष्टरेखाक्तं किमु कोष्ठकं ।।४५।।

भावार्थः—महाराणा के राज्य में राज्य के सातों अंगों की तथा धर्म की अच्छी स्थिति है। मानों इस बात का सूचक आठ रेखाओं से युक्त यह कोष्ठ है।

द्वितीयमर्द्धचंद्राख्यं दैर्घ्ये विंशतिसद्गजाः ।
विस्तारे दश संत्यत्र द्वादशैवोदये गजाः ।।४६।।

भावार्थः—दूसरे कोष्ठ का नाम अर्द्धचन्द्र है। उसकी लंबाई बीस और चौडाई दस गज है। ऊँचाई में वह बारह गज है।

अर्द्धचंद्रधरश्रीमद्रुद्रक्रीडास्थलं हि तत्
पंचचत्वारिंशदग्रशतमाना मृदो भृतौ [।।४७।।]

भावार्थः—वह कोष्ठ अर्द्धचन्द्र को धारण करनेवाला, शिव की क्रीड़ा का स्थान है। मिट्टी के भराव का प्रमाण एक सौ पैंतालीस

गजाः पाश्चात्यभागे तु सेतोर्दैर्घ्ये त्रयोदश ।
शतान्येव गजानां तु निम्नभूमौ तथोपरि ॥४८॥

भावार्थः—गज है । पिछले भाग में सेतु की लंबाई नीव में तेरह सौ गज है । इसी प्रकार सिरे पर

गजा दशैव विस्तारे उदये पंच वा गजाः ।
आसोटियास्थसेत्वग्रभागे सन्मंडपत्रयं [॥४९॥]

भावार्थ.—उसकी चौड़ाई दस और ऊँचाई पाँच गज हैं । आसोटिया के सेतु के अग्र भाग पर तीन मंडप हैं ।

वाँसोलग्रामपार्श्वस्थसेतौ दैर्घ्ये गजावलेः ।
चतुर्विंशतिसंयुक्तसुद्वादशशतानि हि ॥५०॥

भावार्थः—बांसोल गाँव के पास बने सेतु की लवाई बारह सौ चौबीस गज है ।

विस्तारेऽष्टादशगजास्तले पंचैव मस्तके ।
त्रयादशोदये कोष्ठत्रयमाद्यंत्र कोणगे ॥५१॥

भावार्थः—उसकी चौड़ाई नीव मे अठारह और ऊपर पाँच गज है । ऊँचाई मे वह तेरह गज है । यहाँ तीन कोष्ठ है । कोण में स्थित पहले कोष्ठ की

गजा विंशतिरेवात्र दैर्घ्यविस्तारयोः समाः ।
द्वादशैवोदये त्वेतच्चतुरस्रं सुभद्रकं ॥५२॥

भावार्थ.—लंबाई और चौड़ाई बीस-बीस गज है । ऊँचाई में वह बारह गज है । यह चौकोर और सुन्दर है ।

सुभद्रद साऽरहट्टं सारहट्टं तदौचिती ।
मध्यकोष्ठे द्वादशैव दैर्घ्यनिर्गमयोर्गजाः ॥५३॥

भावार्थः—वहाँ लाभकर एक रँहट है । वह निरन्तर जल देता रहता है । मध्य के कोष्ठ की लंबाई और निर्गम बारह गज है ।

उदये सप्तदश वा अर्द्धचंद्राकृति त्विदं।
यद्दर्शनादर्द्धचंद्रप्राप्तिदुःखं द्विषां गले ॥५४॥

भावार्थः—ऊँचाई सत्रह गज है। वह अर्द्धचन्द्राकार है। इसके दर्शन से शत्रुओं के गले में गलहस्त का सा दु.ख होता है।

अष्टास्रकोष्ठं कमलबुरिजाह्वयमत्र तु।
दैर्घ्यविस्तारयोस्त्रिंशद्‌गजा नव तत्रोदये ॥५५॥

भावार्थः—इनमें तीसरा कोष्ठ अष्टकोण है। उसका नाम कमलबुरिज है। लंबाई और चौड़ाई में वह तीस गज है। उसकी ऊँचाई नौ गज है।

अत्रोज्ज्वलोपललसन्मंडपं सेतुमंडनं।
इष्टाष्टपुत्रिकासृष्टक्रीडाहृष्टिमनोहरं ॥५६॥

भावार्थः—यहां एक सुन्दर मंडप है, जो सफेद पत्थर का बना है। वह सेतु का अलंकार है। उसमें क्रीड़ा करती हुईं जो सुन्दर आठ पुत्तलिकाएँ हैं, वे दृष्टि और मन को हरनेवाली हैं।

मत्वा[?]रा[ज] समुद्रं हि रत्नाकरमिहांबुनि।
स्थित्वाष्टपट्टराज्ञीस्ताः पश्यन् किं रमते हरिः ॥५७॥

भावार्थः—राजसमुद्र को रत्नाकर समझकर मानों वे पुत्तलिका रूपी आठ पट-रानियाँ यहाँ जल मे निवास कर रही हैं।

अत्र सेतोरग्रभागे राजते मंडपत्रयं।
इति राजसमुद्रस्य वीरेंद्रोक्ता मया स्थितिः ॥५८॥

भावार्थः—इस सेतु के अगले भाग में तीन मंडप सुशोभित हैं। हे वीरशिरोमणि राजसिंह! इस प्रकार मैंने राजसमुद्र की स्थिति का वर्णन किया है।

इति श्रीराजप्रशस्तौ भट्टरणछोडविरचितायां

एकादशः सर्गः ॥११॥

द्वादशः सर्गः

[तेरहवीं शिला]

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

ओटा त्वेकात्र लंवत्वे सार्द्धद्विशतसंमिताः ।
गज दश च विस्तारे सार्द्धैकसुगजोदया ॥१॥

भावार्थः—यहां पहली ओटा[1] की लंवाई दो सौ पचास गज है । चौड़ाई दस गज है । ऊंचाई में वह डेढ़ गज है ।

ओटा द्वितीया विस्तारे दैर्घ्ये पूर्वसमोदये ।
सार्द्धद्विगजमानास्ति तृतीयौटा तु दैर्घ्यतः ॥२॥

भावार्थः—दूसरी ओटा की लंवाई और चौड़ई पहली ओटा के समान है । ऊंचाई में वह ढाई गज है । तीसरी ओटा की लंवाई

गजत्रिशतमानास्ति विस्तरेत्र गजा दश ।
उदये सगजद्वंद्वा मंडपत्रयमत्र हि ॥३॥

भावार्थः—तीन सौ गज है । चौड़ाई दस गज है । ऊंचाई में वह दो गज है । यहां तीन मंडप हैं ।

ओटात्रयमिदं भाति यावद्गजसुविस्तरं ।
तावद्ग्रामगणं नीरैः पूर्णं वितनुते ध्रुवं ॥४॥

---

१ ओटा=जलाशय का वह निर्धारित स्थान जिधर से जलाशय के निश्चित सीमा से अधिक पानी को बाहर निकाला जाता है ।-परिवाह, पाबर, दीवार

भावार्थः—तीनो ओटाएं वहां तक अपनी सपूर्ण चौड़ाई से बहती रहती हैं, जहाँ से गाँवों मे पानी लेजाया जाता है।

मोर्चणाग्रामसीम्न्यस्ति तटाकेंतर्लघुर्गिरिः।
श्रृंगेस्य मडपो दृष्ट्या पश्चिमेर्थदमप्पतेः ॥५॥

भावार्थः— मोरचणा गाँव की सीमा मे, पश्चिम मे, तड़ाग के अन्दर जो पहाड़ो है, उसकी चोटी पर एक मडप है। दर्शन करने पर वह वरुण द्वारा मिलने वाले मनोरथ को पूर्ण करता है।

षट्स्तंभो मडपोस्त्यत्र गोष्ठीं पल्यंकसेवकाः।
कुर्वंति मडपास्तत्रेत्येक विंशतिमडपाः ॥६॥

भावार्थः—यहाँ छह स्तम्भो का एक मडप है। उसमे पयल्कसेवी सुरापी गोठ करते हैं। इस प्रकार ये इक्कीस मडप हुए।

ग्रामास्तडागेत्रायाताः सिवाली च भिंगावदो।
भाणो लुहाणो वांसोल गुढलीत्यखिला इमे ॥७॥

भावार्थः—सिवाली, भिगावदा, भाना, लुहान, वाँसोल और गुढली ये गाँव इस तड़ाग में सपूर्ण रूप से डूब गये हैं।

मोर्चना च पसोंदश्च खेडी छापरखेडिका।
तासोल एषां ग्रामाणां सीमा मंडावरस्य च ॥८॥

भावार्थः—मोरचणा, पसूंद, खेड़ी, छापरखेड़ी और तासोल इन गाँवों की तथा मंडावर की सीमा

तडागेत्रागता नद्यो गोमती तालनामयुक्।
कैलवास्थनंदी सिंधौ गंगाद्या विवशुर्यथा ॥९॥

भावार्थः—इस सरोवर में डूबी है। जिस प्रकार गंगा आदि नदियाँ समुद्र में गिरी हैं, उसी प्रकार राजसमुद्र में गोमती, ताल तथा केलवा की नदी।

कांकरोलीलुहाणाख्यसिवालीनां जलाशयाः ।
निपानवापीकूपाश्च त्रिशत्संख्या इहागताः ॥१०॥

भावार्थः—कांकरोली, लुहान और सिवाली के जलाशय, निवान, वापी एवं कूप, जिनकी संख्या तीस है, इस सरोवर में डूब गये हैं।

सर्वसेतुमितिर्दैर्घ्ये चतुःषष्टि शतानि च ।
त्रयोदशाग्राणि तथा गजानामपरं वदे ॥११॥

भावार्थः—संपूर्ण सेतु की लंबाई छह हजार चार सौ तेरह गज है। दूसरा प्रमाण इस प्रकार हैः—

श्रीराजसिंहनृपतेरग्रे गजधरैः कृता ।
गालायोगेन दैर्घ्येष्टसहस्राणि गजावलेः ॥१२॥

भावार्थः—नृपति राजसिंह के आगे गजधरों ने इस सेतु की लंबाई को गाला-योग से आठ हजार गज सिद्ध किया है।

विश्वकर्मोक्तवानेवं तडागानां तु लंबता ।
कर्तव्या षट्सहस्रोद्यद्गजमानावधिः परा ॥१३॥

भावार्थः—विश्वकर्मा ने तो बताया है कि तड़ागों की सर्वाधिक लंबाई छह हजार गज होनी चाहिये।

तावत्संख्यामितं कोपि तडागं कृतवान्न वा ।
त्वया सप्तसहस्रोद्यद्गजलंबो जलाशयः ॥१४॥

भावार्थः—हे राजसिंह ! उतने लम्बे तड़ाग का निर्माण किसी ने करवाया अथवा नहीं, पर आपने तो यह सात हजार गज लंबा जलाशय बनवाया है।

सेतुं कृत्वा विरचितो धर्मसेतुर्धरापते ।
श्रीरामसेतुप्रतिमः कीर्त्तिसेतुः प्रभाति ते ॥१५॥

भावार्थः—हे पृथ्वीपति ! इस सेतु का निर्माण कर आपने धर्म का सेतु बना दिया है। रामचन्द्र के सेतु के समान यह आपकी कीर्त्ति का सेतु है।

कोष्ठानि द्वादशात्र तद्दृष्ट्या नृणां फलं भवेत् ।
पाठस्य द्वादशस्कंधयुक्तभागवतस्य सत् ॥१६॥

भावार्थ.—यहां बारह कोष्ठ हैं। उनके दर्शन से लोगों को द्वादश स्कंधों वाली भागवत के पाठ का उत्तम फल प्राप्त हो।

एकविंशतिसंख्यानि मंडपानि तदीक्षणात् ।
एकविंशतिदुःखानामभावो भविनां भवेत् ॥१७॥

भावार्थः—यहाँ इक्कीस मंडप हैं। उनके दर्शन से प्राणी इक्कीस प्रकार के दुःखों से मुक्त हों।

चत्वारिंशदथाष्टयुक् समभवन्सेतौ महामंडपा-
स्तेष्वादौ बहुमूल्यवस्त्ररचिताः सद्दारुसृष्टास्ततः ।
पाषाणैः ससुधाभरैर्विरचिताः केचित्तु तेषु स्थितः
स्वाज्ञां कार्यकृते दिशन्विजयते श्रीराजसिंहो नृपः ॥१८॥

भावार्थः—सेतु पर अड़तालीस बड़े-बड़े मंडप बने थे। उनमें से कुछ का निर्माण तो सर्वप्रथम बहुमूल्य वस्त्र से हुआ। कुछ उत्तम काठ के बने। इसके बाद कई मंडपों का निर्माण चूने-पत्थर से हुआ, जिनमें रहकर नृपति राजसिंह काम-काज के संबंध में आज्ञा देता रहा।

वस्त्रकाष्ठाश्मसृष्टाष्टचत्वारिंशन्मितेषु हि ।
मंडपेष्ववशिष्टौ द्वौ शिलाकल्पितमंडपौ ॥१९॥

भावार्थः—वस्त्र, काष्ठ एवं पाषाण के बने उन अड़तालीस मंडपों में से दो मंडप शेष रहे, जो पत्थर के बने हैं।

तद्दर्शनकराणां स्याद्धनधान्यसुखं ध्रुवं ।
इति राजसमुद्रस्य प्रोक्ता सर्वा स्थितिर्मया ॥२०॥

भावार्थः—इन मंडपों का जो लोग दर्शन करेंगे, उन्हें धन-धान्य का चिर सुख प्राप्त होगा। यह मैंने राजसमुद्र की संपूर्ण स्थिति बताई है।

श्रीराणोदयसिंहेंद्रः स्थानेस्मिन्कृतवान्पुरा।
सेतुं बद्धुं महायत्नं निष्फलं तदभूदिह ॥२१॥

भावार्थः—इस स्थान पर पहले महाराणा उदयसिंह ने सेतु बाँधने का महान् प्रयत्न किया था। पर वह सफल नहीं हुआ।

ततो जलाशयं चक्रे श्रीमानुदयसागरं।
तत्राकरोत्सेतुबंधं संबंधं धर्मपद्धतेः ॥२२॥

भावार्थः—तत्पश्चात् उसने उदयसागर का निर्माण करवाया। वहाँ उसने सेतु बंधवाया, जो धर्म-पथ को जोड़नेवाला है।

अस्मिन्स्थले राजसिंहो राणेंद्रो राजराजवत्।
धनव्ययं वितन्वानः सेतुं चक्रे तदद्भुतं ॥२३॥

भावार्थः—इस जगह महाराणा राजसिंह ने कुबेर की तरह धन का व्यय कर सेतु का निर्माण करवाया, जो आश्चर्यजनक है।

सेतोस्तु कर्त्ता रघुवंशकेतू
रामश्च राणोदयसिंहदेवः।
श्रीराजसिंहो नृपतिस्तथैव-
मन्यो न भूतो भविता न नास्ति ॥२४॥

भावार्थः—रघु-वंश केतु रामचन्द्र, महाराणा उदयसिंह और नृपति राजसिंह सेतु के निर्माता हुए हैं। इसी प्रकार का कोई दूसरा व्यक्ति न तो हुआ, न है और न होगा।

पूर्णे शते सप्तदशे सुवर्षे
त्रिंशन्मिते भाद्र इहागता द्राक्।
वेतालसूत्तालजवाथ ताल-
नाम्नी नदी तालगभीरनीरा ॥२५॥

भावार्थः—इसके वाद संवत् १७३० के भाद्रपद महीने में, अगाध जल से पूरित होकर 'ताल' नामक नदी वायु के समान प्रचंड वेग से यहाँ अचानक आई और

संप्लावितं नीरभरैः पुरं द्राक्
तया गृहाण्यत्र विनाशितानि।
चकार बंधं नृपतिस्तदास्या
न्यायेन युक्तं भुवि नीचगेयं ॥२६॥

भावार्थः—तत्काल उसने यहाँ के मकानों को जल-मग्न कर नष्ट कर दिया। पृथ्वीपर नदी नीचगामिनी कहलाती है। इस कारण राजसिंह ने इसे जो बाँधा है, वह न्याय-संगत है।

तथात्र वर्षे त्विष आगता द्राक्
निशीथकालेभिनवे तडागे।
श्रीगोमतीधन्यनदी जलं वा
बभूव हस्ताष्टकमात्रमुच्चं ॥२७॥

भावार्थः—इसी वर्ष आश्विन में, आधी रात में अचानक गोमती नदी आई, जिससे इस नवीन तड़ाग में केवल आठ हाथ पानी चढ़ा।

तद्रक्षितं राणनृपेण गंगा-
स्पर्द्धाकरीयं भुवि वर्द्धमाना।
श्रीगंगया सार्द्धमहो तुलार्थं
झंपाग्रहाब्धौ न्यपतत्तडागे ॥२८॥

भावार्थः—महराणा ने उस जल को राजसमुद्र में रखा। पृथ्वी पर बढ़ती हुई यह गोमती नदी गंगा से स्पर्द्धा करनेवाली है। उछलकर वह गंगा की समता पाने के लिये तड़ाग रूपी सागर में गिरी।

शते सप्तदशेतीते त्रिंशदाख्याब्दमाघके ।
पूर्णिमायां हिरण्यस्य पलपंचशतैः कृतां ।।२६।।

भावार्थः—संवत् १७३० में माघ महीने की पूर्णिमा को, पांच सौ पल सोने का बना।

ददौ सुवर्णपृथिवीमहादानं विधानतः।
श्रीराणाराजसिंहाख्यः पृथ्वीनाथो महामनाः ।।३०।।

भावार्थः—'सुवर्णपृथ्वी' महादान, महामना पृथ्वीपति राजसिंह ने, विधिपूर्वक दिया।

अष्टाविंशतिसंख्यानि रूप्यमुद्रावलेरिह ।
सहस्राणि विलग्नानि महादानस्य भूपतेः ।।३१।।

भावार्थः—राजसिंह ने जो यह महादान दिया, उसमें अट्ठाईस हजार रूपये लगे।

दत्तायां कनकक्षितौ तु भवता विप्रेभ्य एषां गृहे
रुद्रं भिक्षुमवेक्ष्य भिक्षुकगणो दिग्दतिनामष्टकं।
हिंस्रो जंतुचयश्च विष्णुगरुडं नागव्रजो वेधसं
भूतौघो मघवंतमेवमहितो दूरं प्रयाति द्रुतं ।।३२।।

भावार्थः—हे राजसिंह! जिन ब्राह्मणों को आपने 'सुवर्णपृथ्वी' महादान दिया, उनके घरों में अब ['सुवर्णपृथ्वी' दान में प्राप्त मूर्तियों के रूप में] भिक्षुक वेशधारी शिव, आठ दिग्गज, विष्णु का गरुड़, ब्रह्मा और इन्द्र रहने लगे हैं, जिन्हें देखकर क्रमशः भिखारी, घातक जन्तु, सर्प, भूत तथा शत्रु वहां से तत्काल दूर भाग जाते हैं।

दत्तायां कनकक्षितौ तु भवता विप्रेभ्य एषां गृहे
श्रीराणामणिराजसिंह सकल दुःखं प्रनष्टं ध्रुवं।
वह्नेः शीतभवं तमोभवमिनान्मालिन्यज चाप्पते—
श्चंद्राद्ग्रीष्मभवं रजोजमनिलाच्चेंद्राच्च दुर्भिक्षजं ॥३३॥

भावार्थः—['सुवर्णपृथ्वी' महादान में अग्नि, सूर्य, वरुण आदि देवताओं की मूर्तियां भी होती हैं। कवि उन्हें ध्यान मे रखकर कहता है।] हे महाराणा! ब्राह्मणों को 'सुवर्णपृथ्वी' दान देकर आपने अग्नि सूर्य, वरुण, चन्द्र, वायु और इन्द्र के द्वारा, उन ब्राह्मणों के घरों में क्रमशः शीत, अँधकार मालिन्य, ग्रीष्म, धूल और दुर्भिक्ष से उत्पन्न होने वाले सभी दुःखों को सदा के लिये नष्ट कर दिया है।

दत्तायां हेमपृथ्व्यां प्रभुवर भवताराद्विजेभ्यस्तु सर्वं
कार्यं कुर्वन्त्यगर्वा निखिलसुखकृते तद्गृहे राजसिंह।
गोविंदोदुग्धदोग्धा पशुपतिरपि वा रक्षकः सत्पशूनां
जीवो वालप्रपाठी रिपुगणविजये षण्मुखः संमुखोभूत् ॥३४॥

भावार्थः—हे स्वामिश्रेष्ठ राजसिंह! आपने जिन ब्राह्मणों को 'सुवर्णपृथ्वी' महादान दिया, उनके घरो में अब देवता लोग ['सुवर्णपृथ्वी' दान मे प्राप्त देव मूर्तियां] गर्व रहित होकर सारा काम करते हैं, ताकि उन ब्राह्मणों को संपूर्ण सुख मिले। जैसे—गोविन्द दूध दुहता है। शिव पशुओं की रखवाला करता है। बृहस्पति बालकों को पढ़ाता है। इसी प्रकार शत्रुओं पर विजय पाने के लिये षडानन आगे जा पहुंचता है।

पूर्णेशते सप्तदशेब्द एक—
त्रिंशन्मिते श्रावणशुक्लपक्षे।
सुपंचमीदिव्यदिने तडागे
जहाजसंज्ञा विदधुः सुनौकाः ॥३५॥

भावार्थः—संवत् १७३१, श्रावण शुक्ला पंचमी के दिन सरोवर में बड़ी-बड़ी नौकाएँ,

लाहोरसद्गुर्जरसूरतिस्थाः
सत्सूत्रधारा वरुणस्य मन्ये ।
सभाद्वितीये जलधौ तु सेतुं
द्रष्टुं सुहार्देन समागतास्य ।।३६।।

भावार्थः—लाहोर, गुजरात और सूरत के सूत्रधारों ने तैराईं । तब ऐसा दिखाई दिया, मानों इस निरुपम समुद्र पर बने सेतु को देखने के लिये, राजसिंह की मित्रता के कारण वरुण की सभा आई हो ।

शते सप्तदशेतीत एकत्रिंशन्मितेब्दके ।
स्वजन्मदिवसे हेमपलपंचशतैः कृतं ।।३७।।

भावार्थः—संवत् १७३१ में अपने जन्म-दिवस पर पांच सौ पल सोने का बना

विश्वचक्रं महादानं विधिनादाच्च शक्रवत् ।
भूचक्रे राजसिंहोस्ति विश्वचक्रेस्य तद्यशः ।।३८।।

भावार्थः—'विश्वचक्र' महादान, इन्द्र के समान राजसिंह ने, विधिपूर्वक दिया । राजसिंह भू-चक्र में विद्यमान है, पर उसका यश विश्व-चक्र में व्याप्त है ।

दत्ते हाटकविश्वचक्र उचितं विप्रेभ्य एषां गृहे
उच्चैर्याति तदर्भका निशि रविं धृत्वा विधुं वा दिने ।
तद्रात्रौ दिनमह्नि रात्रिरधुना कर्माणि कुर्युः कुतो
विप्रा धर्मकृता त्वया कथमथ स्थ्याप्योत्र धर्मः प्रभो ।।३९।।

भावार्थः—हे स्वामिन् ! ब्राह्मणों को सोने का 'विश्वचक्र' प्रदान कर आपने ठीक किया । लेकिन जब उन ब्राह्मणों के घर उनके बालक रात में सूर्य को और दिन में चन्द्र को ['विश्वचक्र' दान में प्राप्त सूर्य-चन्द्र की मूर्त्तियों को]

पकड़कर दौड़ते हैं, तब रात दिन में और दिन रात में बदल जाता है। ऐसी स्थिति में ब्राह्मण अपने कर्म करे तो कैसे ? हे राजन् ! आप धर्मात्मा हैं। इस विषम अवस्था में आप धर्म की स्थापना कैसे करेंगे ?

सौवर्णे विश्वचक्रे क्षितिधर भवता दत्त एषां द्विजेभ्यो
गेहेष्वेकत्र वासं विदधति विबुधास्तत्स्थिता वाहनानि।
देवानां तत्स्थितानि स्फुटमिभवदनो धेनवो राहुरिंदुः
सूर्यो वा शेष आखुः सुरगज इति वा शंभुनंदी विचित्रं ॥४०॥

भावार्थः—हे पृथ्वीपति ! जब आपने ब्राह्मणों को सोने का 'विश्वचक्र' प्रदान किया, तब उनके घरों में देवता और उनके वाहन—गजानन, गौऐं, राहु, चन्द्र, सूर्य, शेष, मूषक, ऐरावत, शंभु और नन्दि ['विश्वचक्र' दान में प्राप्त मूर्त्तियाँ] —आपस का वैरभाव छोड़कर एक जगह रहने लगे हैं।

दत्ते हाटकविश्वचक्र उचितं विप्रेभ्य एषां गृहे
दारिद्र्यं खलु सर्वथैव विगतं श्रीराणवीर त्वया।
यल्लक्ष्मीः किल कल्पवृक्षधनदो चिंतामणिः कामगौ-
र्मेरुः स्पर्शमणिः खनिश्च निधयो रत्नाकरोयं ततः ॥४१॥

भावार्थः—हे महाराणा ! आपने ब्राह्मणों को सोने का 'विश्वचक्र' महादान देकर उनके घर के दारिद्र्य को समूल नष्ट कर दिया है। यह ठीक ही है। क्योंकि यह 'विश्वचक्र' महादान लक्ष्मी, कल्पवृक्ष, कुवेर, चिन्तामणि, कामधेनु, मेरु, पारसमणि, रत्नों की खान, नवनिधि और रत्नाकर स्वरुप है।

॥ इति राजप्रशस्तिकाव्ये द्वादशः सर्गः ॥

त्रयोदशः सर्गः

[चौदहवीं शिला]

।। श्रीगणेशाय नमः ।।

एवं प्रतिष्ठाविधियोग्यरूपे
कृते तडागे क्रियमाणकार्ये ।
उत्साहपूर्णो नृपरा[ज]सिंहो
निमंत्रणं प्रेषितवान्नृपेभ्यः ।।१।।

..वार्थः—इस प्रकार कार्य के चलते रहने पर जब तड़ाग का प्रतिष्ठा करने योग्य रूप तैयार हो गया, तब उत्साह-पूर्ण होकर नृपति राजसिंह ने राजाओं को,

पूर्णादरं दुर्ग[ग]णेश्वरेभ्यः
स्वगोत्रभूपेभ्य उतापरेभ्यः ।
अथो यथायोग्यमहो महाश्वान्
रथाँस्तथा सारथिवर्ययुक्तान् ।।२।।

भावार्थः—दुर्गों के अधिपतियों को, स्वगोत्रीय एवं अन्य भूपालों को निमंत्रण भेजा। इसके बाद, यथायोग्य बड़े-बड़े अश्व, सारथियुक्त श्रेष्ठ रथ,

शिवोपधानाः शिविकावलीस्ताः
संप्रेषयामास सुहस्तिनीश्च ।
विश्वासयोग्यान्मनुजान्द्विजादी-
न्विशेषवेत्तानयनाय तेषां ।।३।। कुलकं ।।

भावार्थः—तकियो वाली सुन्दर पालकियां, सुन्दर हथिनियां, विश्वासपात्र लोग, ब्राह्मण आदि, उन राजाओं को लाने के लिये, चतुर राजसिंह ने भेजे।

अथो विशालेषु महागृहेषु
राणामणेः कार्यकरैर्नरैस्तैः।
पट्टांबराणां च पटव्रजानां
सुवर्णसूत्रोत्तमवाससां च ॥४॥

भावार्थः—इसके बाद महाराणा के कर्मचारियो ने बड़े-बड़े मकानों में रेशमीन, महीन और ज़रीन वस्त्रों,

अलंकृतीनां विलसत्कृतीनां
प्रयत्ननीतातुलरत्नकानाम्।
मनोज्ञमुक्तावलिपुष्पराग-
प्रवालगारुत्मतहीरकाणां ॥५॥

भावार्थः—सुन्दर आभूषणों, प्रयत्न कर मंगवाये गये अनुपम मोती, पुखराज, मूंगे, मरकत, हीरे,

गोमेदवैडूर्यकनीलकानां
रूप्यस्य हेम्नश्च महासमूहः।
सुवर्णमुद्रारजताच्छमुद्रा-
गिरिर्गुरुश्चित्रसुपात्रसघः ॥६॥

भावार्थः—गोमेद, वैडूर्य तथा नीलम रत्नों और सोने व चांदी के बड़े-बड़े ढेर लगा दिये। सोने व चाँदी के सिक्कों का वहाँ उन्होने पहाड़ बना दिया और नाना प्रकार के कई पात्र जमा कर दिये।

कस्तूरिकाशस्तचयो गुरूणां
कर्पूरपूरश्च गणोऽगुरूणां।
काश्मीरजानां निकरः सुगंध-
द्रव्यस्य नव्यो वि[वि]धः प्रबंधः ॥७॥

भावार्थः—विपुल मात्रा में कस्तूरी और कपूर जमा कर दिया गया। अगर, केसर तथा अन्य सुगंध द्रव्यों के ढेर लगा दिये गये।

संस्थापितः स्थापितपुण्यकीर्त्ते-
रुपर्युपर्येव धनप्रपूर्त्तेः।
धान्यादिहट्टाः शिविराणि शालाः
कृताः पुनैस्तैर्विविधा विशालः ॥८॥

भावार्थः—जिसने अपनी पुण्य-कीर्त्ति को स्थापित किया है, उस राजसिंह के लिये लोगों ने धन-पूर्त्ति के अनेक सुदृढ प्रवंध कर दिये। उन्होंने वहाँ धान्यादि की दूकानें, शिविर तथा विभिन्न प्रकार की वड़ी-वड़ी शालाएँ वनवाईं।

अमुष्य वस्तुप्रसरस्य लोकैः
पूर्वं कदाप्यानयनं न दृष्टं।
पृथक्तया तेन वितर्क एष
प्रकल्पितः कर्कशतार्किकौघैः ॥९॥

भावार्थः—इतनी वस्तुओं का आना वहाँ पहले लोगों ने कभी नहीं देखा था। इस संवंध में तीव्रबुद्धि तार्किकों ने अपना अलग एक तर्क वनाया, जो इस प्रकार है:—

रघोः सकाशात्किल कौत्सनाम्ना
प्रदातुमद्धा गुरुदक्षिणां तां।
द्रव्यं सुभव्यं वहु याचितं त-
न्निभालितं सद्मनि भूभृता न ॥१०॥

भावार्थः—"कौत्स ने गुरुदक्षिणा देने के लिये रघु से प्रचुर धन की याचना की। लेकिन जब रघु को अपने घर में उतना धन नहीं दिखाई दिया, तब

लब्धुं विजेतुं धनदं प्रतस्थे
ततः स शीघ्रं धनदस्तदैव ।
रात्रौ धनं भूरि रघोर्गृहौघे
संस्थापयामास महाभयाद्यः ॥११॥ युग्मं ॥

भावार्थः—उसने धन-प्राप्ति के उद्देश्य से कुबेर को जीतने के लिये प्रस्थान किया । कुबेर ने तब भयभीत होकर तत्काल उसी रात में उसके महलों में प्रचुर धन जमा कर दिया ।

तथा रघोरुत्तमवंशजस्य
श्रीराजसिंहस्य वसु. प्रदातुं ।
कृतप्रतिज्ञस्य गृहे कुबेरः
संस्थापयामास धनं तु युक्त ॥१२॥

भावार्थः—राजसिंह उसी रघु के श्रेष्ठ वंश में उत्पन्न हुआ है । उसने भी धन देने की प्रतिज्ञा कर रखी है । इस कारण उसके घर में जो यह धन दिखाई दे रहा है. उसे कुबेर ने ही जमा किया है ।"

गोधूमगोत्राश्चणकोच्चशैलाः
सत्तांडुलानां पृथुपर्वताश्च ।
क्षमाभृतो मुद्गगणस्य तुंगा
गोधूमपिष्टस्य विशिष्ट शैलाः ॥१३॥

भावार्थः—महाराणा के लोगों ने प्रसन्नता के साथ वहाँ गेहूं, चने, चावल, मूंग और गेहूं के आटे के बड़े-बड़े पहाड़,

घृतस्य तैलस्य तु वापिकास्तु
महाद्रयो वा गुडमंडलस्य ।
अखंडखंडस्य महामहीध्रा
धराधराः प्रोज्ज्वलशर्कराणाम् ॥१४॥

भावार्थः—घी-तैल की वापिकाएँ, गुड़, अमित खांड, सफेद शर्करा,

घृतौघपक्वान्नमहागिरींद्राः
शिलोच्चया मौक्तिकमोदकानां।
दुग्धोल्लसन्मोदकभूधराश्च
फलावलेर्वीटकतुंगसंघाः ॥१५॥

भावार्थः—घी के बने पक्वानों, दूध के बने और मोतीचूर के लड्डुओं तथा फलों के बड़े-बड़े पर्वत बना दिये। उन्होंने पान के बीड़ों के ऊँचे-ऊँचे ढेर

कृता मुदा कार्यकरैर्नरैर्द्राक्
जयंति चैते नृप राजसिंह।
पाषाणशैलान्बहवोद्रयस्ते
देशे श्रुतं दृष्टमिहाद्य चित्रं ॥१६॥

भावार्थः—तुरंत लगा दिये। हे राजसिंह! आपके देश में पत्थरों के पहाड़ों का होना सुना गया था, लेकिन आज यहाँ अन्न-पक्वानों के ये कई पर्वत दिखाई दे रहे हैं। यह आश्चर्यजनक है। ये पर्वत वृद्धि को प्राप्त हों।

रसैरमीभिः पटशैवलैश्च
रत्नैस्तुरंगैः करिभिश्च गौभिः।
युक्तश्च दानाय घृतप्रवाहै
राजँस्तवायं नगरः समुद्रः ॥१७॥

भावार्थः—हे राजन्! दान करने के लिये एकत्रित की गई इन सामग्रियों से आपका यह नगर समुद्र बन गया है। क्योंकि यहां विभिन्न प्रकार के रस हैं। पट रूपी शैवाल हैं। रत्न हैं। घोड़े और हाथी हैं। गायें हैं और घृत बह रहा है।

अश्वा जनैः श्वासजित स्वगत्या
प्रचंडवेतंडगणाः सुशुंडाः।
रथास्तथा धन्यवृषैः सनाथाः
संस्थापिता दानकृते नृपस्य ॥१८॥

भावार्थः—राजसिंह के दान करने के लिये लोगों ने वहाँ सुन्दर सूँडोंवाले प्रचंड हाथी, उत्तम वृषभों से जुते हुए रथ और अपनी गति से पवन को जीतनेवाले घोड़े एकत्रित किये।

हेलावुकेनापि गजा महांतो
महामदा विंशतिसंख्ययात्ताः ।
आनीय राज्ञे विनिवेदितास्तान्
गृहीतवान्सप्तदश क्षितीशः ॥१९॥

भावार्थः—व्यापारी ने बड़े-बड़े प्रमत्त बीस हाथी लाकर राजसिंह को नजर किये। राजसिंह ने उनमें से सत्रह हाथी लिये।

तथापरेणापि गजद्वयं स-
दानीतमीशेन गृहीतमेतत् ।
जलाशयोत्सर्गविधौ मया ते
देया विचार्येति गजाः सुयुक्तम् ॥२०॥

भावार्थः—इसी प्रकार वहां कोई दूसरा व्यापारी दो सुन्दर हाथी लाया। यह सोचकर कि जलाशय के प्रतिष्ठा-कार्य में मुझे हाथियों का दान करना है, राजसिंह ने उनको भी ले लिया।

निमंत्रितास्ते नरनाथसंघाः
समागताः सर्वकुटुंबयुक्ताः ।
अश्वैस्तथैषां करिभिर्गजैर्वा
रथैः पुरे दुर्गम एव मार्गः ॥२१॥

भावार्थः—निमंत्रित राजा वहाँ सपरिवार आये। उनके अश्वों, हाथियों तथा रथों के कारण नगर के मार्ग अवरुद्ध से हो गये।

तथैव सर्वे मनुजा द्विजातयः
प्रचंडविद्याः खलु पंडितोत्तमाः ।
कवीश्वराणां निवहास्तु चारणाः
सुवंदिनोऽमंदगुणाः समाययुः ॥२२॥

भावार्थः—वहाँ धुरंधर विद्वान् एवं अच्छे पंडित सभी ब्राह्मण, बड़े-बड़े अनेक चारण कवि और गुणवान वन्दीजन आये।

पुरं तदा मर्त्यमयं च गोमयं
स्वनोमयं वापि हयावलीमयं।
करेणुपूर्णं करिसद्घटामयं
दृष्टं महाश्चर्यमयं जनव्रजैः ॥२३॥

भावार्थः—तव समूचा नगर मनुष्यों, वैलों, कोलाहल, घोड़ों, हथिनियों तथा अनेक सुन्दर हाथियों से भर गया। जन-समुदाय ने उसे बड़े विस्मय के साथ देखा।

अन्नस्य पक्वान्नगणस्य भूयः
समस्तभोज्यस्य समागतेभ्यः।
अनंतसंख्येभ्य इहादरेण
कृतं प्रदानं प्रभुणा समानं ॥२४॥

भावार्थः—राजसिंह ने वहाँ आये हुए असंख्य लोगों को अन्न, पक्वान्न तथा अन्य समस्त भोज्य पदार्थ समान रूप से आदरपूर्वक प्रदान किये।

स्वीयैः परैर्वापि निमंत्रणार्थ-
मश्वादि हस्त्यादि विभूषणादि।
वस्त्राद्यमानीतमथो गृहीत्वा
योग्यं परावृत्य ददौ तदन्यत् ॥२५॥

भावार्थः—निमंत्रण पाकर आये हुए अपने पराये लोगों ने जो हाथी, घोड़े, वस्त्र आदि भेंट किये, उनमें से उचित वस्तुएँ रखकर महाराणा ने अन्य वस्तुएँ वापस लौटा दीं।

एवं बहुष्वेव दिनेषु लोकै-
र्निवेद्यमाने हि निमंत्रणस्य।
वस्तुव्रजं योग्यमहो गृहीत्वा
अन्यत्परावृत्य ददौ वदान्यः ॥२६॥

भावार्थः—इस प्रकार वहुत दिनों तक निमंत्रित जन-समुदाय वस्तुएँ भेंट करता रहा। आश्चर्य है कि उचित वस्तुएँ ग्रहण कर उदार महाराणा ने शेप अन्य वस्तुएँ लौटा दीं।

शते सप्तदशे पूर्णे वर्षे द्वात्रिंशदाह्वये।
माघशुक्लद्वितीयायां राजसिंहस्य भूपतेः ॥२७॥

भावार्थः—संवत् १७३२, माघ शुक्ला द्वितीया के दिन पृथ्वीपति राजसिंह की

परमारकुलोत्पन्ना श्रीरामरसदेवधूः।
राजसिंहनृपाज्ञातो वाप्या उत्सर्गमातनोत् ॥२८॥

भावार्थ.—पत्नी श्री रामरसदे, जो परमार कुल में उत्पन्न हुई थी, ने महाराणा की.आज्ञा से,

दहवारीघट्टमध्ये लग्ना रजतमुद्रिकाः।
चतुर्विंशतिसंख्यायुक्तसहस्रप्रमिता इह ॥२९॥

भावार्थः—'देवारी' घाटे मे वनी वापिका की प्रतिष्ठा करवाई। इस वापी के निर्माण मे चौवीस हजार रुपये लगे।

ततस्तु सेतौ धरणीधरोत्तमो
जलाशयोत्सर्गकृते तुलाकृते।
हेम्नस्तथा हाटकसप्तसागर-
त्यागाय वै त्रीणि सुमंडपान्यमं ॥३०॥

भावार्थ.—इसके वाद महाराणा ने जलाशय की प्रतिष्ठा, सुवर्ण-तुला-दान तथा सुवर्ण-सप्तसागर-दान करने के उद्देश्य से सेतु पर तीन सुन्दर मंडप

कर्त्तुं समाज्ञापयदत्र राणा
श्रीराजसिंहो बुधसूत्रधारान्।
कृतानि कुंडानि नवैव तत्र
वेदी चतुर्हस्तमिता कृता वा ॥३१॥

भावार्थः—बनवाने का विज्ञ सूत्रधारों को आदेश दिया। वहाँ नौ कुंड तथा चार हाथ के प्रमाण की एक वेदी बनवाई गई।

सुमंडपः षोडशहस्तमानः
ईट्वसुसंख्यामितकार्यसिद्ध्यै।
वदाम्यहं तन्नवखंडयुक्त-
क्षितौ प्रसिद्ध्यै नृपतेः सुनाम्नः ॥३२॥

भावार्थः—उन मंडपों में से एक मंडप सोलह हाथ के प्रमाण का बना। यह संख्या अमित कार्यो की सिद्धि के लिये है। यथा—नौ खंडों से युक्त पृथ्वी पर नृपति के सुन्दर नाम की प्रसिद्धि,

अस्यास्तु दृष्ट्यैव चतुःपुमर्थ-
प्राप्तिस्तु योग्ये समये नराणां।
यशोस्तु वै षोडशसत्कलेंदु-
प्रभं प्रभोर्वेति कृतः प्रकारः ॥३३॥

भावार्थः—उस मंडप के दर्शनमात्र से लोगों को योग्य समय पर चारों प्रकार के पुरुषार्थो की प्राप्ति तथा सोलह कलाओं से पूर्ण चन्द्रमा के समान स्वामी के यश का विस्तार। इसलिये मंडप का यह प्रकार बनाया गया।

स्तंभाः कृता षोडशसंमितास्ते
दानानि किं षोडश वा महांति।
कृतानि कर्तुं च कृताः प्रतिज्ञा-
लेखा हि दिग्भित्तिषु भूमिभर्त्रा ॥३४॥

भावार्थः—उस मंडप के सोलह स्तंभ बनवाये गये। वे मानो किये गये अथवा किये जानेवाले षोडश महादानों के प्रतिज्ञा-लेख है, जिन्हें महाराणा ने दिशा-रूप भित्तियों पर लगवाया है।

द्वाराणि चत्वारि कृतानि तेषां
सुदर्शनान्मुक्तिचतुष्टयं स्यात् ।
एतादृशो मंडपराज एवं
कृतेः सुयूपोपि च सूत्रधारैः ॥३५॥

भावार्थः—इसके चार द्वार बनाये गये । उनके दर्शन से चार प्रकार की मुक्तियां प्राप्त होती हैं । सूत्रधारों ने वहां ऐसा एक सुन्दर मंडप बनाया । वहां उन्होंने एक सुन्दर यूप का निर्माण भी किया ।

तुलाविधानस्य च सप्तसागर-
दानस्य वा मंडपयुग्ममुत्तमं ।
तुलाक्रमोद्भासितमेवमद्भुतं
श्रीराजसिंहेन कृतं मनोहरं ॥३६॥

भावार्थः—राजसिंह ने तुलादान एवं सप्तसागरदान करने के लिये जो वहां दो श्रेष्ठ, मनोहर एवं अद्भुत मंडप बनवाये, वे तुला के समान दिखाई देते थे ।

एवं त्रयं मंडितमंडपानां
त्वया कृतं हेतुरयं महींद्र ।
तापत्रयं दर्शनतोस्य नृणां
हर्त्तुं त्रिनेत्रप्रियतां च लब्धुं ॥३७॥

भावार्थः—हे पृथ्वीपति ! इस प्रकार आपने सुन्दर तीन मंडपों का जो निर्माण करवाया, उसका कारण यह है कि उनके दर्शन से मनुष्य तीनों तापों से मुक्त हों और त्रिनेत्र [शंकर] की प्रियता प्राप्त करें ।

गते शते सप्तदशे सुवर्षे
द्वात्रिंशदाख्ये तपसीति राज्ञा ।
पांडौ दशम्यां च शनौ गृहीतो
जलाशयोत्सर्गविधेर्मुहूर्त्तः ॥३८॥

भावार्थः--राजसिंह ने जलाशय की प्रतिष्ठा करने का मुहूर्त्त निकलवाया—संवत् १७३२, माघ शुक्ला दशमी, शनिवार।

आदौ तु माघे सितपंचमी तिथौ
महीमहेंद्रेण पुरोधसा सह।
जलाशयोत्सर्गकृतेधिवासनं
तहत्विजां सद्वरणं कृतं मुदा ॥३९॥

भावार्थः—प्रारंभ में प्रसन्न होकर महाराणा ने पुरोहित के साथ माघ शुक्ला पंचमी को जलाशय की प्रतिष्ठा करने के लिये अधिवासन किया और इसके बाद ऋत्विजों का वरण।

होतारौ जापकौ द्वारपालावेकां श्रुतिं प्रति ।
षट् चतुर्विंशतिः संख्या ऋत्विजामिति कीर्त्तिता ॥४०॥

भावार्थः—एक श्रुति के प्रति दो होता, दो जापक और दो द्वारपाल होते हैं, जिनकी संख्या छह होती है। इस आधार पर चार श्रुतियों के पीछे चौबीस ऋत्विज बताये गये हैं।

एको ब्रह्मा तथाचार्य षड्विंशतिरतोऽखिलाः ।
तेमी मत्स्यपुराणोक्तास्तत्र प्रोक्तफलप्रदा[:] ॥४१॥

भावार्थः—इसके अतिरिक्त एक ब्रह्मा और एक आचार्य। इस तरह ये कुल ऋत्विज छब्बीस हुए। इनका कथन मत्स्यपुराण में हुआ है। वहाँ इन्हें फलदायी बताया है।

चतुर्विंशतितत्त्वानां पुंसः स्याज्ज्ञानमात्मनः ।
तद्व्यथाद्वरणं वीरः षड्विंशतिसहत्विजां ॥[४२॥]

भावार्थः—ऋत्विजों के इस प्रकार के वरण से मनुष्य को चौबीस तत्त्वों का, पुरुष का और आत्मा का ज्ञान प्राप्त होता है। अतएव राजसिंह ने छब्बीस ऋत्विजों का वरण किया।

इति त्रयोदशः सर्गः ॥

चतुर्दशः सर्गः

[पन्द्रहवीं शिला]

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीपट्टराज्ञा परमारवंश्य-
श्री इंद्रभानाभिधरावपुत्र्या ।
आज्ञा सदाकुंवरिनामभाजा
कृता मुदा रूप्यतुलाकृते द्राक् ॥१॥

भावार्थः—परमारकुलोत्पन्न राव इन्द्रभान की पुत्री पटरानी सदाकुंवर ने चाँदी की तुला करने के लिये अचानक आज्ञा दी ।

अकारि रात्राविह मंडपं जनै-
रखंडकुंडैरभिमंडितं जवात् ।
नृणां महाश्चर्यमहोभवत्ततो-
धिवासनं तत्र कृतं विधानतः ॥२॥

भावार्थः—तब लोगों ने रातोंरात एक मंडप बना दिया । वहाँ उन्होंने कुंड भी तैयार कर दिये । यह देखकर लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ । इसके बाद वहाँ विधिपूर्वक अधिवासन किया गया ।

गरीबदासाख्यपुरोहितेन वै
पुत्रप्रयुक्तेन तु हेमरूप्ययोः ।
कर्त्तुं तुलामंडपयुग्मकं कृतं
पुरोधसाकारि ततोधिवासनं ॥३॥

भावार्थः—पुरोहित गरीबदास एवं उसके पुत्र ने सोने व चाँदी की तुलाएँ करने के लिए दो मंडप बनवाये। पुरोहित ने वहां अधिवासन किया।

राणामणिश्री अमरेशसूनो-
भीमस्य राज्ञस्तु वधूः पवित्रा।
तोडास्थितेर्भूपतिरायसिंह-
माता तुलां रूप्यमयीं विधातुं ॥४॥

भावार्थः—महाराणा अमरसिंह के पुत्र राजा भीमसिंह की पत्नी, तोड़ा के राजा रायसिंह की माता, ने वहाँ चांदी का तुलादान करने की

आज्ञापयामास तदैव सृष्टं
रानेंद्रलोकैर्निशि मंडपं सत्।
समस्तवस्तुस्फुरितं कृतं वा-
धिवासनं तत्र तयोक्तरीत्या ॥५॥

भावार्थः—आज्ञा दी। आज्ञा पाते ही महाराणा के लोगों ने रातोंरात एक सुन्दर मंडप का निर्माण किया, जो समस्त वस्तुओं से सम्पन्न था। वहाँ विधिवत् अधिवासन किया गया।

चोहानवंशोत्तमवेदलापुर-
स्थितेर्वलूराववरस्य सत्सुतः।
स रामचंद्रः किल तस्य चात्मजः
स केसरीसिंह इति द्वितीयकः ॥६॥

भावार्थः—वेदला के राव चौहान वलू का पुत्र रामचन्द्र था। रामचन्द्र के द्वितीय पुत्र का नाम केसरीसिंह था।

रावो द्वितीयः कृत एष राणा-
श्रीराजसिंहेन सलूंवरिस्थः।
कर्त्तुं तुलां रूप्यमयीं विचारं
भ्रात्राकरोद्वै सबलादिसिंहः ॥७॥

भावार्थः—राजसिंह ने उसे सलूंबर का राव बनाया था। उसने भी चांदी की तुला करने के लिये अपने भाई से सलाह मांगी। उसका भाई सबल सिंह

सुगंधिभिर्माल्यगणैः　　प्रसूनैः
सत्पल्लवैर्वंदनमालिकाभिः ।
माघेप्यघद्रावणमंडपेषु
वसंत एव प्रविभाति चित्रं ।।१६।।

भावार्थः—सुगंधित मालाओं, पुष्पों, सुन्दर पल्लवों तथा वन्दनमालिकाओं के कारण माघ महीने में भी, पाप-नाशक उन मंडपों में वसन्त ऋतु की ही शोभा थी । यह आश्चर्य है ।

प्रकल्पितं तत्र च रंगवल्लिभिः
सत्पद्मगर्भं　　भृतसप्तमंडलं ।
सषोडशारं　　शुभवृत्तमद्भुतं
चक्रं चतुर्वक्त्रविराजितं पुनः ।।१७।।

भावार्थः—वहाँ रंग-वल्लियों से सुन्दर पद्म-गर्भ वाला एवं सात मंडलों तथा सोलह पँखुड़ियों से युक्त एक मनोहर और अद्भुत वृत्ताकार चक्र बनाया गया । फिर उसमें ब्रह्मा की स्थापना की गई ।

समंततो वा　　चतुरस्रमद्भुतं
सद्वारुणं　　मंडलमत्र　　कारणं ।
श्रीपद्मनाभस्य　　सुखाय सप्त-
द्वीपप्रभोः　　षोडशसत्प्रमाणकैः ।।१८।।

भावार्थः—वहाँ एक अद्भुत एवं चौकोर वारुण मंडल बनाया गया, जो चारों ओर से बराबर था । षोडशोपचार से सप्तद्वीप के स्वामी विष्णु को प्रसन्न करने के लिये इसकी रचना की गई ।

ज्ञेयस्य　　भूपेन　　सुवृत्तलब्धये
चक्रश्रिये　　वा　　चतुरास्य　　तुष्टये ।
वीरेण　　सृष्टा　　चतुरस्रवेदिका
सद्रंगवल्लीनिभरत्नपूर्त्तये ।।१९।।

भावार्थः—परम तत्त्व को जानने के लिये, चक्र की शोभा के लिये, चतुर्मुख की प्रसन्नता के लिये तथा रंग-वल्लियों के समान उत्तम रत्नों की पूर्त्ति के लिये भूपति राजसिंह ने वहां एक चौकोर वेदी बनवाई।

राजाधिराजः स्वपुरोहितेन
युक्तः समेतो गुरुणा यथेंद्रः।
यथा वशिष्ठेन च रामचंद्रो
विराजते मंडपमध्यदेशे ॥२०॥

भावार्थः—बृहस्पति के साथ इन्द्र अथवा वशिष्ठ के साथ रामचन्द्र के समान अपने पुरोहित के साथ राजसिंह मंडप मे विराजमान हुआ।

सहोदराद्यैस्तनयैश्च पौत्रै-
र्नानाक्षितीशैरपि दुर्गनाथैः।
निमंत्रणायातनरेशसंघै-
र्विशोभितो देवगणैर्यथेंद्रः ॥२१॥

भावार्थः—सहोदर आदि, पुत्र-पौत्रों, अनेक राजाओं, दुर्ग-स्वामियों तथा निमंत्रण पाकर आये हुए नरेशों के साथ राजसिंह उसी प्रकार सुशोभित हुआ जैसे देव-समुदाय के साथ इन्द्र शोभा पाता है।

महीमहेंद्रो नृपराजसिंहो
धर्मैकमूर्त्तिर्धरणीधवेड्यः।
कृतैकभुक्तः प्रथमे दिनेद्य
कृतोपवासो नियमो नवम्यां ॥२२॥

भावार्थः—एकमात्र धर्म-मूर्त्ति तथा राजाओं द्वारा वन्दित महाराणा राजसिंह ने प्रथम दिन एकभुक्त रहकर आज नवमी के दिन नियमपूर्वक उपवास किया।

देहस्य शुद्धि प्रविधाय प्राय-
शिचत्तं च कृत्वातिविशु[द्ध]चित्तः ।
श्रुतिस्मृतिप्रेरितकर्मवृंदे
श्रद्धामयो ब्राह्मणमानदानः ॥२३॥

भावार्थः—श्रुति-स्मृति-कथित कर्मों में श्रद्धा रखनेवाले तथा ब्राह्मणो को सम्मान देनेवाले रार्यसिंह ने इस प्रकार देह की शुद्धि की और प्रायश्चित करके चित्त को अत्यन्त शुद्ध किया ।

श्रीराजसिंह कृतवान्प्रायश्चित्तं यदा तदा ।
प्रायश्चित्तं शुद्धमस्यातिशुद्धमभव[त्]पुनः ॥२४॥

भावार्थः—राजसिंह ने जब प्रायश्चित किया तब उसका चित्त, जो प्रायः शुद्ध है और अधिक शुद्ध हो गया ।

ततो नृपः स्वस्तिसुवाचनं च
पुरोधसा विप्रवरैः समेतः ।
स्वस्तिप्रदं वै कृतवान्धरित्र्याः
पूजां च पृथ्वीश्वरभावदात्रीं ॥२५॥

भावार्थः—इसके बाद पुरोहित एवं श्रेष्ठ ब्राह्मणों के साथ नृपति ने कल्याणप्रद स्वस्तिवाचन किया और पृथ्वी पर स्वामित्व प्रदान करने वाली पृथ्वी-पूजा की।

गणेशपूजा पृथिवीश्वरस्फुर-
द्गणेशताप्राप्तिमहासुखप्रदां ।
श्रीगोत्रदेव्या अपि गोत्रवृद्धिदा
गोविंदपूजां बहुगोधनप्रदां ॥२६॥

भावार्थः—तदनन्तर उसने, राजा को गणेशत्व की प्राप्ति कराने वाली एवं महान् सुख देनेवाली गणेश-पूजा, गोत्र-प्रवर्द्धक गोत्रदेवी-पूजा और प्रचुर गो-धन प्रदान करनेवाली गोविन्द-पूजा

कृत्वा कृतार्थं विलसत्पुमर्थी
स्वं मन्यमानः क्षितिपेषु धन्य
रामो वशिष्ठस्य यथाश्वमेधे
चकार पूजां वरणं तथैव ॥२७॥

भावार्थः—की और अपने को कृतार्थ, चारों प्रकार के पुरुषार्थों से संपन्न एव भूपालो में धन्य समझा। जिस प्रकार राम ने अश्वमेध में वशिष्ठ का पूजन एवं वरण किया उसी प्रकार उसने

गरीवदासाख्यपुरोहितस्य
कृत्वा तु पूर्वं वरणं परेषां।
निजाश्रितानामखिलद्विजानां
सदृत्विजां वा वरणं शुचीनां ॥२८॥

भावार्थः—सर्वप्रथम गरीवदास पुरोहित का, तत्पश्चात् अपने आश्रित एवं अन्य सभ पवित्र ब्राह्मणों का उसने ऋत्विज के रूप में वरण

मुदाकरोदत्र तु पीठदानं
स्वराज्यपीठाचलभावकारि।
प्राग्जन्मपापाधिकधावनार्थं
श्रीविप्रपंक्तेः पदधावनं वा ॥२९॥ कलापकं ॥

भावार्थः—किया। फिर प्रसन्नतापूर्वक उसने ब्राह्मणों को आसन दिये, जिससे उसका राज्य-सिंहासन स्थायित्व प्राप्त कर सके। पूर्व जन्म के पापों का प्रक्षालन करने के लिये उसने उन ब्राह्मणों के चरण धोये।

प्ररोचनाकृज्जगतो हि धर्मे
सुरोचनाभिस्तिलकं द्विजानां।
श्रियोऽक्षतत्वाय सदक्षतैर्वा
प्रसूनपूजामपि सूनुदात्रीं ॥३०॥

भावार्थः—कुंकुम का तिलक संसार को धर्म की ओर प्रेरित करता है। इसलिये राजसिंह ने उन ब्राह्मणों को कुंकुम से और लक्ष्मी की अक्षुण्णता के लिये अक्षतों से तिलक किया। पुत्र प्रदान करने वाली पुष्प-पूजा भी उसने उनकी की।

कृत्वार्कभादं मधुपर्कदानं
कुसुंभसूत्रं धृतधर्मसूत्रं ।
आकल्पकीर्त्तिस्थितये त्वनल्पं
संकल्पनीरं प्रददौ द्विजेभ्यः ॥३१॥

भावार्थः—ब्राह्मणों को, सूर्य के समान तेज देनेवाला मधुपर्क देकर तथा उनके हाथों में धर्म-सूत्र को धारण करनेवाला कुसुंभसूत्र बाँधकर उसने, अपनी कीर्त्ति को कल्पपर्यन्त बनाये रखने के लिये, उनके हाथों में संकल्प का प्रचुर जल दिया।

अनर्घ्यताकारकमर्घ्यदानं
कृत्वा ददौ वा द्विजपुंगवेभ्यः।
सुदक्षिणाः संगरकर्मधर्म-
त्यागेषु वा दक्षिणभावदात्रीः ॥३२॥

भावार्थः—सर्वाधिक सम्मान देनेवाला अर्घ्य देकर राजसिंह ने श्रेष्ठ ब्राह्मणों को अच्छी दक्षिणाएँ दीं, जिनसे युद्ध में, धर्म मे और त्याग में अनुकूलता मिलती है।

गरीबदासाख्यपुरोहितस्य
पुत्रप्रयुक्तस्य महार्चनायां ।
वासः समूहं शुभवासनादं
ताभ्यां ददौ भूपतिराजसिंहः ॥३३॥

भावार्थः—भूपति राजसिंह ने पुरोहित गरीबदास और उसके पुत्र की अच्छी पूजा की। उस अवसर पर उसने उनको अमित वस्त्र प्रदान किये, जो निर्मल कामनाएँ देनेवाले हैं।

मुक्तामणिभ्राजितकुंडले च
श्रीमंडलाप्त्यै मणिमुद्रिकाश्च ।
स्वकीयमुद्राचलनाय जंबू-
द्वीपेखिले स्वोत्कटकांगदार्ढ्यं ॥३४॥

भावार्थः—श्री-मंडल की प्राप्ति के लिये राजसिंह ने उनको मुक्तामणि के दो कुंडल, संपूर्ण जंबूद्वीप में अपना सिक्का चलाने के लिये मणि-जटित अंगूठियाँ, अपनी सेना के अंगों को सुदृढ़

प्राप्तुं सरत्नान्कटकांगदांश्च
यज्ञोपवीतानि सुवर्णवंति ।
जलाशयोत्सर्गसुयज्ञसिद्ध्यै
ददौ नरेंद्रोन्नतराजसिंहः ॥३५॥ युग्मं ॥

भावार्थः—बनाने के लिये रत्न-जटित कड़े और भुजबन्द तथा सरोवर के प्रतिष्ठा-यज्ञ की सिद्धि के लिये सोने के यज्ञोपवीत प्रदान किये।

नानाविधान्याभरणानि नूनं
स्वस्य क्षितीशाभरणत्वसिद्ध्यै ।
जलाशयोत्सर्गविधिप्रसिद्ध्यै
जलोच्छपात्राणि सुवर्णवंति ॥३६॥

भावार्थः—राजाओं में शिरोमणि बनने के लिये नाना प्रकार के आभूषण, जलाशय की प्रतिष्टा की सफलता के लिये सुवर्ण सुन्दर जल-पात्र और

श्रीभोजदानाधिकदानजात-
पुण्याप्तये भोजनपात्रपंक्ति ।
निवेद्य पूज्यं तमपूजयत्स-
पुत्रप्रयुक्तं स्वपुरोहितं सः ॥३७॥ युग्मं ॥

भावार्थः—भोज के दान से भी अधिक दानार्जित पुण्य की प्राप्ति के लिये असंख्य भोजन-पात्र भेंट कर राजसिंह ने अपने पुरोहित एवं उसके पुत्र की पूजा की।

ततोपरेभ्यश्च सुवर्णभूषण-
संघान्सुवर्णस्थितये तदालये।
ददन्महींद्रो मणिमुद्रिकागणा-
न्स्थित्यै मणीनां च तदीयमंदिरे ॥३८॥

भावार्थः—इसके बाद उसने अन्य ब्राह्मणों को सोने के कई आभूषण और मणि-जटित अँगूठियां प्रदान कीं, ताकि उनके घर सुवर्ण और मणियों से संपन्न हो सकें।

सुरूपरूप्योत्तमपात्रपंक्ति
रूप्यातिपूर्त्यै च तदालयेषु।
वासःसमूहानतिनूतनांश्च
मनस्सु तेषां सुखवाससृष्ट्यै ॥३९॥

भावार्थः—उसने उन ब्राह्मणों को चांदी के अनेक उत्तम और सुन्दर पात्र तथा अमित अतिनूतन वस्त्र प्रदान किये, जिनसे उनके घर चांदी से और उनका मन सुख से पूर्ण हो सके।

एवं स सर्वार्चनमत्र कृत्वा
नानानृपैरर्चितपादपद्मः।
सुभाग्यभाजं कृतकार्यवर्यं
स्वं मन्यमानोत्र विभाति वीरः ॥४०॥कुलकं ॥

भावार्थः—अनेकानेक राजा जिसके चरण-कमलों की पूजा करते हैं, उस राजसिंह ने इस तरह समस्त ब्राह्मणों का पूजन किया और अपने को कृतकृत्य एवं भाग्यशाली समझा।

इति श्रीचतुर्दशः सर्गः १४॥

पंचदशः सर्गः

[सोलहवीं शिला]

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

ततः स वादित्रविचित्रनादं
कुरंगवेगोच्चतुरंगसंगं ।
उत्तुंगमातंगघटासमेतं
नानाजनस्तोमसमाकुलं च ॥१॥

भावार्थः—इसके वाद राजसिंह ने अनेक प्रकार के वाद्य वजवाये, कुरंग के समान दौड़नेवाले वड़े-वड़े तुरगों और ऊंचे-ऊंचे हाथियों के समुदाय को साथ में लिया. असंख्य जन-समुदाय को एकत्रित किया,

चलत्पताकावलिशोभिताभ्रं
संस्थाप्य विप्रान्स्फुरदृत्विजश्च ।
अलंकृतानल्पगजावलीनां
स्कंधप्रदेशेषु सुबंधुरेषु ॥२॥

भावार्थः—आकाश को चंचल पताकाओं से सुशोभित किया और सुसज्जित अनेक हाथियों पर तेजस्वी ऋत्विज ब्राह्मणों को विठाया।

तॉंल्लोकपालानिवभूरिभूषा-
न्पश्यन्नवश्यं वशगाक्षितीशः ।
अग्रेसरांस्तान्प्रविधाय सर्वा-
न्विचित्रवादित्रधरान्नरांश्च॥ ॥३॥

भावार्थः—पृथ्वीपति राजसिंह को वे ऋत्विज प्रचुर आभूषणों से अलंकृत लोकपालों के समान दिखाई दे रहे थे । महाराणा ने उन्हें और नाना प्रकार के वाजेवालों को तथा अन्य समस्त लोगों को आगे वढ़ाया ।

अखंडसौभाग्यभृतोतिभव्या
नारीर्विचित्राभरणाश्च भव्याः ।
जलाहृतिप्रोद्धृतधन्यकुंभाः
कृत्वा पुरस्ताज्जितदिव्यरंभाः ॥४॥

भावार्थः—अखंड सौभाग्यवती नारियों को भी उसने आगे किया । उन्होंने जल लाने के लिये सुन्दर कुंभ उठा रखे थे । वे अनेक तरह के आभूषणों से अलंकृत थी । सौन्दर्य में उन्होने रंभा को जीत लिया था ।

धीरं पुरस्कृत्य पुरोहितं जल-
यात्रां विचित्रां कृतवान्नरेशः ।
युधिष्ठिरस्यापि च राजसूयके
शोभा न चैतादृशरीतिरीरिता ॥५॥ कुलकं ॥

भावार्थः—महाराणा ने विद्वान् पुरोहित को भी आगे वढाया और आश्चर्यजनक जल-यात्रा की । युधिष्ठिर के राजसूय में भी ऐसी शोभा नहीं थी ।

प्रोक्तं जनैर्लोकवृतोयमुद्यतो
जलार्थमर्थोप्यपरोस्ति तं वदे ।
दानाय तच्छत्रगलत्सुहाटक—
महं प्रसन्नाद्दरुणीकरिष्यति ॥६॥

भावार्थः—तब लोगों ने कहा कि -जन-समुदाय को साथ लेकर यह राजसिंह जल के लिये तैयार हुआ है । इस कथन में दूसरा भी अर्थ है । वह यह कि अपने छत्र से टपकने वाली स्वर्ण-राशि को यह दान के लिये प्रसन्नतापूर्वक जल वना देगा ।

तथात्र कृत्वा वरुणस्य पूजां
विधानपूर्वं सकलांगयुक्तां ।
आनाय्य नीरं कलशेषु कृत्वा
नारीः पुरः सत्कलशाः कलोक्तीः ॥७॥

भावार्थः—तदनन्तर वरुण की विधिवत् सर्वांग पूजा करके, कलशों में जल भरवाकर, तथा उन सुन्दर कलशो को उठाकर मधुर गीत गाती हुई नारियों को आगे कर

महामहोत्साहमयः स्फुरज्जयो
लसद्दयः स्पष्टनयः सविस्मयः ।
द्विजावलीमंडितमंडपे शुभेऽ-
भवत्प्रविष्टोतिविशिष्टतुष्टिमान् ॥८॥

भावार्थः—विजयी, दयावान्, स्पष्टनीतिवाला एवं परम सन्तोषी राजसिंह बड़े उत्साह और विस्मय के साथ सुन्दर मंडप में प्रविष्ट हुआ। मंडप ब्राह्मण-मंडली से सुशोभित था ।

संस्थाप्य वेद्यां कलशान् जलाढ्यान्
वस्त्रावृत्तान्दिक्षु चतुर्मितासु ।
मध्ये जगद्ध्येयमुखो मखेस्मि-
न्विराजते भूपतिराजसिंहः ॥९॥

भावार्थः—वेदी पर चारों दिशाओं में जल-पूर्ण एवं वस्त्राच्छादित कलशों की स्थापना कर भगवान का स्मरण करता हुआ, पृथ्वीपति राजसिंह उस यज्ञ में सुशोभित हुआ।

चतुर्षु कोणेषु सुमंडपस्या-
करान्नृपः स्थापितदेवपूजां ।
सवास्तुपूजां शुभवस्तुपूर्णां
वेदी स वेदीस्थितदेवतानां ॥१०॥

भावार्थः—विद्वान् राजसिंह ने मंडप के चारों कोनों में स्थापित देवताओं का पूजन किया। फिर उसने शुभ वस्तुओं से परिपूर्ण वास्तु-पूजा कर वेदी-स्थित देवताओं की पूजा की।

नवग्रहांस्तानधिदेवताश्च
संस्थापयन्प्रत्यधिदेवताश्च।
नगवग्रह साग्रहमेष शत्रु-
श्रियः प्रियोऽक्ष्णां प्रकरिष्यतीशः ॥११॥

भावार्थः—उसने नव ग्रहों, अधिदेवताओं और प्रत्यधिदेवताओं की स्थापना की। मानो आँखों को सुन्दर लगनेवाला यह पृथ्वीपति शत्रु की लक्ष्मी का आग्रहपूर्वक नवीन ग्रहण करेगा।

संस्थापयन्सत्कलशं च रौद्रं
रुद्रं प्रसन्नं क्षितिपोकरोद्द्राक्।
रौद्रं भयं शत्रुकृतं न देशे
सादस्य भद्रं भवतात्सुदेशे ॥१२॥

भावार्थः—रुद्र कलश की स्थापना करके राजसिंह ने रुद्र को शीघ्र प्रसन्न किया। ताकि देश में शत्रु-कृत रौद्र भय उत्पन्न न हो तथा अपना देश सुखी रहे।

ततो महामंडपमध्यदेशे
विप्रैः समेतो विलसत्पुरोधाः।
धराधवो जागरणं वितन्व—
न्वेदोक्तकार्यं कृतवान्समस्तं ॥१३॥

भावार्थः—इसके बाद विशाल मंडप में रहकर पृथ्वीपति से पुरोहित एवं ब्राह्मणों के साथ जागरण किया और वेद कथित समस्त कार्य किये।

ततो निशांते प्रविधाय नित्यं
स्नानादि राणामणिराजसिंहः ।
जातः प्रवृष्टः शुभमंडपे वै
सहोदादींश्च तदा कुमारान् ॥१४॥

भावार्थः—रात बीतने पर नित्य के स्नानादि कार्यों से निवृत्त होकर महाराणा ने सुन्दर मंडप मे प्रवेश किया । उस अवसर पर उसने सहोदर आदि को, कुमारों को,

पत्नीः समस्ताश्च पितृव्यजायाः
स्नुषाश्च वंशोद्‌भवसर्वपुत्रीः ।
पुरोधसां धन्यवधूर्नृपाणां
वधूः समाहूय मुदोपवेश्य ॥१५॥

भावार्थः—समस्त रानियों को, चाचियों को, पुत्र-वधुओं को, अपने वंश में उत्पन्न हुई सब पुत्रियों को, पुरोहितों की पुण्यवती वधुओं को तथा राजाओं की रानियों को प्रसन्नतापूर्वक बुलाया और

सुकर्मणोस्याद्‌भुतदर्शनार्थं
श्रीपट्टराज्ञीसहितो हिताढ्यः ।
कृत्वा मुदा श्रीवरुणस्य पूजां
समस्तदेवातुलपूजनं च ॥१६॥

भावार्थः—आश्चर्यजनक उस सुन्दर कार्य को देखने के लिये उन्हें वहां बिठाया । तब पटरानी के साथ कल्याणकारी राजसिंह ने प्रसन्नतापूर्वक वरुण की पूजा की । फिर उसने समस्त देवताओं का पूजन किया ।

रत्नाकरं कर्त्तुमिह द्वितीयं
तडागमेनं नवरत्नराजिं ।
निक्षिप्तवान्मध्य इहास्य शस्यं
मत्स्यं पुनः कच्छपमच्छमेव ॥१७॥

भावार्थः—उसने जलाशय को दूसरा रत्नाकर बनाने के लिये उसके भीतर नव रत्न डाले और श्रेष्ठ मत्स्य, कच्छप तथा

श्रेयस्करं वा मकरं ततोत्र
निधिद्वयं स्थापितमेत्रमन्यैं ।
तेनात्र सर्वे निधयो जवेन
समागमिष्यंति ततो जलस्य ॥१८॥

भावार्थः—कल्याणकारी मकर छोड़े। मानो यहाँ इस तरह उक्त दो प्रकार की निधियाँ स्थापित की गई हैं। इस कारण इस सरोवर में समस्त निधियाँ अविलंब आवेंगी। जल की

नूनं समृद्धिर्भविता सदास्मि—
न्समुद्ररूपत्वमथास्य भावि।
मयास्य वै राजसमुद्रनामो—
त्पत्तौ तु हेतुः कथितोयमेव ॥१९॥

भावार्थः—समृद्धि भी निःसंदेह निरन्तर होगी। सरोवर समुद्र का रूप ग्रहण करेगा। यह मैंने इस जलाशय के 'राजसमुद्र' नामकरण का कारण बताया है।

क्षिप्तानि रत्न्यान्यपरे समुद्रे
त्वया तडागेत्र नृपेंद्र जातं।
रत्नाकरत्वं त्वथ वाडवाग्नि—
र्सिद्धिं कुरु स्यादिति पूर्ण्यपूर्त्तिः ॥२०॥

भावार्थः—हे महाराणा! आपने इस दूसरे समुद्र में जो रत्न डाले हैं, उनसे इस तड़ाग का रत्नाकरत्व सिद्ध हो गया है। अब आप इसमें वाडवानल की सिद्धि कीजिये, ताकि समुद्र-निर्माण के पुण्य की पूर्त्ति हो सके।

गोः पूजनं वत्सयुजो विधान-
पूर्वं नृपालः कृतवान्कृत्तींद्रः।
हिंक्रण्वतीं गां प्रसमीक्ष्य भूपः
पुरोहितं प्रत्यवदत्किमेतत् ।।२१।।

भावार्थ:—पुण्यवान् महाराणा ने बछड़े सहित गाय का विधिवत् पूजन किया। तब रंभाती हुई गाय को देखकर राजसिंह ने पुरोहित से पूछा कि इसका क्या रहस्य है ?

शुभं भवेत्प्रत्यवदत्पुरोहितो
वेदोक्तमेतत् शकुनं यतः प्रभो।
गोतारणारंभणमातनोत्पुनः
सर्त्विक्सहायो धरणीपुरंदरः ।।२२।।

भावार्थ:—पुरोहित ने उत्तर दिया कि हे स्वामिन्! मंगल होगा। क्योंकि यह वेदोक्त शकुन है। इसके बाद ऋत्विजों की सहायता से महाराणा ने गो-तारण आरंभ किया।

तडागमध्ये कृतवान्सुखेन
गोतारणारंभमहो महींद्रः।
गोशब्दमात्रस्य तु सदर्था-
स्तन्नामतुल्यार्थककर्मलब्धै ।।२३।।

भावार्थ:—'गो' शब्द के जितने अच्छे अर्थ हैं, उनके समानार्थक कर्मों की प्राप्ति के लिये पृथ्वीपति ने सरोवर में गो-तारण का सुखपूर्वक आरंभ किया।

ब्रुवे तदर्थान्भुवि नाकसौख्य-
लाभाय युद्धे शरसत्यतार्थं।
गवां च लाभाय सुवागवाप्त्यै
करस्थवज्रेण रिपुक्षयाय ।।२४।।

भावार्थः—उन अर्थों को बताता हूँ—पृथ्वी पर स्वर्गीय सुख की प्राप्ति, युद्ध में बाणों की अमोघता सिद्धि; गो-लाभ, सुन्दर वाणी की प्राप्ति, करस्थ वज्र से शत्रु-संहार,

दिक्षु स्फुरत्कीर्त्तिकृते जनाली-
नेत्रातितोषाय विभाप्तये च ।
समस्तभूराज्यकृते नृपस्य
तडागनीरस्य तु पूर्णतार्थं ॥२५॥

भावार्थः—दिशाओं में कीर्त्ति का विस्तार, प्रजा के नेत्रों को संतोष-लाभ, कान्ति की प्राप्ति, समस्त पृथ्वी पर नृपति के राज्य का विस्तार, सरोवर में जल–समृद्धि,

लक्ष्येष्टलाभाय च दृष्टितुष्टये
श्रीराजसिंहाख्यमहीपतेः सदा ।
ऋत्विग्गणैरीदृशसत्फलाप्तये
कृतं हि गोतारणकर्म शर्मदं ॥२६॥

भावार्थः—लक्ष्य के अनुसार इष्ट-सिद्धि तथा दृष्टि को तुष्टि-लाभ । महाराणा सिंह इस प्रकार के सुन्दर फल सदा प्राप्त करे, इस उद्देश्य से, ऋत्विजों ने गो-तारण का कल्याणकारी काम संपन्न किया ।

गोतारणादुत्तरमत्र कर्त्तुं
तडागमुख्यस्य तु नाम नव्यं ।
प्रश्नं कृतीत्थं कृतवान्महींद्रः
पुरोहितं प्रत्यथ राजसिंहः ॥२७॥

भावार्थः—गो-तारण का कार्य हो चुकने पर चतुर महाराणा राजसिंह ने इस उत्कृष्ट सरोवर का सुन्दर नाम रखने के लिये पुरोहित से पूछा ।

तदाव्रदस्त्वत्र पुरोहितोयं
वदत्ववश्यं त्वरिसिंहनामा ।
तदोक्तमेवं ददतात्पुरोऽत्रा
आज्ञा कृता भूमिभुजात्र भूयः ॥२८॥

भावार्थः—पुरोहित ने उत्तर दिया कि इस संबंध में अरिसिंह को ही बोलना चाहिये। इस पर महाराणा ने कहा कि पुरोहित ही बोलें। जब उसने उसे पुनः आज्ञा दी कि

नामास्य वाच्यं त्विति तत्पुरोधसा
नामोक्तमेकं त्विति राजसागरः ।
नामापरं राजसमुद्र इत्यतो
नृपस्तडागस्य तु जन्मनाम वै ॥२९॥

भावार्थः—वह इस सरोवर का नाम बतावें, तब पुरोहित ने एक नाम बताया—'राजसागर' और दूसरा 'राजसमुद्र'। इसके बाद राजसिंह नें जलाशय का जन्मनाम

इत्युक्तवानेव हि राजसागर-
स्तदुत्तरं राजसमुद्र इत्यपि ।
नामास्य चक्रे दिनपंचकोत्तरं
दिव्ये मुहूर्त्ते त्विति भूमिनायकः ॥३०॥

भावार्थः—बताया—'राजसागर' और दूसरा—'राजसमुद्र'। तदनन्तर पांच दिन बाद शुभ मुहूर्त्त में उसने सरोवर का नामकरण किया।

महोत्सवं द्रष्टुमिमं पुरंदरः
समागतो ह्यत्र विनिश्चितं बुधैः ।
यतस्तदग्रेसरवारिदव्रजः
प्रवर्षति स्मांबुकणं शनैः शनैः ॥३१॥

भावार्थः—[उस समय वर्षा होती देखकर] विद्वान इस निर्णय पर पहुँचे कि इस महोत्सव को देखने के लिये इन्द्र यहाँ आया है। क्योंकि उसके आगे-आगे चलनेवाला घन-समुदाय जल-कणों को धीरे-धीरे वरसा रहा था।

ततो महामंडपमध्य उत्तमा
होमक्रियायामभवन्परायणाः ।
श्रीवेदपाठेषु जपेषु तत्पराः
क्रियासु सर्वासु तथैवमृत्विजः ॥३२॥

भावार्थः—इसके वाद महामंडप में श्रेष्ठ ऋत्विज होम, वेद-पाठ, जप आदि सब कर्मों में जुट गये।

नवेषु कुंडेषु नवस्वथाग्नयः
श्रीगार्हपत्याहवनीयसंनिभाः ।
प्रजज्ज्वलुस्तत्र वितानमंडलं
धूमेन धूम्रं सकलं तदाभवत् ॥३३॥

भावार्थः—तब नौ नूतन कुंडों में गार्हपत्य और आहवनीय [अग्नि] के समान अग्नि प्रज्ज्वलित हुई। धुँए से वहां का समूचा वितान-मंडल धूम्रवर्ण हो गया।

धूमावलिभिर्गगने तदाभव-
न्महावितानान्यपराणि भूपतेः ।
रजस्सुरक्षाकृतये जगत्कृता
कृतानि किं धूसरवर्णवाससा ॥३४॥

भावार्थः—उस समय धूम-समूह से आकाश में बड़े-बड़े अन्य वितान वन गये। वे ऐसे लगते थे मानों सृष्टिकर्त्ता ने पृथ्वीपति राजसिंह की धूल से सुरक्षा करने के लिये धूसरवर्ण के वस्त्र से उनका निर्माण किया है।

महावितानेष्वथ धूममालया
कृतं तु मालिन्यमिदं तदाभवत् ।
अनेकमालिन्यहरं हि मंडप-
स्थितस्य लोकप्रसरस्य पश्यतः ॥३५॥

भावार्थः—बड़े-बड़े वितान धूम्र-माला से मलिन हो गये। पर वह उनकी मलिनता मंडप में बैठे दर्शकों के अनेक प्रकार के पापों को धोनेवाली सिद्ध हुई

अनंतधूमालिमनंतसंस्थित-
ज्योतींषि वह्नेः शुभगंधवाहकान् ।
सुगंधवाहान्नृप कल्पयस्यहो
संकल्पनीराणि सदाब्दपूर्त्यै ॥३६॥

भावार्थः—[धूम, ज्योति, जल और पवन से मेघ बनता है। इस आधार पर कवि कहता है]—हे महाराणा! आपके इस यज्ञ की अग्नि से अनन्त धूम और आकाश में रहनेवाली ज्योति निकल रही है। सुगंधित पवन भी फैल रहा है। इसके अतिरिक्त संकल्प का जल आप छोड ही रहे हैं। मानो यह सब इसलिये हो रहा है कि आकाश सदा मेघों से भरा रहे।

ततः कृतार्थः समरे समर्थः
क्ष्मापश्चतुःसंख्यपुमर्थकांक्षी ।
मनो दधे राजसमुद्र भद्र-
प्रदक्षिणार्थी सकलार्थसिद्ध्यै ॥३७॥

भावार्थः—इस प्रकार कृतकृत्य होकर समर में समर्थ तथा चारों प्रकार के पुरुषार्थों के आकांक्षी राजसिंह ने सकल अर्थों की सिद्धि के लिये राजसमुद्र की कल्याणकारी प्रदक्षिणा करने का मन में विचार किया।

यस्यां क्षितौ पूर्वमहोऽभवन्शिला
निम्नोन्नतत्वं पटुकंटका जनैः ।
साम्यं च संमार्जनमत्र निर्मितं
भाग्यं भुवस्तन्नृपतेः समागमे ॥३८॥

भावार्थः—जिस धरती पर पहले ऊँचाई-निचाई और तीखे-तीखे कांटे थे, उसे लोगों ने समतल बनाकर स्वच्छ कर दिया। मानो महाराणा के शुभागमन से वहाँ की पृथ्वी का भाग्योदय हुआ ।

अरण्यवल्ल्यावलिरज्जवोभवन्
यस्यां क्षितौ वीरनृपाज्ञया पुरा ।
क्रोशादिकज्ञानकृते जनैर्जवात्
धृतोद्धृता द्राक् शणसूत्ररज्जवः ।।३६।।

भावार्थः—धरती पर पहले जहाँ जंगली वेलो की रस्सियाँ फैली हुई थीं, वहाँ महाराणा की आज्ञा से, कोस आदि की जानकारी के लिये, सन और सूत की रस्सियां रखी व उठाई जाने लगीं।

इति श्रीराजसमुद्रस्य भट्टरणछोडकृतेः राजप्र[श]स्तेः
पंचदशः सर्ग[:] संपूर्णः
लिखितो राजसमुद्रे ।।

षोडशः सर्गः

[सत्रहवीं शिला]

।। ॐ श्रीगणेशाय नमः ।।

पूर्णे तु षोडशशते शुभकारिवर्षे
द्वाविंशतिप्रमितिके किल माधवे वा ।
पक्षे सिते उदयसिंहनृपस्तृतीया-
मध्येऽकरोदुदयसागरसुप्रतिष्ठा ।।१।।

भावार्थः—मंगल देनेवाले संवत् १६२२ में वैशाख शुक्ला तृतीया को महाराणा उदयसिंह ने उदयसागर की प्रतिष्ठा की थी ।

उदयसागरनामजलाशयो-
त्तमपरिक्रमणं रमणीयुतः ।
उदयसिंहनृपः शिविकास्थितः
समतनोदिति सूत्रनिवेशने ।।२।।

भावार्थः—तब उसकी परिक्रमा उसने पालकी में बैठकर की थी । साथ में उसकी रानियां भी थीं । इसलिये जब राजसमुद्र के सूत्र-निवेशन का समय आया तब

जसवंतसिंहरावल इति जल्पितवान्प्रभोः पार्श्वे ।
एवं कार्यं भवता अथवाश्वारोहणं कृत्वा ।।३।।

भावार्थः—जसवन्तसिंह रावल ने राजसिंह के निकट जाकर कहा कि आप भी वैसा ही करें । अथवा अश्वारूढ़ होकर आपको

कार्या प्रदक्षिणार्थे द्विजाय स ऽश्वस्ततो देयः ।
श्रुत्वेति पक्षयुगलं तूष्णीं स्थितवान्महाशयो भूपः ।।४।।

भावार्थः—प्रदक्षिणा करनी चाहिये । तत्पश्चात् वह अश्व इस प्रदक्षिणा के निमित्त आप ब्राह्मण को प्रदान कर दें । ये दोनों पक्ष सुनकर गंभीर नृपति चुप ही र.ा ;

ततो नृपः सामगवेदपाठिभि-
युंक्तः पुरःस्थापित ऋत्विगादिकः ।
नानाप्रतीहारकरस्थयष्टिका-
रवौघदूरस्थितसर्वमानुषः ।।५।।

भावार्थः—फिर राजसिंह ने [प्रदक्षिणा करने की तैयार की] । सामवेदपाठी उसके साथ थे । ऋत्विज आदि लोगों को उसने आगे किया । छड़ियां लेकर अनेक प्रतीहार पुकार-पुकार कर लोगों को दूर करने लगे ।

विचित्रवादित्रमहारवश्रवाः
पुरः स्थितोन्नतदंतपंक्तिकः ।
विराजिवाजिव्रजराजिताग्रकः
शिवांशुकश्रीशिविकापुरःसरः ।।६।।

भावार्थः—नाना प्रकार के वाद्य जोरों से सुनाई दे रहे थे । आगे-आगे बड़े-बड़े हाथियों की कतारें, सुन्दर अश्वों की पंक्तियां तथा सुन्दर वस्त्रों से अलंकृत पालकियां सुशोभित थीं ।

पुरःस्थपूर्णोन्नतकुंभसत्फलो
महामहोत्साहमयो महोत्सव. ।
समस्तजायावसनांचलस्वकां-
शुकांचलग्रंथिविधानसुंदरः ।।७।।

भावार्थः—आगे-आगे मंगलमय जल-पूर्ण कुंभ उठाये गये । राजसिंह में अतिशय उत्साह था । यह उसका एक बड़ा उत्सव था, उसकी समस्त रानियों के वसनांचलों तथा स्वयं के दुपट्टे के छोर के पारस्परिक गठ-बन्धन से वह सुन्दर लग रहा था ।

वेदोदितं राजसमुद्रराज-
त्सुसूत्रसंवेष्टनकर्मकर्त्तु ।
स्वपाणिसंस्थापितनव्यभव्य-
सत्कुंकुमोद्यन्नवतंतुपंक्तिः ॥८॥

भावार्थः—राजसमुद्र का वेदोक्त सूत्र-संवेष्टन-कर्म करने के लिये महाराणा ने हाथों में नूतन और सुन्दर कुंकुम-रंजित नव तन्तु ले रखे थे।

सुखपरिक्रमणाय महीभुजो
धरणिमूर्द्धि्न सुचेलकतूलिकाः ।
अथ धृता स्वजनेन पदास्पृश-
न्स सुकुमारपदोऽत्यजदद्भुतं ॥९॥

भावार्थः—महाराणा सुखपूर्वक परिक्रमा कर सकें, इस दृष्टि से स्वजनों ने सुन्दर वस्त्रो के पांवड़े धरती पर मार्ग में बिछाये। परन्तु आश्चर्य है कि सुकुमार चरणवाले उस राजसिंह ने उन्हें पांव से छुआ तक नहीं और वहाँ से हटवा दिया।

वसनोपानद्युगलं पदयोर्धृत्वापि भूभुजा त्यक्तं ।
सुकुमारपदेनापि च धर्माद्भुतपद्धतिं प्रकल्पयता ॥१०॥

भावार्थः—सुकुमार-चरण होकर भी धर्म की अद्भुत पद्धति का निर्माण करने वाले राजसिंह ने पांवों में पहनी हुई कपड़े की जूतियां तक उतार दीं।

अपादचारी मृदुलांघ्रिपद्मो
विपादुकः संप्रति पादचारी ।
भवन्भृशं भाति महाप्रभावो
राजाधिराजः प्रभुराजसिंहः ॥११॥

भावार्थः -जिसके चरण-कमल कोमल हैं तथा जो न कभी पैदल चला है, वह अत्यन्त प्रभावशाली राजाधिराज राजसिंह आज पादुकाएँ उतार कर पैदल चलता हुआ अतिशय शोभा पा रहा है।

प्रदक्षिणां दक्षिणतो वितन्व-
न्स दक्षिणो दक्षिणमार्गगामी ।
प्राचीदिशादक्षिणदिक्प्रतीची-
सौम्यागतान्नृन्बहुदक्षिणाभिः ॥१२॥

भावार्थः—दांई ओर से प्रदक्षिणा करते हुए उदार एवं सरल मार्ग पर चलनेवाले राजसिंह ने पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा से आये हुए लोगों को प्रचुर दक्षिणाएँ,

द्विजादिकान्धन्यधनैश्च धान्यै-
रतोषयत्सर्वजनांस्तथैव ।
सदश्वमेधोत्तमराजसूया-
धिकं फलं प्राप्तुमिह प्रवृत्त ॥१३॥युग्मं ॥

भावार्थः—द्विजादिको को विपुल धन तथा अन्य समस्त मनुष्यों को धान्य देकर सन्तुष्ट किया । इस प्रकार वह अश्वमेध एवं राजसूय के फल से भी अधिक सुन्दर एवं उत्तम फल की प्राप्ति के लिये प्रदक्षिणा-कार्य में प्रवृत्त हुआ ।

तडागं वेष्टयन्राना अखंडनवतन्तुभिः ।
नवखंडधरामध्ये कीर्त्ति स्थापितवाँश्चिरं ॥१४॥

भावार्थः—अखंड नव तन्तुओं से तड़ाग का वेष्टन करते हुए महाराणा ने नौ खंडों वाली पृथ्वी पर अपनी कीर्त्ति को अचल बना दिया ।

शुक्लांबरं चंद्रमिव क्षितीशं
राज्ञस्तु तारा इव तारहाराः ।
सेवंत एवेत्युचितं हि गौर्यः
सहीरमुक्ताभरणातिरम्याः ॥१५॥

भावार्थः—ताराओं के समान रानियाँ, जिन्होंने हीरक एवं मुक्ता जटित अत्यन्त मनोहर आभूषण पहन रखे है, श्वेत अंबर वाले चन्द्रमा के समान महाराणा राजसिंह की सेवा मे हैं, जो उचित है ।

इममुत्सवंमद्भुतं महेंद्रो
रुचिरं द्रष्टुमुपागतो मुदात्र ।
जलदास्तु पुरःसरास्तदीया
इति वर्षंति जलानि हर्षपूर्णाः ॥१६॥

भावार्थः—इस अद्‌भुत एवं सुन्दर उत्सव को देखने के लिये इन्द्र यहां सहर्ष आया है। यही कारण है कि उसके आगे-आगे चलनेवाले मेघ हर्ष-पूर्ण होकर जल बरसा रहे हैं।

प्रथमं हृदि शैत्यशोभितानां
प्रमदानां प्रमदातिभूषितानां ।
अथ वर्षणनीरपूरितानां
सकलांगेष्वभवत्सुशीतलत्वं ॥१७॥

भावार्थः—हर्ष से उत्फुल्ल प्रमदाओं का हृदय ही पहले शीतल था। परन्तु अब जब कि वे वर्षा के जल में भीग गईं, उनके सभी अंगों में शीतलता उतर आई है।

जलधारावलिषु स्थिताः स्त्रियः
कृतकंपास्तु तटाकसत्तटस्थाः ।
द्रुतजांबूनदकांतकांतयः
क्षणदा उत्सवदर्शनागताः किं ॥१८॥

भावार्थः—जलाशय के सुन्दर तट पर जल-धाराओं में खड़ी स्त्रियां कांप रही थी। वे ऐसी प्रतीत हुईं मानों तरल सुवर्ण की कान्ति वाली रातें वहां उत्सव देखने के लिये आई हैं।

वनिता अनिमेषलोचना-
स्ताश्चकिता उत्सवदर्शनागताः किं ।
जलधारावलिमार्गगा मनो मे
सुरकन्या इति वक्ति धन्यधन्याः ॥१९॥

भावार्थः—मेरा मन तो यह कहता है कि वे निर्निमेष-लोचन एवं चकित स्त्रियां मानों सुन्दर देवकन्याएँ है, जो उत्सव देखने के लिये जलधाराओं के मार्ग से चलकर वहां आई है।

तनुलग्नार्द्रपटातिदृष्टदेह-
घटनानां घटसन्निभस्तनीनां।
घनधारावलिपूरिनांगकाना
मिव कौतूहलदं जलांगनाना ॥२०॥

भावार्थः—मेघ की जल-धाराओं में कुंभ सदृश पयोधरों वाली स्त्रियों के अंग भीग गये और इस कारण गीले और महीन वस्त्रों के चिपक जाने से उनका शारीरिक गठन साफ-साफ दिखाई देने लगा। वे वरुणलोक की अंगनाओं के समान कौतूहल दे रही थी।

पदचक्रमणेषु सोद्यमं तं
अरिसिहं स सहोदरं समीक्ष्य।
सुकुमारतरं सुखिन्नचित्त
शिविकारोहणमादिशन्महींद्रः ॥२१॥

भावार्थः—पैदल यात्रा करते हुए अतिसुकुमार सहोदर अरिसिंह को खिन्न चित्त देखकर महाराणा ने उसे पालकी में बैठने का आदेश दिया।

पदचंक्रमणेषु सोद्यमां
निजराज्ञीं परमारवंशजां।
महतीं समवेक्ष्य सुश्रमा
शिविकारोहणमादिशत्प्रभुः ॥२२॥

भावार्थः—पैदल यात्रा करती हुई परमारकुलोत्पन्न अपनी रानी को अत्यधिक श्रान्त देखकर राजसिंह ने उसे पालकी में बैठने की आज्ञा दी।

अथ राजसमुद्रमंडलेस्मि-
न्नरितः सूत्रसुवेष्टनं वितन्वन् ।
निजभूवलये सुधर्मसूत्रं
सततं रक्षति राजसिंहराणः ॥२३॥

भावार्थः—राजसमुद्र के मंडल के चारों ओर सूत्र-वेष्टन करता हुआ महाराणा राजसिंह अपने भूमंडल पर धर्मसूत्र की सदा रक्षा करता है ।

अथ परिक्रमणेषु समागता
विविधपुष्पविराजित मालिकाः ।
सपदि राजसमुद्रवरेऽर्पिता
वरुणदेवमुदे करुणाभृता ॥२४॥

भावार्थः—दयालु राजसिंह ने परिक्रमा करते समय आई हुईं नाना प्रकार के पुष्पों की मालाएँ वरुणदेव की प्रसन्नता के लिये सुन्दर राजसमुद्र में तत्काल अर्पित कर दीं ।

वसनग्रंथिविधानशोभिताभि-
र्युवतीभिः परिवेष्टितो नरेंद्रः ।
भुवि नानाविधदिव्यसुंदरीभिः
परितो वेष्टित इंद्र एव नूनं ॥२५॥

भावार्थः—गटबंधन से सुशोभित रानियों को साथ लेकर महाराणा तब ऐसा प्रतीत हुआ, मानों पृथ्वी पर देवांगनाओं से घिरा हुआ इन्द्र ही हो ।

वसनग्रंथिविधानभूषिताभि-
र्वनिताभिर्नृपमावृतं समीक्ष्य ।
जनता वक्ति हि रासमंडले श्री-
हरिरेवं कृतवान्ध्रुवं विहारं ॥२६॥

भावार्थः—गठबंधन से सुशोभित रानियों से घिरे हुए राजसिंह को देखकर लोगों ने कहा कि रासमंडल में श्री हरि ने ठीक इसी प्रकार विहार किया था।

चतुर्दशोद्भासितलोकवासि-
प्राणिस्फुरत्तृप्तिविवर्द्धनाय ।
चतुर्दशक्रोशमितस्तडागो
जलेन पूर्णोभवदेव तूर्णं ॥२७॥

भावार्थः—चौदह लोकों में रहनेवाले प्राणियों की तृप्ति भलीभांति हो, इसके लिये चौदह कोस लंबा-चौड़ा राजसमुद्र जल से शीघ्र ही परिपूर्ण हो गया।

प्रदक्षिणायां शिविराणि पंच
श्रीराजसिंहः कृतवानिहेति ।
हेतुस्तु पंचेंद्रियजान्विकारा-
न्हर्त्तुं प्रवृत्तोयमहो सुवृत्तः ॥२८॥

भावार्थः—सदाचारी राजसिंह ने प्रदक्षिणा में पांच शिविर लगाये। मानों इसका कारण यह है कि पञ्चेन्द्रिय-जनित विकारों को हरने के लिये वह प्रवृत्त हुआ था।

ईषत्फलाधारणतो धरेंद्रो
महाफलप्राप्तियुतो हि जातः ।
धृत्वा समस्तान् नियमान्यमांश्च
तेनास्य पुण्यं यमयातनाहृत् ॥२९॥

भावार्थः—थोड़े से फलों का आधार लेकर राजसिंह ने महान् फल प्राप्त कर लिये। समस्त यम-नियमों का उसने जो पालन किया उससे उस का पुण्य यम-यातनाओं का हरण करने वाला हो गया।

कमलवुरिजस्य पार्श्वे
तटाकतोये त्रयोदश्यां ।
एको गजो निमग्नो
झटिति प्रकटोभवद्गभीरेपि ॥३०॥

भावार्थः—त्रयोदशी के दिन कमलबुरिज के पास राजसमुद्र में एक हाथी डूब गया। परन्तु गहरा जल होते हुए भी वह तत्काल निकल आया।

यत्तद्वरुणेणायमुपायनार्थं धरेंद्रपुण्यस्य ।
राज्ञोस्य प्रेषित इति विशेषविद्भिस्तदा प्रोक्तं ॥३१॥

भावार्थः—तब जानकर लोगों ने कहा कि वरुणदेव ने पुण्यशाली नृपति राजसिंह के भेंट स्वरूप यह हाथी भेजा है।

आमान्नदानैर्घृतपक्वदानैः
पक्वान्नदानैर्वसनप्रदानैः ।
द्रव्यप्रदानैर्नृप आगतांस्ता-
नतोषयत्तोषयुतो मनुष्यान् ॥३२॥

भावार्थः—सन्तोषी नृपति ने वहाँ आये हुए लोगों को आमान्न-दान, घृत-पक्व-दान, पक्वान्न-दान, वस्त्र-दान और द्रव्य-दान देकर सन्तुष्ट किया।

एवं फलाधारधरो धरेंद्रः
षट्के दिनानामभवत्ततोयं ।
षडृत्तु नीरोगतनुः षडूर्मि-
विवर्जितो वाच्यमतः किमन्यत् ॥३३॥

भावार्थः—इस प्रकार राजसिंह ने छह दिन फलों का आधार लिया। इस कारण वह षडूर्मि-रहित और छह ऋतुओं में नीरोग शरीर वाला हो गया। इससे अधिक क्या कहा जाय ?

ततो नरेंद्रेण चतुर्दशीदिने
सुशर्मणो भर्मतुलाख्यकर्मणः ।
प्रकल्पितं सुंदरसप्तसागर-
दानस्य त्वादावधिवासनं मुदा ॥३४॥

भावार्थः—तदनन्तर महाराणा ने सुवर्ण-तुलादान एवं सप्तसागर दान करने के पूर्व चतुर्दशी के दिन प्रसन्नतापूर्वक अधिवासन किया।

चित्रं वितानं चपलाः पताकाः
सुपल्लवाः वंदनमालिकाश्च।
सत्सर्वतो भद्रकरास्तु वल्ल्यो
विनिर्मिता मंडपयुग्ममध्ये॥३५॥

भावार्थः—दोनो मंडपों में विचित्र वितान, चंचल पताकाएँ, सुन्दर पत्तों की बन्दनवारें तथा मंडप के चारों ओर मनोरम वल्लरियां लगाई गईं।

कृत्वार्चनं मंडपयुग्ममध्ये
भुवो हरेर्विघ्नपतेश्च वास्तोः।
पुरोहितादेर्वरणं नरेंद्र
ऋत्विग्गणस्याप्यकरोत्क्रमेण ॥३६॥

भावार्थः—दोनों मडपों में पृथ्वी, विष्णु, गणेश और वास्तु का पूजन कर महाराणा ने पुरोहित आदि एवं ऋत्विजों का क्रम से वरण किया।

ततश्चतुर्दिक्षु च मडपद्वये
कोणेषु पीठेषु समस्तदेवताः।
अभ्यर्च्य वास्तुप्रभृतीन्ग्रहादिका-
न्वेद्यां च देवान्प्रविभाति भूपः ॥३७॥

भावार्थः—इसके वाद राजसिंह ने दोनों मंडपों में, चारों दिशाओं में, पीठों पर तथा वेदी पर वास्तु, ग्रह आदि समस्त देवताओं का पूजन किया।

ततोभवन्मंडपयुग्ममध्ये
होमे परा ऋत्विज उत्तमास्ते।
श्रीवेदपाठेषु जपेषु सर्व-
क्रियासु सक्ता नृपतेः सुखाय ॥३८॥

भावार्थः—फिर नृपति के मंगल के लिये श्रेष्ठ ऋत्विज होम, वेदपाठ, जप आदि सभी कर्मो में जुट गये।

ततः शिवाढ्यः शिविकांतरस्थितः
शिवप्रसादात् शिविरं प्रति प्रभुः।
अकल्पयद्वाजिगतिं गतक्लमः
स चामरच्छत्रधरादिकैर्वृतः ।।३९।।

भावार्थः—इसके बाद प्रसन्न राजसिंह शिव की कृपा से सुखपूर्वक पालकी में बैठा और उसने घोड़ों को शिविर की ओर बढ़ाया। उसके साथ चँवर-छत्र उठानेवाले लोग थे।

श्रीराणवीरः शिविरं प्रविश्य स
स्वल्पं फलाधारविधिं प्रकल्प्य च।
जलाशयोत्सर्गविधेरुपस्करं
कर्तुं समाज्ञापयदेष मानुषान् ।।४०।।

भावार्थः—शिविर में पहुँचकर महाराणा ने थोड़ा सा फलाहार किया और प्रतिष्ठा-कार्य की सामग्री तैयार करने के लिये लोगों को आदेश दिया।

[इति षोडशः सर्गः सम्पूर्णः]

सप्तदश: सर्ग:

[अठारहवीं शिला]

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

सप्तदशसर्गो लिख्यते ।

आनंदपूर्णः किल पूर्णिमायां
पूर्णेंदुवक्त्रो नृपराजसिंहः ।
राज्ञीसमेतः सपुरोहितो वा-
भवत्प्रविष्टः शुभमंडपेस्मिन् ॥१॥

भावार्थः—पूर्ण-चन्द्र-वदन नृपति राजसिंह प्रसन्न होकर पूर्णिमा के दिन सुन्दर मंडप में रानियों समेत पहुँचा। साथ में पुरोहित भी था।

भ्रात्रा विशोभी अरिसिंहनाम्ना
पुत्रेण युक्तो जयसिंहनाम्ना ।
सद्भीमसिंहेन सुतेन सक्तः
पुत्रेण राजी गजसिंहनाम्ना ॥२॥

भावार्थः—इसके अतिरिक्त राजसिंह के साथ उसका भाई अरिसिंह तथा जयसिंह, भीमसिंह, गजसिंह,

सुतेन वा सूरजसिंहनाम्ना
तथेंद्रसिंहाभिधसूनुना च ।
सुतेन युक्तश्च महाबहादुर-
सिंहेन राजन्यगणैरुपेतः ॥३॥

भावार्थः—सूरजसिंह, इन्द्रसिंह और बहादुरसिंह नामक पुत्र थे। संग में क्षत्रिय लोग थे।

अमरसिंहशुभाभिधपौत्रवा-
नजवसिंहमुखोत्तमपौत्रयुक्।
प्रियमनोहरसिंहसमन्वितः
प्रविलसद्दलसिंहविशोभितः ॥४॥

भावार्थः—उसने अमरसिंह, अजबसिंह आदि पौत्रों को साथ में लिया। मनोहरसिंह, दलसिंह,

सुतेन युक्तोपि नरायणादि-
दासेन योग्यैः कुलठक्कुरैश्च।
महापुरोधोरणछोडराया-
दिकैश्च भीखूवरमंत्रिमुख्यैः ॥५॥

भावार्थः—पुत्र नरायणदास, योग्य ठाकुर लोग, बड़ा पुरोहित रणछोड़राय, श्रेष्ठ मन्त्री भीखू आदि उसके साथ थे।

विराजितो मंडपमध्यदेशे
पूर्णाहुतिं पूर्णमनाः प्रकल्प्य।
जलाशयोत्सर्गविधिं च तूर्णं
स पूर्णमेवं कृतवान्नरेंद्रः ॥६॥

भावार्थः—महाराणा मंडप मे विराजमान हुआ। सन्तुष्ट होकर उसने पूर्णाहुति दी और इस प्रकार जलाशय की प्रतिष्ठा-विधि को शीघ्र ही संपन्न किया।

समस्तजीवावलितृप्तये वै
जलाशयोत्सर्गमयं विधाय।
मत्वा जगज्जीवनमेतदस्य
सुजीवनं राणमणिर्विभाति ॥७॥

भावार्थः—इस जलाशय का निर्मल जल जगत का जीवन है, यह मानकर महाराणा ने समस्त जीवों की तृप्ति के लिये उसकी प्रतिष्ठा की।

यथा दिलीपो हयमेधकर्त्ता
सत्सेतुभर्त्ता भुवि रामभद्रः।
युधिष्ठिरो वा कृतराजसूय-
स्तथैव राणामणिरेष भाति ॥८॥

भावार्थः—[राजसमुद्र का निर्माता] यह महाराणा पृथ्वी पर उसी प्रकार सुशोभित है, जैसे अश्वमेध का कर्त्ता दिलीप, सुन्दर सेतु का निर्माता रामचन्द्र और राजसूय करनेवाला युधिष्ठिर।

ततः सुवर्णाद्भुतसप्तसागर-
दानोल्लसन्मंडपमध्य उत्तमे।
श्रीराजसिंहः परिवारसंयुतः
प्रविष्ट एवातिविशिष्टदिष्टयुक् ॥९॥

भावार्थः—तदनन्तर सोने का अद्भुत 'सप्तसागर' दान करने के लिये उल्लसित होकर सौभाग्यशाली राजसिंह सुन्दर मंडप में सपरिवार पहुँचा।

शास्त्रैरितं कांचनसप्तसागर-
दानस्य पूर्णाहुतिपूर्वकाणि वै।
कर्माणि कृत्वा किल निर्मलोत्तम-
स्वांतः सुपर्माधिपधन्यवैभवः ॥१०॥

भावार्थः—सोने के 'सप्तसागरदान' के पूर्णाहुति आदि सब कर्म विधिपूर्वक करके निर्मल एवं उत्तम अन्तःकरण वाला राजसिंह इन्द्र के समान प्रशंसनीय वैभव से संपन्न हो गया।

सप्तैव कुंडानि च कांचनेन
विनिर्मितान्यंबुधिरूपकाणि।
संस्थापितान्यग्रत एव तानि
सोपस्कराणि क्रमतो वदामि ॥११॥

भावार्थः—सोने के सात कुंड बनाये गये, जो सागर स्वरूप थे। सामग्रियों से पूर्ण कर उनकी स्थापना की गई। आगे मैं उन्हें क्रम से बताता हूं—

ब्रह्मप्रयुक्तं लवणेन पूर्णं
कुंडं तथैकं सपयः सकृष्णं।
परं घृताढ्यं समहेशमन्यत्
तथापरं सूर्ययुतं गुडाढ्यं ॥१२॥

भावार्थः—पहला लवण-पूर्ण ब्रह्म-कुंड, दूसरा दूध से भरा कृष्ण-कुंड, तीसरा घृत-पूरित महेश-कुंड, चौथा गुड़ से भरा सूर्य-कुंड,

दध्नातिधन्यं समहेंद्रमन्यत्
परं रमायुक् घृतशर्करं च।
गौरीद्युतं वा परमंबुयुक्तं
सप्तेति कुंडानि मयेरितानि ॥१३॥

भावार्थः—पांचवा दधि-पूरित इन्द्र-कुंड, छठा घृत और शर्करा से पूर्ण रमा-कुंड और सातवां जल से भरा गौरी-कुंड। ये सात कुंड हैं।

एतानि सर्वाणि सवस्तुकानि
दत्त्वैव राज्ञीसहितो गृहीत्वा।
धन्याशिषो धीरपुरोहितोक्ता
स ऋत्विगुक्ता जयति क्षितीशः ॥१४॥

भावार्थः—वस्तु-पूरित इन कुंडों को प्रदान कर सपत्नीक राजसिंह ने विद्वान् पुरोहितों तथा ऋत्विजों के उत्तम आशीर्वाद ग्रहण किये।

महादानं स दत्त्वाग्र्यं राजसिंहो महीपतिः।
सप्तसागरपर्यंतं भाति कीर्त्ति प्रकाशयन् ॥१५॥

भावार्थः—'सप्तसागर' महादान देकर पृथ्वीपति राजसिंह सात सागर पर्यन्त अपनी कीर्त्ति को प्रकाशित करता हुआ शोभायमान है।

जलाशयत्यागविधौ समस्तस-
ज्जलावलित्यागविधिर्ममेयेत्यलं ।
कार्यो हि मत्वा शुभसप्तसागर-
दानं कृतं दानिवरेण युक्तता ॥१६॥

भावार्थः—राजसमुद्र के उत्सर्ग के अवसर पर मुझे संपूर्ण जल-राशि का उत्सर्ग करना चाहिये, यह विचार कर दानियों में श्रेष्ठ राजसिंह ने सप्तसागर-दान किया, जो उचित है।

ग्रंथेषु दृष्टं किल सप्तसागर-
दानं तदाधिक्यकृतौ स्फुरत्पणः ।
स्वकल्पिताऽध्यन्वितसप्तसागर-
दानेन चाष्टांबुधिदोभवन्नृपः ॥१७॥

भावार्थः—ग्रन्थों में सप्तसागर-दान का ही उल्लेख है। पर उससे अधिक दान करने की प्रतिज्ञा करनेवाला यह राजसिंह स्वनिर्मित समुद्र के सप्तसागर का दान देकर अष्टसागर का दाता बन गया।

गांभीर्याद्राजसिंहोयं जित्वा वै सप्तसागरान् ।
तान्महादानविधिना द्विजेभ्यः प्रददौ मुदा ॥१८॥

भावार्थः—राजसिंह ने अपने गांभीर्य से सातों सागरों को जीत लिया तथा महादान की विधि से उन्हें ब्राह्मणों को सहर्ष दे दिया।

ज्योतिर्विन्मतमेकतो जलधयः षट् भागकैंतर्भुवः
क्षाराब्धिर्मम या मते जलधयः सप्तैकतो वावनेः ।
मध्ये राजसमुद्र एष तदिदं स्पष्टीकृतं तत्र त-
द्दानोत्सर्गविधानयोर्मम मतं तत्सत्यमेव ध्रुवं ॥१६॥

भावार्थः—ज्योतिर्विदों के मत में पृथ्वी के एक ओर छह समुद्र और बीच में एक क्षारसमुद्र है। परन्तु मेरे मत में पृथ्वी के एक ओर सात समुद्र हैं और मध्य में यह राजसमुद्र। यह मेरा मत राजसमुद्र की प्रतिष्ठा एवं सप्तसागर-दान के विधान से स्पष्ट हो गया है, जो ध्रुव सत्य है।

रत्नाकरेणैव विधिस्तुवाडवा-
नलस्य पोषं तनुते यथा प्रभुः।
तथाकरोत्कांचनसप्तसागर-
दानेन वै वाडववह्निपोषणं ॥२०॥

भावार्थः—जिस प्रकार रत्नाकर द्वारा ब्रह्मा वाडवानल का पोषण करता है, उसी प्रकार सोने के सप्तसागर-दान से राजसिंह ने भी वाडवानल [ब्राह्मणों की जठराग्नि] का पोषण किया।

ततस्तुलामंडपसंप्रविष्टः
श्रीराजसिंहः परिवारयुक्तः।
तुलाप्रयुक्तं सकलं विधानं
प्रकल्प्य पूर्णाहुतिमत्र कृत्वा ॥२१॥

भावार्थः—इसके बाद राजसिंह ने तुला-मंडप में सपरिवार प्रवेश किया। तुला से संबंधित समस्त विधान कर उसने पूर्णाहुति दी तथा

तुलाच्छदंडस्थहरी सुशाल-
ग्रामं करे दृष्टिमयं निधाय।
स्पृष्टायुधः शुक्लपटः सितस्रक्
शृतस्फुरत्पौत्रविचित्रवाक्यः ॥२२

भावार्थः—सुन्दर तुला-दण्ड पर स्थित विष्णु का ध्यान कर हाथ में शालग्राम की मूर्ति ली और आयुध को स्पर्श किया। तब उसने श्वेत वस्त्र और श्वेत माला धारण कर रखी थी। वह उस समय चंचल पौत्र के विचित्र वचन सुन रहा था।

श्रुतश्रुतिर्ब्रह्मपरायणश्च
ततस्तुलां हेमतुलामनल्पां ।
मुदा समारुह्य नृपोवदद्वा
दिव्या: सुदासी: प्रति दानशौंड: ।।२३।।

भावार्थः—वेदो के श्रोता एवं भगवद्भक्त राजसिंह विशाल स्वर्ण-तुला पर प्रसन्नतापूर्वक आरूढ़ हुआ । तब उस दानवीर ने दासियों से कहा कि

सुवर्णमुद्रापरिपूरिता: शुभा:
समानयंत्वेव जवेन कोथली: ।
ताभिर्धृतास्ता बहुशस्तुलापुटे
परा: समानेतुमिमास्ततो गता: ।।२४।।

भावार्थः—सुवर्ण-मुद्राओं से भरी थैलियाँ दौड़-दौड़ कर लाओ । दासियों ने तुला के पलड़े पर वे थैलियाँ कई बार रखीं । फिर वे अन्य थैलियां लेने गईं ।

अत्रांतरे वाप्यवदद्धराधवो
न्यूनं सुवर्णं यदि वाभवेत्तदा ।
सप्तस्वथो सागर एक उत्तम
आनीयतामाशु सुवर्णनिर्मित: ।।२५।।

भावार्थः—इसी बीच पृथ्वीपति राजसिंह ने फिर कहा कि यदि सोना थोड़ा हो तो सात सागरों में से सोने का एक सागर शीघ्र ले आओ ।

गरीवदासाख्यपुरोहितेन
तदोक्तमेव नृपतिं प्रतीति ।
अपेक्षितैवात्र हि सागरस्य
युक्ता नृपेंदो. समता तुलाया: ।।२६।।

भावार्थः—तब पुरोहित गरीबदास राजसिंह से बोला कि हे राजन् ! आप नृप-चन्द्र है । तुला की समता के लिये आप द्वारा सागर का चाहा जाना उचित है ।

एतादृशं काव्यमहो सुनव्यं
पुरोधसोक्तं किल भव्यभव्यं।
श्रुत्वा नृपालोभवदेत्र तुष्टः
स्मेराननो दानिगणे विशिष्टः ॥२७॥

भावार्थः—पुरोहित के उक्त नूतन एवं सुन्दर काव्य को सुनकर दान-दाताओं में श्रेष्ठ राजसिंह प्रसन्न हुआ। उसका मुख मन्द-हास्य से पूर्ण हो गया।

त्रियुङ्नवसहस्रकप्रमिततोलकप्रोल्लस-
त्सुवर्णपरिपूरितां किल तुलां सुवर्णोद्भवां।
विधाय पुरुहूतवत्क्षितितले महादानस-
द्विधानकृतिपूर्वकं जयति राजसिंहो नृपः ॥२८॥

भावार्थः—महादान के विधान के अनुसार सुवर्ण-तुलादान कर नृपति राजसिंह पृथ्वी पर इन्द्र के समान सुशोभित हुआ। तुला में बारह हजार तोले सोना चढ़ा।

समस्तदेवावलिशोभितेयं
दिक्पालमालाकलितातिदृश्या।
अलं सुवर्णाच्छसुवर्णपूर्णा
हैमी तुला मेरुनिभा विभाति ॥२९॥

भावार्थः—समस्त देवताओं से सुशोभित, दिक्पालों से अलंकृत, प्रचुर दृश्यों से संपन्न तथा पर्याप्त सुवर्ण से परिपूर्ण यह सुवर्ण-तुला मेरु-पर्वत के समान सुशोभित है।

सुवर्णमतुलं प्राप्य यस्तत्त्यागी स उच्चतां।
धत्ते तन्नमनं सृष्टं सुवर्णतुलयोचितं ॥३०॥

भावार्थः—अमित सोने को पाकर जो व्यक्ति उसका दान करता है, वह ऊँचा उठता है। इसलिये महाराणा की तुलना में सुवर्ण-तुला का झुक जाना उचित ही था।

उच्चैः स्थितं नृपं वीक्ष्य जाता सर्वांगसुंदरी।
सुवर्णपूर्णा विनता कुलस्त्रीव-तुलोचितं ॥३१॥

भावार्थः—नृपति को उच्च स्थान पर देखकर सुवर्ण-पूर्ण एवं सर्वांगसुन्दरी कुलीन स्त्री के समान तुला का झुक जाना उचित था।

अमरसिंहशुभाभिधमद्भुतं
सुभगपौत्रवरं मधुरोक्तिकं।
कनककांततुलास्थितमादरा-
रसमतनोन्नृपतिः प्रियतामयः ॥३२॥

भावार्थः—भाग्यशाली एवं मधुरभाषी ज्येष्ठ पौत्र अमरसिंह को राजसिंह ने आदर एवं स्नेह से सोने की सुन्दर तुला पर बैठा लिया।

एवं तुलादानविधिं प्रकल्प्या-
भवत्कृतार्थो नृपराजसिंहः।
पूर्णा तुला सर्ववुधैः सदुक्तो
विचित्रमत्रास्ति बुधोक्तिमध्ये ॥३३॥

भावार्थः—इस तरह तुला-दान की विधि संपन्न कर नृपति राजसिंह कृतार्थ हो गया। तव विद्वानों ने राजसिंह से कहा कि तुला पूर्ण हो गई। विद्वानों के इस कथन में विचित्रता है।

न ममेति त्यागवाक्याद्दाने ज्ञाने तथेरितात्।
कर्मज्ञानोद्भवसुखं राजसिंह त्वयार्जितं ॥३४॥

भावार्थः—दान और ज्ञान के संबंध में त्यागपूर्ण यह वात कहकर कि यह मेरा नहीं है, हे राजसिंह! आपने कर्म-जन्य एवं ज्ञान-जनित सुख प्राप्त कर लिया।

जलाशयोत्सर्गसुसप्तसागर-
दानस्फुरत्स्वर्णतुलाभिधानकं।
कर्मत्रयं निर्मितवान्नरेशः
पापत्रयं हर्त्तुमिहेति कारणात् ॥३५॥

भावार्थः—तीन प्रकार के पापों का नाश करने के लिये महाराणा ने यहाँ तीन तरह के कर्म किये— जलाशय की प्रतिष्ठा, 'सप्तसागर' और सुवर्ण-तुला का दान ।

त्रयीमहातर्कसमर्थकत्व-
कृते तु लोकत्रयतुष्टिसृष्ट्यै ।
गुणत्रयोद्भूतविकारशांत्यै
त्रिमूर्त्तिमद्ब्रह्मसमर्पणाय ।।युग्मं।। ३६।।

भावार्थः—तीन महातर्क समर्थ बनें, तीनो लोकों में सन्तोष उत्पन्न हो, तीनों गुणों से उत्पन्न विकारों का शमन हो तथा यह संसार त्रिमूर्तिमय ब्रह्म के सम्मुख अपना समर्पण कर दे, इसलिये भी उक्त तीन कर्म किये गये ।

त्रिभिर्मखैरेभिरथास्य जातं
शताश्वमेधीयफलं हि मन्ये ।
तदिंद्रताकृद्धरणींद्रता तत्
श्रीराजसिंहस्य विभाति भव्या ।।३७।।

भावार्थः—मैं मानता हूँ कि इन तीन यज्ञों से महाराणा को सौ अश्वमेध यज्ञों के फल की प्राप्ति हुई है । इस प्रकार इन्द्रत्व प्राप्त करनेवाले राजसिंह का पृथ्वी पर प्रभुत्व अतिशय सुशोभित है ।

ग्रामौघदानं गजराजिदानं
हयालिदानं धरणीप्रदानं ।
गोवृंददानं नृपतिः प्रकल्प्य
नानाविधं दानमथातितुष्टः ।।३८।।

भावार्थः—तत्पश्चात् ग्राम-दान, गज-दान, अश्व-दान, पृथ्वी-दान एवं कई प्रकार के अन्य दान देकर राजसिंह सन्तुष्ट हुआ ।

तुलाकृते मेरुरहो गृहीत-
स्त्वया यदा देव तदैव जातः ।
स शंकरः श्रीधर एष इंद्रो
हिरण्यगर्भश्च कविस्वरूपः ॥३९॥

भावार्थः—हे राजन् ! तुला-दान करने के लिये आपने ज्यों ही तुला का मेरु ग्रहण किया, त्यों ही आप शंकर, श्रीधर, इन्द्र, हिरण्यगर्भ और कवि स्वरूप हो गये। यह आश्चर्य है।

द्विजपतिगुरुभास्वन्मोददा स्वर्णपूर्णा
विविधविबुधसेवा मंडपाडंबराभा ।
दिगधिपकृतशोभा सिद्धगंधर्वगीताऽ-
भवदतुलतुला ते मेरुरेव द्वितीयः ॥४०॥

भावार्थः—हे राजसिंह ! आप की यह अतुलनीय तुला दूसरा मेरु पर्वत ही है। देखिये, द्विजपति एवं गुरु से सुशोभित होकर यह आनन्द दे रही है, स्वर्ण से परिपूर्ण है, यहाँ अनेक विबुध विराजमान हैं, मंडपों के आडंबर शोभा पा रहे हैं, दिशाओं के अधिपतियों से यह अलंकृत है तथा सिद्ध और गंधर्व इसकी स्तुति कर रहे हैं।

आसीद्भास्करतस्तु माधवबुधोऽस्माद्रामचंद्रस्ततः
सत्सर्वेश्वरकः कठोंडिकुलजो लक्ष्म्यादिनाथस्ततः ।
तेलंगोस्य तु रामचंद्र इति वा कृष्णोस्य वा माधवः
पुत्रोभून्मधुसूदनस्त्रय इमे ब्रह्मेशविष्णूपमाः ॥४१॥

भावार्थः—भास्कर का पुत्र माधव था। माधव के पुत्र हुआ रामचन्द्र और रामचन्द्र के सर्वेश्वर। सर्वेश्वर का पुत्र था लक्ष्मीनाथ, जो कठोंड़ी कुल में उत्पन्न हुआ। उसके हुआ तेलंग रामचन्द्र। उस रामचन्द्र के ब्रह्मा, शिव और विष्णु के सामन तीन पुत्र हुए— कृष्ण, माधव और मधुसूदन

यस्यासीन्मधुसूदनस्तु जनको वेणी च गोस्वामिजाऽ-
भून्माता रणछोड एष कृतवान्राजप्रशस्त्याह्वयं।
काव्यं राण गुणौधवर्णनमयं वीरांकयुक्तं महत्
पूर्णः सप्तदशोत्र सर्ग उदगाद्वागर्थसर्गस्फुटः ॥४२॥

भावार्थः—जिसका पिता मधुसूदन और माता गोस्वामी की पुत्री वेणी है, उस रणछोड़ ने राजप्रशस्ति नामक काव्य की रचना की। इस काव्य में महाराणा के गुणों का वर्णन है तथा योद्धाओं का सुन्दर जीवन-चरित अंकित है। यहाँ उसका सत्रहवाँ सर्ग संपूर्ण हुआ, जिसके शब्द और अर्थ दोनों सुन्दर हैं।

[इति सप्तदशः सर्गः सम्पूर्णः ।]

अष्टादशः सर्गः

[उन्नीसवीं शिला]

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

घांसो दिव्यगुढो तथा सिरथलः सालोल आलोदको
मज्झेरोपि धनेरियो धनमयो झाडादिका सादडी।
अंवेरी शुभ ऊसरोल उदितश्रीमानसानो पुन-
र्भावो द्वादशसंख्यया परिमितान्ग्रामानिमानेकदा ॥१॥

भावार्थः—घासा, गुढा, सिरथल, सालोल, आलोद, मज्झेरा, धनेरिया, झाड़-सादड़ी, आंवेरी, ऊसरोल, असाना और भावा नाम के बारह गांव, जिनका किसी समय

श्रीमद्राजसमुद्रसुंदरतरोत्सर्गेग्रहारीकृतान्
श्रीराणामणिराजसिंहनृपतिर्धन्यः पुरोधोविधि।
विप्राणाय गरीवदासविलसन्नाम्ने मुदा दत्तवा-
न्सर्वाध्यक्षवराय सर्वविषये चित्तानुसंधानिने ॥२॥

भावार्थः—अग्रहार किया गया था, राजसमुद्र की प्रतिष्ठा के अवसर पर महाराणा राजसिंह ने सबों की देख-रेख करनेवाले एवं सब विषयों के परामर्शदाता पुरोहित गरीबदास को सहर्ष प्रदान किये।

गरीवदासाख्यपुरोहिताय
ग्रामानिमान्द्वादशसंमितांस्तु ।
दत्त्वा ददौ ब्राह्मणमंडलाय
ग्रामान्धरां भूरिहलप्रमाणां ॥३॥

भावार्थः—पुरोहित गरीबदास को उपर्युक्त बारह गांव प्रदान कर राजसिंह ने अन्य ब्राह्मणों को अनेक गांव तथा कई हलवाह भूमि प्रदान की।

ब्रह्मार्पणं कर्म समस्तमेतत्
ब्रह्मण्यदेवः परिकल्प्य नून।
गृह्णन् द्विजेभ्यः श्रुतिनिर्मिताशीः
शतं जयत्येष महीमहेंद्रः ॥४॥

भावार्थः—समस्त कर्म को ब्रह्मार्पण करके धर्म-निष्ठ नृपति ने ब्राह्मणों से वेदोक्त आशीर्वाद प्राप्त किया—"यह पृथ्वीपति सौ वर्ष पर्यन्त शासन करे।"

वर्षंति मेघा बहवो मुहुः शनै-
र्दिनेत्र[ते]नानुमितं यदग्रतः।
दृष्ट्वोत्सवं ते हरिरेष सार्थकं
कर्त्तुं सहस्रं स्वदृशां समागतः ॥५॥

भावार्थः—हे राजन्! बहुत से मेघ यहां दिन में बार-बार मंद-मंद बरस रहे हैं। अतः अनुमान है कि आप के इस उत्सव को प्रत्यक्ष रूप में देखकर अपने सहस्र नेत्रों को सफल करने के लिये इन्द्र स्वयं आ पहुँचा है।

यत्पौर्णमास्यां कृतवान्नरेंद्रः
कर्मत्रयं तेन तु पूर्णिमायां।
यथैव चंद्रः परिपूर्णकांति-
स्तथा प्रपूर्णातिरुचिर्नृपः स्यात्। ६॥

भावार्थः—महाराणा ने उपर्युक्त तीन काम पूर्णिमा के दिन संपन्न किये। अतः उसकी रुचि उसी प्रकार परिपूर्ण हो, जिस प्रकार पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा की कान्ति पूर्ण होती है।

मनोरथः पूर्णतमोस्य भूया-
त्फलं तथा स्यात्परिपूर्णमेव।
पूर्णं परं ब्रह्म तथातितुष्टं
प्रमोदसम्पूर्णतमो नृपोस्तु ॥७॥

भावार्थः—राजसिंह का मनोरथ परिपूर्ण हो, फल भी परिपूर्ण हो, पूर्णपरब्रह्म इस पर अति प्रसन्न हो और वह स्वयं आनन्द से परिपूर्ण हो।

निर्वर्त्य सर्वं स्वतुलाविधानं
पूर्णाहुतिप्रांतमनन्यचित्ता ।
तुलाधिरूढातुलपट्टराज्ञी
जातैव सौभाग्यसुपुण्यपूर्णा ॥८॥

भावार्थः—पूर्णाहुति पर्यन्त अपने सकल तुला-विधान को एक मन से संपन्न कर सौभाग्यवती एवं पुण्यवती अतुलनीय पटरानी ने तुलाधिरोहण किया।

सुवर्णवर्णं जितवत्यलं रुचा
यशोविशेषेण च राजतीं रुचिं ।
श्रीपट्टराज्ञीं किल जेतुमुद्यताऽ-
तुलाकरोद्रूप्यमयीं तुलां ततः ॥९॥

भावार्थः—अतुलनीय पटरानी अपनी कान्ति से सुवर्ण की कान्ति को जीत चुकी थी। अमित यश के द्वारा चांदी की कान्ति को जीतने के लिये ही तैयार होकर मानों तब उसने चांदी का तुलादान किया। तत्पश्चात्

निर्वर्त्य सांगं सकलं तुलाविधिं
पूर्णाहुतिप्रांतमनंतमोदयुक् ।
गरीवदासाख्यपुरोहितस्तदा
सुवर्णपूर्णां कृतवान्महातुलां ॥१०॥

भावार्थः—पूर्णाहुति पर्यन्त सपूर्ण रूप से विधिपूर्वक तुला-कार्य को सपन्न कर पुरोहित गरीवदास ने सहर्ष सुवर्ण-तुलादान किया।

ततः प्रसन्नो रणछोडराय-
नामानमात्मप्रियमात्मजं सः ।
आरोप्य रूप्यातिलसत्तुलायां
प्रमोदपूर्णोभवदेव तूर्णं ॥११॥

भावार्थः—फिर उसने उसी समय अपने प्रियपुत्र रणछोड़राय से प्रसन्नतापूर्वक चांदी की तुला करवाई और वह अत्यन्त आनंदित हुआ।

सर्वेषु वर्णेषु यतः सुवर्णवां-
स्तुलां सुवर्णप्रचुरां ततोतनोत्।
रूप्याभकीर्त्तिस्फुरितेन राजतीं
तुलां तथाकारयदेष सूनुना ॥१२॥

भावार्थः—गरीबदास सब वर्णों में उत्तम वर्ण का है, अतः उसने सुवर्ण की तुला की तथा उसके पुत्र की कीर्त्ति चांदी के समान उज्ज्वल है, अतः उसने चांदी की तुला करवाई।

तोडास्थितेः श्रीयुतरायसिंह-
भूपस्य माता रजतेन पूर्णां।
तुलामतुल्यामकरोदुदारो-
ल्लसन्मना धर्मधुरंधराभूत् ॥१३॥

भावार्थः—तोड़ा के राजा रायसिंह की उदार माता ने प्रसन्नतापूर्वक चांदी का अनूठा तुलादान किया। इस प्रकार वह धर्मधुरंधरा हो गई।

चोहानवंश्यस्तु सलूंबरिस्थः
स केसरीसिंह इति प्रसिद्धः।
रावस्तुलां रूप्यमयीं विधाय
धन्योभवद्धर्ममयो विशुद्धः ॥१४॥

भावार्थः—सलूंबर के राव चौहान केसरीसिंह ने रजत-तुलादान किया। तुलादान कर अतिपवित्र एवं धर्म-निष्ठ वह राव धन्य हो गया।

स चारणो बारहटः प्रसिद्धः
सत्केसरीसिंह इति प्रपूर्णां।
रूप्येण रूप्याभयशःप्रकाशं
कुर्वंस्तुलां तामकरोदुदारः ॥१५॥

भावार्थः—चाँदी के समान उज्ज्वल यश-प्रकाश को फैलाते हुए, उदार चारण केसरीसिंह बारहठ ने चाँदी का तुलादान किया।

अस्मिन्दिने राजसमुद्रनामकः
प्रोक्तस्तडागो गिरिमंदिरं महत्।
प्रोक्तं नरेंद्रेण च राजमंदिरं
राजादिशब्दं नगरं पुरं तथा ॥१६॥

भावार्थः—इस दिन महाराणा ने तड़ाग का नाम 'राजसमुद्र' रखा। इसी प्रकार उसने नगर को तथा पर्वत पर बने विशाल प्रासाद को 'राजनगर' और 'राजमन्दिर नाम' दिया।

अथात्र घस्रे तु सहस्रनेत्र-
समानसंपत्तिविराजमानः।
श्रीराजसिंहो वलिकर्णभोज-
श्रीविक्रमार्कोपदानिवीरः ॥१७॥

भावार्थः—उसी दिन इन्द्र के समान वैभवशाली एवं वली, कर्ण, भोज तथा विक्रमादित्य के समान दानवीर राजसिंह ने

पूर्वेरितान्धान्यधराधरांस्ता-
न्पक्वान्नशैलानपि शर्कराद्रीन्।
गुडादिखड दिकपर्वतांश्च
ददौ द्विजेभ्य इहागतेभ्यः ॥१८॥

भावार्थः—पूर्वोक्त धान्यों, पक्वान्नों, शर्करा, गुड़, खाँड आदि के पहाड़ वहाँ आये हुए ब्राह्मणों को प्रदान किये।

ततो गिरीणामभत्त्वलक्ष्यता
चित्रं हि तेषामभवज्जनु पुनः।
आनीय धान्यादि सुकार्यकृज्जनैः
कृतं कृतार्थैरिह सेवया प्रभोः ॥१६॥

भावार्थः—तब वे पर्वत अदृश्य हो गये। लेकिन आश्चर्य है कि स्वामी की सेवा से कृतार्थ हुए पुण्यात्मा लोगों ने धान्य आदि लाकर वहाँ पहाड़ों को फिर से जन्म दे दिया।

नैतादृशं जन्म न वाप्यलक्ष्यता
ईदृग्गिरीणामभवज्जनुः पुनः।
एते स्थिता एव तु याचकावले-
र्गृहव्रजे मित्र न चित्रमत्र तु ॥२०॥

भावार्थः—पर्वतों का इस प्रकार न तो जन्म, न लोप और न पुनर्जन्म हुआ है। वे तो याचकों के घरों में पहुँच गये हैं। इस कारण हे मित्र ! यहाँ आश्चर्य करने जैसी बात नहीं है।

अत्रोत्सवे सद्घृतवापिकाः पुन-
र्मुहुः कृताः कार्यकरैर्महाजनैः।
मुहुर्मुहुस्ता रिरिचुर्न चित्रता
पानीयवाप्यो रिरिचुस्तदद्भुतं ॥२१॥

भावार्थः—उत्सव में काम करनेवाले महाजनों ने घृत की अनेक सुन्दर वापिकाएँ बनाईं, जिनका निरन्तर उपयोग होने पर भी वे खाली नहीं हुईं। यह आश्चर्य की बात नहीं है। आश्चर्य यह है कि तब लोगों द्वारा उपयोग होने पर पानी की वापियां खाली हो गईं।

अस्य श्रीप्रेक्षिलोकोक्तिर्दिक्पालांशयुतो ह्ययं।
इंद्रप्रचेतोधनदश्रीशानांशाधिकत्वभाक् ॥२२॥

भावार्थः—राजसिंह के ऐश्वर्य को देखकर लोग कहने लगे कि यह दिक्पालों के अंश से युक्त है तथा इसमे इन्द्र, वरुण, कुबेर और शिव का अंश अधिक मात्रा में है।

ततो वहुतरं भव्यं द्रव्यं दत्तं पुरोधसे ।
ऋत्विग्भ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च प्रभुणा सादरं मुदा ।।२३।।

भावार्थः—इसके वाद महाराणा ने पुरोहित को तथा ऋत्विजों एवं ब्राह्मणों को वहुतसा द्रव्य सादर एवं सहर्ष प्रदान किया ।

प्रभो राजसमुद्रस्य रिंगत्तुंगतरंगकैः ।
तटस्थद्विजदारिद्र्यद्रुमा दूरीकृता ध्रुवं ।।२४।।

भावार्थः—हे स्वामिन् ! राजसमुद्र की लहराती हुई उत्तुंग तरंगों ने तट पर खड़े ब्राह्मणों के दारिद्र्य रूपी वृक्षों को सदा के लिये वहा दिया है ।

मन्ये राजसमुद्रस्य लोलैः सलिलसंचयैः ।
याचकालेर्दरिद्राख्यपंकप्रक्षालनं कृतं ।।२५।।

भावार्थः—राजसमुद्र की तरंगायित जल-राशि ने मानो याचकों के दारिद्र्य रूपी पंक को धो दिया है ।

वसन्राजसमुद्रस्य तटे सद्द्वार्वतीपुरि ।
द्राग्दरिद्रसुदाम्ने मे श्रीदः स्याः श्रीपते नृप ।।२६।।

भावार्थः—हे श्री-पति राजसिंह ! राजसमुद्र के तट पर, द्वारका [कांकरोली] नगरी में रहते हुए आप मुझ दरिद्र सुदामा को अविलंव लक्ष्मी प्रदान करें।

तटे राजसमुद्रस्य वसन् श्रीश नृप श्रियं ।
द्राग्दरिद्रसुदाम्ने मे देहि वाक्तंडुलार्पणात् ।।२७।।

भावार्थः—हे श्री-पति नृप ! आप राजसमुद्र के तट पर विराजमान हैं और मैं दरिद्र सुदामा हूं, जिसने वाणी रूप तंडुल अर्पण किये हैं । अतः मुझे अविलंव लक्ष्मी प्रदान करें ।

सप्तसागरदानेन तत्सप्तपुरुषार्जितं ।
द्विजानां दीर्घदारिद्र्यं प्रभो दूरीकृतं त्वया ।।२८।।

भावार्थः—हे स्वामिन् ! 'सप्तसागर' दान करके आपने ब्राह्मणों के सात पीढ़ियों से अर्जित दीर्घ दारिद्र्य को नष्ट कर दिया।

सप्तसागरदानस्य सुवर्णौघप्रवाहतः।
दूरीकृतस्त्वया राजन्द्विजदारिद्रयसद्द्रुमः ॥२९॥

भावार्थः—हे राजन् ! 'सप्तसागर' दान की सुवर्ण-राशि के प्रवाह से आपने ब्राह्मणों के दारिद्र्य रूपी विशाल वृक्ष को बहा दिया है।

दत्तैर्हेमतुलास्वर्णैः सुवर्णगिरिसन्निभान् ।
कुर्वन्सतां गृहाँस्त्वं तद्दारिद्र्यदमनो ध्रुवं ॥३०॥

भावार्थः—सोने की तुला का स्वर्ण दान कर आपने सज्जनों के घरों को सुमेरु पर्वत के समान बना दिया और इस प्रकार उनके दारिद्र्य का दमन हमेशा के लिये कर दिया।

तुलासुवर्णदानेन राजसिंह प्रभो त्वया।
दूरीकृता द्राग्विदुषामतुला साधमर्णता ॥३१॥

भावार्थः—हे महाराणा राजसिंह ! तुला के स्वर्ण-दान से आपने विद्वानों के अमित ऋण को अविलंब दूर कर दिया।

— — — —
— — — —
— — — खं
शेते राजसमुद्ररूपमपरं रूपं दधानोंबुधिः ॥३२॥

भावार्थः—राजसमुद्र का दूसरा रूप धारण कर अंबुधि सो रहा है [?]

मध्ये प्रोल्लोलकल्लोलाः फेनाः स्फटिककूटभाः ।
सारसाः सरसास्तीरे भांत्यस्य नवका वकाः ॥३३

भावार्थः—राजसमुद्र में उत्ताल तरंगें और स्फटिक-राशि के समान फेन तथा उसके तट पर प्रेमासक्त सारस एवं सुन्दर बगुले शोभा पाते हैं।

मुक्त्वा स्वीयं गृहं वै वसति किल तटे यस्य सद्द्वारकां तां
कृत्वा रम्यां पुरीं द्राग्यवनभयमयः केशवोद्वारकेशः।
गोमत्युत्तुंगसंगः [u u u ?] विगदसच्छंखचक्रोच्छपद्मः
श्रीराणाराजसिंह प्रभुवर भवः श्रीतडागस्समुद्रः ॥३४॥

भावार्थः—शंख, चक्र, गदा और पद्म को धारण करनेवाले द्वारकेश केशव ने यवन से भयभीत होकर अपना घर छोड़ा दिया। वह अब राजसमुद्र के तट पर, जहां गोमती नदी का विशाल संगम है, सुन्दर द्वारका [कांकरोली] नगरी बसाकर वहां निवास कर रहा है। इस प्रकार आकर राजसमुद्र के तट पर कृष्ण के निवास करने से हे स्वामि-श्रेष्ठ महाराणा राजसिंह! आप का यह जलाशय समुद्र बन गया है।

बिभ्राणः सेतुबंधं गिरिवररुचिरः पूरितो जीवनौघै-
र्नानानद्याप्तसंगः शिवसदनयुतः पोतपंक्त्या प्रसक्तः।
नैतावत्या समुद्रस्तदधिक इति ते भूपते श्रीतडागो
मर्यादां वाडवाग्निं कलयति न च वा क्षारनीरं कदाचित् ॥३५॥

भावार्थः—यहां सेतुबन्ध विद्यमान है, बड़े-बड़े पर्वतों से यह सुशोभित है, इसमें अगाध जल है, अनेक नदियां इसमें गिरी हैं, यहाँ शिव का मन्दिर बना हुआ है तथा इसमे अनेक जहाज तैरते हैं। हे पृथ्वीपति! इन विशेषताओं से आप का यह तड़ाग समुद्र ही नहीं प्रत्युत उससे भी बढ़कर है। क्योंकि यह मर्यादा, वाडवाग्नि और खारे जल को धारण नहीं करता है।

प्रियतममथुराया मंडलाच्चंडकाल-
यवनकलितभीत्यागत्य गोवर्द्धनेशः।
वसति तत्र तडागस्यांतिके त्वन्मुदे त-
ज्जलधिमपरमेनं राजसिंहेति जाने ॥३६॥

भावार्थः—हे राजसिंह ! इस सरोवर को मैं दूसरा समुद्र मानता हूँ। क्योंकि प्रचंड कालयवन के भय से अत्यन्त प्रिय मथुरा-मंडल से आकर गोवर्द्धनेश, आपकी प्रसन्नता के लिये, आपके इस तड़ाग के निकट रहते हैं।

अमावास्यां विना नैव स्पृश्यः सिंधुः सगर्जनः ।
तडागस्ते तदधिकः सदास्पृश्यो विगर्जनः ॥३७॥

भावार्थः—अमावस्या को छोड़कर गरजते हुए सिन्धु को छूना मना है। परन्तु आप का यह तड़ाग समुद्र से बढ़कर है। क्योकि यह गरजता नहीं है और इस कारण सदा स्पृश्य है।

समुद्रयातुः स्वीकारो न कलौ यातुरत्र तु ।
त्वया कृतो यत्स्वीकारो वीरायं सिंधुनोधिकः ॥३८॥

भावार्थः—कलियुग मे समुद्र-यात्रा निषिद्ध है। लेकिन यहाँ आपने उसे स्वीकार किया है। अतः हे वीर ! राजसमुद्र सिन्धु से बढ़कर है।

श्रीराणोदयसिंहसूनुरभवत् श्रीमत्प्रतापः सुत-
स्तस्य श्री अमरेश्वरोस्य तनयः श्रीकर्णसिंहोस्य वा ।
पुत्रो राणजगत्पतिश्च तनयोस्माद्राजसिंहोस्य वा
पुत्रः श्रीजयसिंह एप कृतवान्वीरः शिलालेखितं ॥३९॥

भावार्थः—राणा उदयसिंह के प्रताप, उसके कर्णसिंह, उसके जगतसिंह, उसके राजसिंह तथा राजसिंह के जयसिंह हुआ। उस वीर ने यह शिलालेख उत्कीर्ण करवाया ।

पूर्णे सप्तदशे शते तपसि वा सत्पूर्णिमाख्ये दिने
द्वात्रिंशन्मितवत्सरे नरपतेः श्रीराजसिंहप्रभोः ।
काव्यं राजसमुद्रमिष्टजलधेः सृष्टप्रतिष्ठाविधेः
स्तोत्राक्तं रणछोडभट्टरचित राजप्रशस्त्याह्वयं ॥४०॥

भावार्थः—महाराणा राजसिंह ने संवत् १७३२, माघ शुक्ला पूर्णिमा के दिन जिसकी प्रतिष्ठा करवाई, उस मधुर सागर राजसमुद्र का स्तुतिपरक यह 'राजप्रशस्ति' काव्य है। इसकी रचना रणछोड़ भट्ट ने की।

॥ इति सर्गः १८ ॥

एकोनविंशः सर्गः

[बीसवीं शिला]

॥ ॐ श्रीगणेशाय नमः ॥

लक्ष्मीसत्कांतिचंद्रामृतशुभविषसत्कामधुक्शार्ङ्गधन्व-
न्प्राकट्यः पारिजातामरयुवतिमणीसत्सुराद्योदयश्च ।
शंखाच्छोच्चैःश्रवोयुक्त्रिदशगजमहाभंगसंभूतिरद्धा
धन्वंतर्युद्भवो वांबुभिरिति भवतः क्षीरसिंधुस्तडागः ॥१॥

भावार्थः—हे राजन् ! लक्ष्मी, सुन्दर कान्तिमान् चन्द्र, अमृत, विष, कामधेनु, शार्ङ्ग धनुष, पारिजात, देवांगना, कौस्तुभमणि, सुरा, शंख, उच्चैःश्रवा, ऐरावत, महातरंग, धन्वन्तरि आदि जल से प्रकट हुए हैं। आप का यह सरोवर भी क्षीरसिन्धु है।

कुंभोद्भवप्रकरकृष्टजलो विशुष्को
जातस्ततो लवणनीरमयः समुद्रः ।
कुंभोद्भवप्रकरकृष्टजलोतिवृद्धो
मिष्टस्तवक्षितिप राजसमुद्र एषः ॥२॥

भावार्थः—कुंभ से उत्पन्न अगस्त्य मुनि ने जब समुद्र की जल-राशि को खींचा तब वह सूख गया। फिर पानी खारा हो गया। परन्तु हे महाराणा ! कुंभ-कुल में उत्पन्न आप ने जब रेंहट आदि से जल को खींचा तब आप के राजसमुद्र में जल की वृद्धि हो गई और वह मीठा हो गया।

श्रीद्वारकोद्भवकृते परिमुक्तभूमि-
र्न्यूनः क्वचित्तदुदधिः किल कृष्णवाक्यात् ।
यत्तीरभिन्नधरणीपुरवासिकृष्णो
नूनं सुपूर्ण इति तेऽब्धिवरस्तडागः ॥३॥

भावार्थः—द्वारका को बसाने के लिये कृष्ण के कहने पर समुद्र ने धरती छोड़ दी। इस कारण उसमें कुछ कमी है लेकिन यहाँ तो राजसमुद्र में नहीं बल्कि उसके किनारे अलग से धरती पर बसे नगर में कृष्ण, निवास कर रहा है। अतः आपका यह सरोवर पूरा समुद्र है।

खाते षष्टिसहस्रभूपतनयाः पूर्त्तौ सहस्राण्ययु-
गंगाद्या लवणीकृतावपि परोऽन्यः सेतुबंधेंबुधेः।
खाते पूर्त्तिषु मिष्टसृष्टिषु भवान्यत्सेतुबंधेस्य त-
त्सिंधोरेककृतेरविघ्नसमयान्मन्यामहे धन्यतां ॥४॥

भावार्थः—राजा सगर के साठ हजार पुत्रों ने समुद्र को खोदा था, गंगा आदि हजारों नदियों ने उसे भरा था, खारा उसे किसी दूसरे ने किया था तथा उस पर सेतु का निर्माण भी किसी अन्य द्वारा हुआ था। परन्तु हे राजसिंह! यह सिन्धु अकेले आप की कृति है। इसे आप ही ने निरन्तर खोदा है, जल से पूर्ण किया है, मीठा बनाया है और इस पर सेतु भी बांधा है। हम इसे समुद्र से बढ़कर मानते हैं।

अल्पस्य साम्यं न ददाति कश्चि-
त्समस्य साम्यं न च दृष्टमस्य।
ततो महत्त्वेन जलाशयोयं
प्रोक्तः समुद्रः कविभिर्न चित्रं ॥५॥

भावार्थः—महान् वस्तु की तुलना छोटी वस्तु से कोई नहीं करता। न समान वस्तु से समान वस्तु की तुलना देखने में आई है। तुलना के इस महत्त्व को स्वीकार कर कवियों ने इस सरोवर को समुद्र जो कहा है, उसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

जले निमग्ना ये ग्रामा न ते मग्ना महीपते।
ते लग्ना वरुणद्वारे भग्नास्तत्पापपंक्तयः ॥६॥

भावार्थः—हे पृथ्वीपति! जो गाँव जल-मग्न हो गये हैं, वे डूबे नहीं है, वरुण के द्वार पर लगे हुए हैं। उनके पाप-समूह नष्ट हो गये हैं।

येषां विशिष्टग्रामाणां क्षेत्राण्यत्र जलाशये ।
मग्नानि तीर्थक्षेत्राणि तानि जातानि भूपते ॥७॥

भावार्थः—हे राजन् ! इस जलाशय में बड़े-बड़े गाँवों के जो खेत डूब गये हैं, वे तीर्थ-क्षेत्र बन गये हैं।

ये जन्मिनां जीवनदाः स्थले ते जीवनप्रदाः ।
यादसां च नृणां ग्रामा गुणग्रामभृतोंबुगाः ॥८॥

भावार्थः—जल-मग्न होकर गांव अधिक महत्त्व के बन गये हैं। कारण कि पहले तो वे स्थल पर रहनेवाले प्राणियो को जीवन देते थे पर अब जल-जन्तुओं और मनुष्यों दोनो को जीवन दे रहे हैं।

भूस्था वृक्षा जले मग्नास्तेषां बीजांकुरैर्द्रुमाः ।
जलेभवन्वाटिकातो वरुणस्य त्वया कृता ॥९॥

भावार्थः—पृथ्वी पर स्थित जो वृक्ष जल में डूब गये हैं, उनके बीजांकुरों से जल में अनेक वृक्ष उत्पन्न हो गये हैं। हे राजसिंह ! इस प्रकार आपने वरुण के लिये वाटिका लगा दी है।

बोधिद्रुमो जलस्थायी तपस्तपति दुष्करं ।
प्रवालमालया शाखांगुलीभिः सार्थकाह्वयः ॥१०॥

भावार्थः—जल में रहकर बोधिवृक्ष अपनी शाखा रूपी अंगुलियों में प्रवाल-माला अर्थात् अंकुरों को धारण कर कठोर तप कर रहा है। अतः उसका यह नाम सार्थक है।

वटवृक्षाः स्थितास्तोये तपंति प्रचुरं तपः ।
क्षालयंति जटाजालं नूनमेतेत्र योगिनः ॥११॥

भावार्थः—जल में रहकर वटवृक्ष यहां प्रचुर तपस्या कर रहे हैं और अपने जटा-जाल को धो रहे हैं। सचमुच ये योगी हैं।

त्वत्कीर्त्तिस्वर्णदीभृद्यदुपतिसहितप्राप्तकालिंदिकायु-
र्ग्लानच्छायानुमानात्स्नपनकरगजोत्कुंभसिंदूरसंगात् ।
भ्राजत्सारस्वतौघस्तदिति नरपते ते तडागः प्रतापो
न्यग्रोधा अक्षयाख्याः प्रविदधति पदं युक्तमस्मिन्निकामं ॥१२॥

भावार्थः—हे राजन् ! आप का यह जलाशय प्रयाग है। क्योंकि इसमें आप की कीर्त्ति स्वरूप गंगा शोभा पा रही है। नीली छाया के कारण ऐसा आभास होता है कि कृष्ण के साथ आकर यहाँ यमुना सुशोभित है। स्नान करनेवाले हाथियों के कुंभस्थलो पर लगे सिन्दूर के संसर्ग से यहां सरस्वती नदी का प्रवाह विद्यमान है। अक्षयवट के रूप मे भी यहां वटवृक्ष स्थित हैं।

यथा स्थले तथा जले बुधा वसंति जंतवः ।
विचित्रमत्र शाखिनस्तथा जयंति भूपते ॥१३॥

भावार्थः—हे पृथ्वीपति ! स्थल पर जिस प्रकार विद्वान लोग रहते हैं, उसी प्रकार जल मे जन्तु। आश्चर्य है कि दोनो शाखावर्त्ती हैं।

वनस्थिता द्रुमाः सर्वे वनस्था एव तेऽभवन् ।
युक्तं विशेषो धर्मोऽत्र वरुणस्योपयोगतः ॥१४॥

भावार्थः—जो वृक्ष पहले वन में थे, वे अब भी वन में हैं। वरुण के सम्बन्ध से उनमें यह विशेष धर्म आ गया है, जो उचित है।

पूर्वं यत्र वने सिंहगर्जनानि जलाशये ।
जातेऽत्र जलकल्लोलगर्जनानि जयंत्यलम् ॥१५॥

भावार्थः—हे राजन् ! पहले जिस वन में सिंह-गर्जनाएँ होती थीं, वहां जलाशय के बनजाने पर जल्ल-कल्लोल के गर्जन हो रहे हैं।

वरुणालयतस्तोयानयनात्स जितस्त्वया ।
प्रेक्षंते तन्मृगाक्ष्यस्त्वां पद्मच्छद्मकटाक्षकैः ॥१६॥

भावार्थः—हे राजन् ! वरुण के घर से जल लाकर आपने उसे जीत लिया है। अतः उसकी स्त्रियां आपको मानों कमल-कटाक्षों से देख रही हैं।

कमलाक्षस्त्वयानीतस्तडागे वरुणालयात् ।
कमलाक्ष स्थापितोत्र कमलादानतत्पर ।।१७।।

भावार्थः—हे कमल-नयन, दानवीर ! वरुणालय से विष्णु को लाकर आपने उसकी इस तड़ाग पर स्थापना की है।

प्रदक्षिणास्वागता या माला भूपाल तास्त्वया ।
तडागे वरुणप्रीत्यै प्रेपिताः करुणानिधे ।।१८।।

भावार्थः—हे करुणानिधि ! प्रदक्षिणा करते समय जो मालाएँ प्राप्त हुईं, उन्हें आपने वरुण को प्रसन्न करने के लिये इस सरोवर में अर्पित कर दिया।

वटानां जलमग्नानां जटा राजंति तत्र ते।
मीनाः गृहाणि कुर्वंति नीडानि पतगा इव ।।१९।।

भावार्थः—राजसमुद में जल-मग्न वटवृक्षों की जटाएँ सुशोभित हैं। उनमें मछलियां अपने घर बनाती हैं, जिस प्रकार पक्षी अपने नीड़ का निर्माण करते हैं।

निर्मलो जीवरक्षावृत्द्विजरक्षणकृत्त्वया ।
नवसूत्रार्पणेनायं तडागो द्विजतामितः ।।२०।।

भावार्थः—जीवों एवं द्विजों की रक्षा करनेवाले इस निर्मल तड़ाग का आपने नौ सूत्रों से जो परिवेष्टन किया है, उससे यह ब्राह्मणत्व को प्राप्त हो गया है।

पूर्वपश्चिमसुदक्षिणोत्तर-
देशभूमिषु न दृष्टिगोचरः ।
ईदृशः खलु जलाशयो बुधैः
सिंधुरुक्त इति नात्र चित्रता ।।२१।।

भावार्थः -पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर दिशा के किसी भी प्रान्त में ऐसा जलाशय देखन में नहीं आया है। विद्वानों ने इसे सिन्धु जो कहा है, उसमें आश्चर्य करने जैसी बात नही है।

श्रीराजनगरस्यास्य बहिरद्भुतभूतले।
विराजते राजसिंहो गाडामंडलमातनोत् ॥२२॥

भावार्थः—राजनगर के बाहर अद्भुत भूतल पर गाडामडल[1] बनाकर राजसिंह सुशोभित हुआ।

तत्र द्विजातयो नानादेशात्प्राप्ताः सुवेषिणः।
षट्चत्वारिंशदाख्यायुक्सहस्रमितयः स्थिताः ॥२३॥

भावार्थ—नाना देशों से चलकर वहां छियालीस हजार द्विज उपस्थित हुए। उन्होंने सुन्दर वेष धारण कर रखे थे।

एतावंतो ग्रामनामसहिताः अधिकाः पुनः।
ब्राह्मणास्त असंख्याता आगता नात्र संशयः ॥२४॥

भावार्थः—इन लोगों के गाँवों और नामों का पता था। इनके अतिरिक्त और भी असंख्य ब्राह्मण आये। इसमें सशय नहीं है।

ततो गरीवदासाख्यः पुरोहितवरो हितः।
तत्र स्थित्वा स्वयं स्वाज्ञाकारिणः कार्यकारिणः ॥२५॥

भावार्थः—तत्पश्चात् बड़ा पुरोहित गरीवदास वहाँ उपस्थित हुआ। अपने आज्ञाकारी कर्मचारियों को

स्थापयित्वा स्वहस्ताभ्यां तद्धस्तैरप्यहर्निशं।
सप्तसागरदानस्य तुलादानस्य वा प्रभोः ॥२६॥

---

१. गाडामंडल=हाता।

भावार्थः—नियुक्त कर उसने खुद ने और उन लोगों ने अपने हाथों से, रात-दिन, राजसिंह के सप्तसागर एवं तुलादान का

धनं श्रीपट्टराज्ञाश्च तुलाद्रव्यं तथा बहु।
स्वकल्पित स्वर्णतुलादानस्य बहु हाटक ॥२७॥

भावार्थः—धन, पटरानी के तुलादान का प्रचुर द्रव्य, पुरोहित की सोने की तुला का अमित स्वर्ण तथा

रणछोडरायकृतं तुलाद्रव्यं तदामितं।
दत्त्वा पूर्वोक्तविप्रेभ्यः सदापूर्वमुदान्वितः ॥२८॥

भावार्थः—रणछोड़राय के तुलादान का बहुत सा द्रव्य पूर्वोक्त ब्राह्मणों को दिया। पुरोहित को तब इतना हर्ष हुआ, जितना पहले कभी नहीं हुआ। इस प्रकार दानों की धन-राशि देकर

विवेकादरपूर्वं स तान्व्यधात्तुष्टमानसान्।
अन्नदानं बहुविधं कृतवांस्तत्र भूपतिः ॥२९॥

भावार्थः—उसने विवेक और आदर से उन ब्राह्मणों को सन्तुष्ट किया। राजसिंह ने वहाँ अनेक प्रकार का अन्न-दान दिया।

ततः सभामंडपस्थो राजसिंहो महीपतिः।
द्विजेभ्यो याचकेभ्यश्च चारणेभ्यो दिवानिशं ॥३०॥

भावार्थः—तदनन्तर सभामंडप-स्थित पृथ्वीपति राजसिंह ने रात-दिन ब्राह्मणों को, याचकों को, चारणों को,

वंदिभ्यः सर्वलोकेभ्यः सुवर्णं दिव्यवर्णकं।
रूप्यमुद्रास्तथाऽक्षुद्रा अलंकारांस्तथा बहून् ॥३१॥

भावार्थः—वन्दीजनों एवं अन्य सब लोकों को उत्तम स्वर्ण, रुपये, प्रचुर आभूषण,

वासांसि हेमहृद्यानि वाजिनो जितवाजिनः ।
उत्तुंगमातंगगणान्दत्त्वा संमोदमादधे ।।३२।।

भावार्थः—ज़रीन वस्त्र, वेगवान् अश्व तथा बड़े-बड़े हाथी प्रदान किये। दान देकर वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

हलानां बहलानां च ताम्रपत्राणि भूपतिः ।
ग्रामाणां विलसद्धान्यग्रामाणां दत्तवाँस्तथा ।।३३।।

भावार्थः—महाराणा ने कई हलवाह भूमि एवं लहलहाते धान्यों से समृद्ध अनेक गांवों के ताम्रपत्र प्रदान किये।

याचकैः कनकविक्रयं परं
कर्त्तुमत्र कनकं प्रसारितं ।
वीक्ष्य राजनगरं महाजना-
स्तत्सुवर्णमयमेवमूचिरे ।।३४।।

भावार्थः—याचकों ने वेचने के लिये जब वहां सोना फैलाया तब उस प्रचुर स्वर्ण को देखकर महाजनों ने राजनगर को सुवर्णमय कहा।

याचकैस्तुरगविक्रयायतान्
स्थापिता न्दिपणिषूच्चवाजिनः
वीक्ष्य राजनगरं जनोव[द]-
त्सिंधुदेशमिति सिंधुसुंदरं ।।३५।।

भावार्थः—वेचने के लिये याचकों ने जब बड़े-बड़े अश्व बाजारों में ला रखे, तब उन्हें देखकर लोगो ने कहा कि राजनगर समुद्र के समान सुन्दर सिंधुदेश है।

याचकैर्भवत एव भूपते
याचनान्निजगुणोपि विस्मृतः ।
स्थापितं तु धनरञ्जणे मन-
स्तैर्यतो विगुणतास्ति तेष्वतः ।।३६।।

भावार्थः—हे महाराणा ! आप से याचना कर याचक लोग अपना गुण ही भूल गये हैं। यहीं नहीं, उन्होंने अपने मन को धन की रक्षा में लगा दिया है। इस कारण उनका गुण बदल गया है।

तुलाकर्त्तुर्द्रव्यं क्षितिप भवतः प्राप्य गुणिन-
स्तुलाकर्त्तारोल्पाधिकमितिकृते विक्रयविधौ।
स्वविश्वासार्थं ते बहुलकनकस्य प्रतिपलं
तुलाकर्त्री[स्त्वं वै] जयसि रचयन्याचकगुणान् ॥३७॥

भावार्थः—हे भूपति ! तुलादान करनेवाले आप से धन पाकर याचक उद्योगी बन गये हैं। दान में प्राप्त अमित स्वर्ण को बेचते समय अपने विश्वास के लिये कि यह अधिक है या कम, उसे वे प्रतिपल तोलते हैं। इस तरह आपने उनके याचक गुणों को व्यापारियों के गुणों में बदल दिया है।

निमंत्रणायातधराधवेभ्यः
स्वेभ्यः परेभ्यः सकलद्विजेभ्यः।
वैश्यादिकेभ्योऽखिलमानुषेभ्यो
वासांसि गांगेयगुणोत्तमानि ॥३८॥ युग्मं ॥

भावार्थः—निमंत्रण पाकर आये हुए राजाओं, अपने-परायों, समस्त ब्राह्मणों तथा वैश्य आदि मनुष्यों को ज़रीन वस्त्र

अश्वांस्तथा वातगतीन्गजेंद्रा-
न्गिरिप्रमाणान्मणिभूषणानि।
दत्त्वा विवेकाद्गमनाय तेभ्य
आज्ञां ददानो जयति क्षितींद्रः ॥३९॥

भावार्थः—वायु-वेगी अश्व, पर्वताकार हाथी एवं मणि-आभूपण यथायोग्य देकर राजसिंह ने उनको अपने-अपने घर लौटने की आज्ञा प्रदान की।

निमंत्रितेभ्योखिलभूमिपेभ्यो
दुर्गाधिपेभ्यो निजबांधवेभ्यः ।
स्वेभ्यः परेभ्यः कनकोत्तमानि
वासांसि चाश्वान्पृशदश्ववेगान् ॥४०॥

भावार्थः—आमन्त्रित समस्त राजाओं, दुर्गाधिपों, अपने बान्धवों तथा अपने-परायों के लिये उत्तम जरीन वस्त्र, वायु-वेगी अश्व,

तुंगांश्च मातंगगणान्मदाढ्या-
न्विभूषणालोर्गतदूषणाश्च ।
संप्रेषयित्वा प्रविभाति भूपो
महामहोदारचरित्रचारुः ॥४१॥

भावार्थः—बड़े-बड़े प्रमत्त हाथी तथा उत्तम आभूषण भिजवाकर अति उदार चरित्र वाला पृथ्वीपति राजसिंह सुशोभित हुआ ।

आसीद्भास्करतस्तु माधवबुधोऽस्माद्रामचंद्रस्ततः
सर्वेश्वरकः कठोडिकुलजो लक्ष्म्यादिनाथस्ततः ।
तेलंगोस्य तु रामचंद्र इति वा कृष्णोस्य वा माधवः
पुत्रोभन्मधुसूदनस्त्रय इमे ब्रह्मेशविष्णूपमाः ॥४२॥

भावार्थः—भास्कर का पुत्र माधव था । माधव के पुत्र हुआ रामचन्द्र और रामचन्द्र के सर्वेश्वर । सर्वेश्वर का पुत्र था लक्ष्मीनाथ, जो कठोड़ी कुल में उत्पन्न हुआ । उसके हुआ तेलंग रामचन्द्र । उस रामचन्द्र के ब्रह्मा, शिव और विष्णु के समान तीन पुत्र हुए— कृष्ण, माधव और मधुसूदन ।

यस्यासीन्मधुसूदनस्तु जनको वेणी च गोस्वामिजाऽ-
भून्माता रणछोड एष कृतवान्राजप्रशस्त्याह्वयं ।
काव्यं राणगुणौघवर्णनमयं वीरांकयुक्तं महत्
द्वाविंशोभवदत्र सर्ग उदितो वागर्थसर्गस्फुटः ॥[४३॥]

भावार्थः—जिसका पिता मधुसूदन और माता गोस्वामी की पुत्री वेणी है, उस रणछोड़ ने राजप्रशस्ति नामक काव्य की रचना की। इस काव्य में महाराणा के गुणों का वर्णन है तथा योद्धाओं का सुन्दर जीवन-चरित अंकित है। यहां उसका बाईसवां [उन्नीसवां] सर्ग संपूर्ण हुआ, जिसके शब्द और अर्थ दोनों सुन्दर है।

॥ इति एकोनविंशः सर्गः १९ ॥

विंशः सर्गः

[इक्कीसवीं शिला]

ॐ सिद्धं । श्रीगणेशाय नमः ॥

जसवंतसिंहनाम्ने राज्ञे राठोडनाथाय ।
सार्द्धनवसहस्रप्रमितरजतमुद्रिकामूल्यं ॥१॥

भावार्थः—राठौड़-नाथ राजा जसवन्तसिंह के लिये साढ़े नौ हजार रूपयों के मूल्य का

परमेश्वरप्रसादाभिधगजं पंचविंशतिप्रमितैः ।
रजतमुद्राशतकैर्गृहीतमतिनर्त्तनं तुरंगवरं ॥२॥

भावार्थः—परमेश्वरप्रसाद नामक एक हाथी, एक चंचल एवं उत्तम अश्व, जो पच्चीस सौ रुपयों मे लिया गया था

फत्तेतुरंगसंज्ञं षट्शतमितरजतमुद्राभिः ।
क्रीतं च कनककलशं हयमपरं हेमपूर्णवसनानि ॥३॥

भावार्थः—और जिसका नाम फत्तेतुरंग था, कनककलश नामक एक और अश्व, जो छह सौ रुपयों में खरीदा गया था तथा—

नानाविधानि बहुनरसंख्यानि महादरेण जोधपुरे ।
राणेंद्रः प्रेषितवान् हस्ते रणछोडभट्टस्य ॥४॥

भावार्थः—नाना प्रकार के अनेक जरीन वस्त्र महाराणा ने रणछोड़ भट्ट के हस्ते बड़े आदर के साथ जोधपुर भेजे।

अथ रामसिंहनाम्ने राज्ञे किलकच्छवाहभूपाय ।
राजतमुद्रासार्द्धद्विशताग्रायुतरचितमूल्यं ॥५॥

भावार्थः—फिर राजा रामसिंह कछवाहा के लिये दस हजार दो सौ पचास रुपयों के मूल्य का

सुंदरगजनामानं गजोत्तमं रजतमुद्राणां ।
पंचदशशतैः कल्पितमूल्यं छविसुंदराख्यहयं ॥६॥

भावार्थः—सुन्दरगज नामक एक उत्तम हाथी, पन्द्रह सौ रुपयों के मूल्य का छविसुन्दर नामक एक घोड़ा,

अथ सार्द्धसप्तशतमितराजतमुद्राप्रमितमूल्यं ।
हयहद्दनामतुरंगं कनककलितवहुलवसनानि ॥७॥

भावार्थः—सात सौ पचास रुपयों के मूल्य का हयहद्द नामक एक और अश्व तथा अनेक जरीन वस्त्र

आंवेरिनगरमध्ये प्रपितवान्राणपूर्णेंदुः ।
हस्ते प्रशस्तकीर्त्तिः स्वपुरोहितरामचंद्रस्य ॥८॥

भावार्थः—प्रशस्तकीर्त्ति पूर्णेन्दु महाराणा ने अपने पुरोहित रामचन्द्र के हस्ते आमेर भिजवाये ।

बीकानेरिप्रभवे अनूपसिंहायरावाय ।
सार्द्धसुसप्तसहस्रकराजतमुद्राप्रमितमूल्यं ॥९॥

भावार्थः—बीकानेर के स्वामी राव अनूपसिंह के लिये साढ़े सात हजार रुपयों के मूल्य का

मनमूर्त्तिनामकरिणं सार्द्धसहस्राच्छरजतमुद्राभिः ।
कृतमूल्यं तुरगवरं साहणसिंगारसंज्ञमन्यहयं ॥१०॥

भावार्थः—मनमूर्ति नामक एक हाथी, पन्द्रह सौ रुपयों के मूल्य का साहणसिंगार नामक एक उत्तम अश्व,

सत्सार्द्ध सप्तशतमितराजतमुद्रारचितमूल्यं ।
तेजनिधानाभिधमपि हेमहयान्यंवराणि वहुलानि ॥११॥

भावार्थः—साढ़े सात सौ रुपयों के मूल्य का तेजनिधान नामक एक और घोड़ा तथा प्रचुर जरीन वस्त्र

प्रेमादरपूर्वं किल बीकानेरिस्फुटाभिधे नगरे ।
प्रेषितवान्राणेंद्रो माधवजोसीसुहस्ते हि ॥१२॥

भावार्थः—महाराणा ने माधव जोसी के हस्ते सादर और स्नेहपूर्वक बीकानेर भिजवाये ।

रात्राय भाविसिंहाभिधाय हाडानृपालाय ।
षट्सप्ततियुक्त्रिशताग्रैर्दशसहस्रैस्तु ॥१३॥

भावार्थः—हाड़ा-नरेश भावसिंह के लिये दस हजार तीन सौ छिहत्तर

राजतमुद्राणां कृतमूल्यं द्विरदं तु होणहाराख्यं ।
सार्द्धसहस्रप्रमितिकराजतमुद्रारचितमूल्यं ॥१४॥

भावार्थः—रुपयों के मूल्य का होणहार नामक एक हाथी, डेढ़ हजार रुपयों के मूल्य का

तुरग नर्त्तनचतुरं तुंगतरं सर्वशोभाख्यं ।
सत्सार्द्धसप्तशतमितराजतमुद्राप्रमितमूल्यं ॥१५॥

भावार्थः—सर्वशोभ नामक एक बड़ा और चपल अश्व, सांढ़े सात सौ रुपयों के मूल्य का

सिरताजाभिधमपरं हयं सहेमांवराणि राणमणिः ।
वूंदीनगरे भास्करभट्टकरे प्रेषयामास ॥१६॥

भावार्थः—सिरताज नाम का एक और घोड़ा तथा जरीन वस्त्र महाराणा ने भास्कर भट्ट के हस्ते बूंदी भिजवाये।

चंद्रावतचंद्राय मुहुकमसिंहाभिधाय रावाय।
सार्द्धं द्विशताग्रलसत्सप्तसहस्राच्छरूप्यमुद्राभिः ॥१७॥

भावार्थः—चन्द्रावतों में चन्द्र राव मोहकमसिंह के लिये सात हजार दो सौ पचास रुपयों के

कृतमूल्यं गजराजं फत्तेदोलतिशुभाभिधं तुरगं।
सार्द्धसहस्रप्रमितराजतमुद्रारचितमूल्यं ॥१८॥

भावार्थः—मूल्य का फत्तेदोलति नाम का एक सुन्दर गजराज, डेढ़ हजार रुपयों के मूल्य का

मोहनसंज्ञं सार्द्धसप्तशतै रूप्यमुद्राणां।
कृतमूल्यं हयसरसं हयमन्यं हेमपूर्णवसनौघं ॥१९॥

भावार्थः—मोहन नामक एक अश्व, साढ़े सात सौ रुपयों के मूल्य का हयसरस नामक एक और घोड़ा तथा कई जरीन वस्त्र

राजाज्ञया गृहीत्वा भट्टोगाद्द्वारकानाथः।
रामपुरानगरे त्वथ सर्वमिदं तु सोर्पयामास ॥२०॥

भावार्थः—लेकर द्वारकानाथ भट्ट महाराणा की आज्ञा से रामपुरा नगर पहुँचा और उसने यह सब राव मोहकमसिंह को भेंट किया।

भाटीभूपालाय रावलवर अमरसिंहाय।
राजतमुद्रैकादशसहस्रमूल्यं प्रतापशृंगारं ॥२१॥

भावार्थः—रावल अमरसिंह भाटी के लिये ग्यारह हजार रुपयों के मूल्य का प्रतापशृंगार नामक

करिणं राजतमुद्रासार्द्धसहस्रप्रमितमूल्यं ।
हयमुकुटाख्यं सार्द्धसप्तशतप्रमितरूप्यमुद्राभिः ॥२२॥

भावार्थः—एक हाथी, डेढ़ हजार रुपयों के मूल्य का हयमुकुट नामक एक अश्व, साढ़े सात सौ रुपयों की

कृतमूल्यमपरमश्वं सूरतिमूर्त्ति च हेमवसनौघं ।
एतत्सर्वं जोसीदेवानंदस्य किल हस्ते ॥२३॥

भावार्थः—कीमत का सूरतिमूर्त्ति नामक एक और घोड़ा और अनेक जरीन वस्त्र देवानन्द जोसी के हाथ

दत्वा जेसलमेरौ महापुरे प्रेमपूर्वमपि ।
संप्रेषितवानेतं स राणवीरो नृपतिधीरः ॥२४॥

भावार्थः—देकर धीर-वीर महाराणा ने प्रेमपूर्वक जैसलमेर भिजवाये ।

जसवंतसिंहनाम्ने रावलवर्याय षट्सहस्रैस्तु ।
पंचशताग्रै राजतमुद्राणां रचितमूल्यमिभमेकं ॥२५॥

भावार्थः—महारावल जसवन्तसिंह के लिये साढ़े छह हजार रुपयों के मूल्य का एक हाथी

शुभसारधारसंज्ञं द्विवेदिहरिजीकहस्ते तु ।
डूंगरपुरे नरपतिः प्रेषितवान् हेमयुक्तवसनानि ॥२६॥

भावार्थः—जिसका नाम सारधार था तथा जरीन वस्त्र राजसिंह ने हरिजी द्विवेदी के हस्ते डूंगरपुर भिजवाये ।

प्रथमं राजसमुद्रोत्सर्गेस्मै रजतमुद्राणां ।
तत्र सहस्रेण कृतमूल्यं जसतुरगनामहयं ॥२७॥

भावार्थः—इसके पूर्व राजसमुद्र की प्रतिष्ठा के समय इसको एक हजार रुपयों के मूल्य का जसतुरग नामक एक अश्व,

पंचशतरूप्यमुद्राकृतमूल्यं तुरगमपरं च ।
कनकमयांबरवृंदं दत्तवान्राजसिंहनृपः ॥२८॥

भावार्थः—पांच सौ रुपयों की कीमत का एक और घोड़ा और अनेक ज़रीन वस्त्र राजसिंह ने दिये थे।

राजतमुद्रैकादशसहस्रमूल्यं प्रतापशृंगारं ।
द्विपमंबराणि च ददौ दोसीभीखूप्रधानाय ॥२९॥

भावार्थः--महाराणा ने प्रधान भीखू दोसी को ग्यारह हजार रुपयों के मूल्य का प्रताप शृंगार नामक एक हाथी और वस्त्र प्रदान किये।

सिरनागं कृतमूल्यं सप्तसहस्रैस्तु रूप्यमुद्राणां ।
द्विपमंबराणि स ददौ राणावतरामसिंहाय ॥३०॥

भावार्थः—राजसिंह ने सात हजार रुपयों के मूल्य का सिरनाग नामक एक हाथी तथा वस्त्र राणावत रामसिंह को, जो

राजसमुद्रजलाशयकार्यकृतामग्रगण्याय ।
राजतमुद्राणां वा कृतमूल्यान्पंचविंशतिसहस्रैः ॥३१॥

भावार्थः—राजसमुद्र पर काम करनेवालों में अग्रगण्य था, प्रदान किये। इसके अतिरिक्त पच्चीस हजार

एकाधिकपंचाशद्युतपंचशताग्रकैस्तुरगान् ।
सुखदैकषष्टिसंख्यान् कुर(?)राजन्यराजये स ददौ ॥३२॥ कुलकं ॥

भावार्थः—पांच सौ इक्यावन रुपयों के मूल्य के इकसठ अश्व क्षत्रियों को प्रदान किये।

एकाग्रसप्ततिलसत्पंचशताग्रैस्तु सप्तविंशतिकैः ।
दिव्यसहस्रै राजतमुद्राणां रचितसन्मूल्यान् ॥३३॥

भावार्थः—सत्ताईस हजार पांच सो इकहत्तर रुपयों के मूल्य के

षडधिकशतद्वयमितांस्तुरंगमांश्चारणेभ्य इह।
दानप्रवाहमध्ये भाटेभ्यो भूपतिः प्रददौ ॥३४॥

भावार्थः—दो सो छह अश्व राजसिंह ने इस दान के प्रवाह में चारणों और भाटों को प्रदान किये।

सप्तसहस्रैर्विरचितमूल्यं वा रजतमुद्राणां।
द्विरदनमनूपरूपं द्विरदवरं सार्द्धनवशतकैः ॥३५॥

भावार्थः—सात हजार रुपयों के मूल्य का अनूपरूप नामक एक हाथी, साढे नो सो

रजतमुद्राणां वा कृतमूल्यं विनयसुंदरकं।
हयमन्यं दिलसारं राजतमुद्राचतुःशतगृहीतं ॥३६॥

भावार्थः—रुपयों के मूल्य का विनयसुन्दर नामक एक अश्व, चार सो रुपयों के मूल्य का एक दूसरा दिलसार नामक अश्व और

कनकमयांवरवृंदं सुलब्धराज्याय बांधवेशाय।
नृपभावसिंहनाम्ने राज्ञे सप्रेषयामास ॥३७॥

भावार्थः—अनेक जरीन वस्त्र राजसिंह ने बांधव के स्वामी राजा भावसिंह के लिये

लाधूमसानिहस्ते लाधूकं तीर्थयात्रार्थं।
दत्वा बहुलं द्रव्यं प्रेषितवान्प्रेमकृद्भूपः ॥३८॥

भावार्थः—लाधू मसानी के हस्ते भिजवाये। तब महाराणा ने तीर्थ-यात्रा के लिये लाधू को प्रचुर धन भी दिया।

राजतमुद्राणां वा त्रिशताग्रचतुःसहस्रकृतमूल्यान् ।
स ददेष्टादश तुरगान्निमंत्रणायातनृपतिभ्यः ॥३९॥

भावार्थः—राजसिंह ने चार हजार तीन सौ रुपयों के मूल्य के अठारह अश्व निमंत्रण पाकर आये हुए राजाओं को प्रदान किये ।

त्रिसहस्ररजतमुद्रामूल्यां करिणीं सहेलीति ।
तोडेशरायसिंहनृपस्य मात्रे ददौ कुमारेभ्यः ॥४०॥

भावार्थः—महाराणा ने तोड़ा के स्वामी राजा रायसिंह के कुमारों के लिये उसकी माता को सहेली नामक एक हथिनी प्रदान की, जिसका मूल्य तीन हज़ार रुपये था ।

सार्द्ध चतुःशतयुक्तत्रिसहस्रसुरूप्यमुद्रादिकामूल्यान् ।
तुरगाँस्त्रयोदश ददौ निमंत्रणायातनृपतिभ्यः ॥४१॥

भावार्थः—राजसिंह ने निमन्त्रण पाकर आये हुए राजाओं को तेरह अश्व प्रदान किये, जिनका मूल्य तीन हजार साढे चार सौ रुपये ।

एकाग्रषष्टिसंयुतपंचशतप्रमितरूप्यमुद्राणां ।
सप्त ददौ भूपोश्वान् निमंत्रणायातनृपतिभ्यः ॥४२॥

भावार्थः—पृथ्वीपति राजसिंह ने निमन्त्रण पाकर आये हुए राजाओं को सात अश्व दिये, जिनका मूल्य पाँच सौ इकसठ रुपये था ।

षट्त्रिंशदधिकशतयुक्त्रिसहस्र अयुत रूप्यमुद्राणां ।
द्विशततुरगान्स ददौ शासनयुतचारणौघभाटेभ्यः ॥४३॥

भावार्थः—उसने शासनिक चारण-भाटों को दो सौ घोड़े प्रदान किये, जिनका मूल्य तेरह हजार एक सौ छत्तीस रुपये था ।

तत्र त्रिवेकस्त्रिसहितविंशतितुरंगान्स्वशासनिभ्योदात् ।
पूर्वोक्तसंख्यतुरगान्राणजगत्सिंहशासनिभ्योपि ॥४४॥

भावार्थः—इस दान का विवरण इस प्रकार है-राजसिंह के शासनिक चारण-भाटों को तेवीस अश्व तथा राणा जगतसिंह के शासनिक चारण-भाटों को भी तेवीस अश्व दिये गये।

श्रीकर्णसिंहशासनिकेभ्योश्वानां चतुष्टयं स ददौ।
अमरेशशासनिभ्यः सप्त तुरगान्प्रतापसिंहस्य ॥४५॥

भावार्थः—राजसिंह ने कर्णसिंह के शासनिकों को चार, अमरसिंह के शासनिकों को सात, प्रतापसिंह के

शासनिकेभ्योष्टादश हयानुदयसिंहशासनिभ्यस्तु।
अष्टत्रिंशत्तुरगान्हयमेकं विक्रमार्कशासनिने ॥४६॥युग्मं॥

भावार्थः—शासनिकों को अठारह, उदयसिंह के शासनिकों को अड़तीस और विक्रमादित्य के शासनिक को एक घोड़ा दिया।

हयमेकं तु रतनसीशासनिने राणवीरोदात्।
शुभसप्तविंशतिहयान् सग्रामनृपस्य शासनिभ्योदात् ॥४७॥

भावार्थः—महाराणा ने रत्नसिंह के शासनिक को एक और संग्रामसिंह के शासंनिकों को सत्ताईस अश्व दिये।

श्रीरायमल्लशासनिकेभ्योश्वानेकविंशतिप्रमितान्।
कुंभाशासनिकायाश्वमेकमेकोनविंशतिप्रमितान् ॥४८॥

भावार्थः—उसने रायमल के शासनिकों को इक्कीस, कुंभा के शासनिक को एक,

मोकलशासनिकेभ्यस्तुरगान्हम्मीरशासनिभ्योदात्।
पंचहयाँल्लाखानृपशासनिकेभ्यो हयान्सप्त ॥४९॥युग्मं॥

भावार्थः—मोकल के शासनिकों को उन्नीस, हम्मीर के शासनिकों को पांच, राणा लाखा के शासनिकों को सात,

खेताऽजेसीशासनिकाभ्यां　हयमेकमेकमदात् ।
रावलमुशालिवाहनमहासमरसीकशासनिभ्यां तु ॥५०॥

भावार्थः—खेता के शासनिक को एक, अजैसी के शासनिक को एक, रावल शालिवाहन के शासनिक को एक, महान् समरसी के शासनिक को

हयमेकमेकमेकं रावतबाघस्य　शासनिने ।
मोकलसहोदरस्य द्विशतहयान्भूप एवमत्र ददौ ॥५१॥

भावार्थः—एक तथा मोकल के सहोदर रावत बाघा के शासनिक को एक अश्व दिया । इस प्रकार राजसिंह ने दो सौ घोड़े प्रदान किये ।

लक्षैकद्वाविंशतिसहस्रशतयुग्मसाष्टषष्टिमितैः ।
राजतमुद्रावृंदैः क्रीताः शतपंचकं द्विपंचाशत् ॥५२॥

भावार्थः—एक लाख, बाईस हजार दो सौ अड़सठ रुपयों में पाँच सौ बावन

तुरगा लक्षैकद्विसहस्रशतकाष्टकैरिति क्रीताः ।
गरिणीगजास्त्रयोदश　दत्ता वीरेंद्रराजसिंहेन ॥५३॥

भावार्थः—अश्व तला एक लाख दो हजार आठ सौ रुपयों में तेरह हाथी एवं हथिनियाँ खरीदी गईं, जिन्हें वीर-शिरोमणि राजसिंह ने दिया ।

पंडितेभ्यः कविभ्यश्च　वंदिचारणपंक्तये ।
अश्वान्धनानि वासांसि ददौ [राणा पुरंदरः] ॥५४॥

भावार्थः—महाराणा ने पंडितों, कवियों, वन्दीजनों और चारणों को अश्व, धन एवं वस्त्र प्रदान किये ।

जलाशयोत्सर्गविधानमेवं
कृत्वा महादानसमेतमेव ।
तथैव नानाविधदानराजी-
विराजते राजितराजवीरः ॥५५॥

भावार्थः—इस तरह राजसमुद्र की प्रतिष्ठा-विधि संपन्न कर, महादान देकर और उपरोक्त नाना प्रकार के दान प्रदान कर महाराणा राजसिंह सुशोभित हुआ ।

इति श्रीराजसमुद्र री प्रशस्त लीषत रणछोडभट सर्ग २०॥

एकविंशः सर्गः

[बाईसवीं शिला]

ॐ सिद्ध । श्रीगणेशाय नमः ।।

पूर्णे सप्तदशे शते शुभकरे त्वष्टादशाख्येऽब्दके
माघे सद्बुधकृष्णसप्तमतिथौ वारभ्य कालादितः ।
पंचत्रिंशदभिख्यवर्षं उदितापाढावदीत्थं वदे
लग्नं राजसमुद्रनामकमहानव्ये तडागे धनं ।।१।।

भावार्थः—संवत् १७१८, माघ कृष्णा सप्तमी बुधवार से लेकर संवत् १७३५, आषाढ पर्यन्त राजसमुद्र नामक महान् एवं नूतन तड़ाग में जो धन लगा उसे बताता हूँ।

षट्चत्वारिंशदाख्यान्यथ रजतमहामुद्रिकाणां शुभानां
लक्षाणीत्थं सहस्राण्यपि रुचिरचतुःषष्टिसंख्यामितानि ।
षट्संख्यायुक्शतानि प्रकटितपदयुक्पंचविंशत्युपात्त-
स्वग्राण्येवं विलग्नान्युतगणनमिदं त्वेकपक्षे मयोक्तं ।।२।।

भावार्थः—प्रथम पक्ष में व्यय हुए रुपयों का योग इस प्रकार है—छियालीस लाख चौसट हजार छह सौ सवा पच्चीस।

विवेकमत्रवक्ष्यामि रूप्यमुद्रावलेरिह ।
सप्तविंशतिलक्षाणि षट्त्रिंशत्प्रमितानि च ।।३।।

भावार्थः—उपरोक्त धन-राशि का व्योरा इस तरह है—सत्ताईस लाख छत्तीस

सहस्राणि चतुःसंख्यशतानि नवतिस्तथा ।
सार्द्धसप्ताग्रकाण्यत्र रामसिंहस्य वै तफे ।।४।।

भावार्थः—हजार चार सौ साढ़े सित्यानवे रुपये रामसिंह के तफे में ।

पंचलक्षचतुःसंख्यसहस्राष्टशतानि च ।
सपादशीतिकान्यहुः पितृव्यस्य तफे तथा ।।५।।

भावार्थः—काका के निरीक्षण में—पांच लाख चार हजार आठ सौ सवा अस्सी रुपये ।

पुत्रमोहनसिंहाख्यसीसोद्यासंगशोभिनः ।
लक्षद्वयं सहस्राणि द्वादशेत्र शतानि च ।।६।।

भावार्थः—पुत्र मोहनसिंह सीसोदिया की देख-रेख में दो लाख बारह हजार

पंचाष्टत्रिंशदधिकपदैषा गणनाभवत् ।
एषा सांवलदासस्य पंचोलीकुलशालिनः ।।७।।

भावार्थः—पांच सौ सवा अड़तीस रुपये । सांवलदास पंचोली के हस्ते

चतुर्लक्षाण्यष्टयुक्तसप्ततिप्रमितानि च ।
सहस्राण्येकशतकं सप्ताग्रं भरणे मृदां ।।८।।

भावार्थः—चार लाख अठहत्तर हजार एक सौ सात रुपये,

चतुष्कीनिःसृतानां तु लेखने गणनाभवत् ।
द्वात्रिंशत्सुसहस्राणि-षट् शतानि सपादकं ।।९।।

भावार्थः—चतुष्कियों से निकली हुई मिट्टी की मजदूरी के लेखे । बत्तीस हजार छह सौ

एकमत्रान्यदायातं द्रव्यं वा प्रभुपार्श्वतः ।
तथा प्रसाददानादितल्लेखे गणना त्वियं ।।१०।।

भावार्थः—और सवा रुपया। यह रकम दूसरी है, जो राजसिंह के पास से प्राप्त हुई। इसकी गणना प्रसाद, दानादि के लेखे की गई।

सप्तलक्षाणि सैकानि प्रतिष्ठाकरणे मितिः।
एतद्राजसमुद्रस्य पूर्वसंख्याप्रमेलनं ॥११॥

भावार्थः - प्रतिष्ठा करने में व्यय हुए रुपयों का योग है—७०००० १। राजसमुद्र पर व्यय हुए रुपयों का सर्वयोग उपरोक्त विधि से हुआ।

पूर्वोक्तद्रव्यगणनाविवेकः क्रियते पुनः।
द्वात्रिंशत्संख्यलक्षाणि सहस्रद्वितयं तथा ॥१२॥

भावार्थः—ऊपर बताई हुई धन-राशि का व्योरा फिर से दिया जाता है। बत्तीस लाख दो हजार

गणनाष्टशतान्यासीत्सपादाशीतिरप्युत।
एषां राजसमुद्रस्य कार्यार्थं च भृतेः कृते ॥१३॥

भावार्थः—आठ सौ सवा अस्सी रुपये। यह रकम राजसमुद्र के निर्माण-कार्य के निमित्त वेतन पर।

सप्त लक्षाण्येकषष्टिसहस्राणि च सप्त वै।
चतुश्चत्वारिंशदग्रयुक्तानि शतकानि च ॥१४॥

भावार्थः—सात लाख इकसठ हजार सात सौ चँवालीस रुपये।

श्रीमद्राजसमुद्रस्य कार्ये ये ठक्कुराः स्थिताः।
तेषां ग्रामोत्पत्तिरूप्यमुद्राणां गणनाभवत् ॥१५॥

भावार्थः—उपरोक्त गिनती राजसमुद्र के काम में उपस्थित रहनेवाले ठाकुरों के ख़िराज के रुपयों की है।

एवं पूर्वोक्त संख्याया मेलनं भवति स्फुटं।
एकपक्षे लग्नरूप्यमुद्रासंख्येयमीरिता ॥१६॥

भावार्थ—इस प्रकार पूर्वोक्त संख्या का योग स्पष्ट हो जाता है। प्रथम पक्ष में लगे रुपयों की संख्या इस तरह बताई गई।

देशग्रामभुजां मुख्यक्षत्रादीनामहो धनं।
चतुष्कीखनने लग्नं वक्तुं शक्तश्चतुर्मुखः ॥१७॥

भावार्थः—क्षत्रिय आदि मुख्य जागीरदारों का जो धन चतुष्की-खनन में लगा है, उसे चार मुखों वाला ब्रह्मा बता सकता है।

गृहाच्चतुर्गुणं लग्नं तडागे वासतो धनं।
तद्विप्रक्षत्रियादीनां शेषोऽशेषं वदिष्यति ॥१८॥

भावार्थः—इस तड़ाग में ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि लोगों का धन उनके घरों से चौगुना लगा। उस समग्र धन-राशि को शेषनाग ही बता सकता है।

गोभूहिरण्यरूप्याणां दत्तानामन्नवाससां।
वराहमिहिरश्चेत्स्याद्गणको गणना भवेत् ॥१९॥

भावार्थः—गिनती करनेवाला यदि वराहमिहिर हो तो राजसिंह द्वारा प्रदत्त धेनु, पृथ्वी, सुवर्ण, चांदी, अन्न और वस्त्र की गणना हो सकती है।

श्वासानां गणनां कुर्याद्यश्वानां सदा तदा।
श्वसनाऽऽवेगजयिनां गणनाकृद्भवेद्गुणी ॥२०॥

भावार्थः—यदि कोई गुणवान व्यक्ति श्वासों की गणना निरन्तर करे तो राजसिंह द्वारा प्रदत्त वायु-वेग को जीतनेवाले अश्वों की गिनती कर सकता है।

मत्तानां राणदत्तानां तुंगानां गणनामुचां।
मतंगानां गणेशश्चेद्गणना जायते तदा ॥२१॥

भावार्थः—अगर गणेश हो तो महाराणा के दिये हुए बड़े-बड़े प्रमत्त अगणित हाथियों की गिनती हो सकती है।

एकाकोटिः पंचलक्षाणि रूप्य-
मुद्राणां वा सत्सहस्राणि सप्त।
लग्नान्यस्मिन्षट् शतान्यष्टकं वै
कार्ये प्रोक्तं पक्ष एतद्द्वितीये ॥२२॥

भावार्थः—कार्य के दूसरे पक्ष में जो रुपये लगे उनकी संख्या इस प्रकार है—एक करोड़ पाँच लाख सात हजार छह सौ आठ।

सहस्रलक्षकोटीनां संख्या ज्ञाता तु या बहुः।
तैरत्र लग्नद्रव्यस्य संख्योक्ता मंतुरस्तु मा ॥२३॥

भावार्थः—राजसमुद्र में लगे द्रव्य की हजारों, लाखों और करोड़ों की अनेक संख्याएँ ज्ञात हुई हैं। मैंने यहाँ केवल उक्त लोगों द्वारा लगे धन की संख्या बताई है। मुझे क्षमा करें।

लग्नं राजसमुद्रे तु यावत्तावद्धनं बुधः।
तरंगगणनां कुर्याद्व्ययस्यैव तदाचरेत् ॥२४॥

भावार्थः—अगर कोई विद्वान् राजसमुद्र की तरंगों को गिने, तभी वह यहां व्यय हुए समग्र धन की गिनती कर सकता है।

स्पर्द्धा लक्ष्म्या सरस्वत्या लग्ना लक्ष्मी तु यावती।
न वक्ति तावतीं युक्तं तडागेत्र सरस्वती ॥२५॥

भावार्थः—सरस्वती की लक्ष्मी से स्पर्द्धा है। अतः यह ठीक ही है कि इस जलाशय में जितना धन व्यय हुआ उसे समग्र रूप में वह नहीं बताती।

सप्तदशशतेतीतेऽथ चतुस्त्रिंशन्मिताब्दजन्मदिने ।
द्विशतपलमिताच्छहटककल्पद्रुमनामकं महादानं ॥२६॥

भावार्थः—इसके बाद संवत् १७३४ में अपने जन्म-दिवस पर दो सौ पल सोने का 'कल्पद्रुम' तथा

सदशीतितोलमितियुतसुहिरण्याश्वाभिधं महादानं ।
श्रीराजसिंहनामा पृथ्वीनाथो रचितवान्सः ॥२७॥युग्मं॥

भावार्थः—अस्सी तोले सुवर्ण का 'हिरण्याश्व' महादान पृथ्वीपति राजसिंह ने प्रदान किया ।

शते सप्तदशे पूर्णे चतुस्त्रिंशन्मितेब्दके ।
श्रावणे राजसिंहेंद्रो जीलवाडावधिव्रजन् ॥२८॥

भावार्थः—संवत् १७३४ के श्रावण में जीलवाड़ा जाते हुए राजसिंह ने

वैरिसाल सिरोहीस्थं शत्रुसंघेन पीडितं ।
रावं सिरोहीनृपतिं चक्रे निजपराक्रमैः ॥२९॥

भावार्थः—शत्रुओं से पीड़ित सिरोही के राव वैरिसाल को अपने पराक्रम से सिरोही का राजा बनाया ।

एकलक्षप्रमितिका रूप्यमुद्रास्ततोग्रहीत् ।
पंचग्रामान्कोरटादीन् जग्राहोग्राहवो नृपः ॥३०॥

भावार्थः—समराग्रणी राजसिंह ने उससे एक लाख रुपये और कोरट आदि पाँच गाँव लिये ।

राणासुवर्णकलशचौर्यं तद्देश आगतं ।
तद्रूप्यमुद्राः पंचाशत्सहस्राण्यग्रहीत्ततः ॥३१॥

भावार्थः—महाराणा का एक स्वर्णकलश चोरी से उसके देश में आगया था । राजसिंह ने उससे उसके पचास हजार रुपये लिये ।

शते सप्तदशेतीते चतुस्त्रिंशन्मितेऽब्दके ।
श्रीराणेंद्रोद्यत्सख्या:..........रजगृहे गजं ॥३२॥

भावार्थ:—संवत् १७३४ में महाराणा ने.......

त्रिविक्रमाश्रयकृतो विक्रमार्कस्य दानतः ।
वक्तुं कः सुक्रमात् शक्तो राजसिंह पराक्रमान् ॥३३॥

भावार्थ:—हे राजसिंह ! आप विष्णु-भक्त हैं और दान में विक्रमादित्य हैं । आपके पराक्रमों का वर्णन क्रम से कौन कर सकता है ?

राजसिंह विचित्रोयं प्रतापतपनस्तव ।
वनांतःस्थानपि रिपूँस्तापयत्यद्भुतं महत् ॥३४॥

भावार्थ:—हे राजसिंह ! आपके प्रताप का सूर्य वड़ा विचित्र है । वह वन में रहने वाले शत्रुओं को भी तपा रहा है । यह वड़ा आश्चर्य है ।

राजन्भवत्प्रतापाग्नि: शत्रुस्त्रीवाष्पसेचनैः ।
ज्वलत्यत्र न चित्रं तद्द्विट्कीर्त्तिनव.....मपः ॥३५॥

भावार्थ:—हे राजन् ! शत्रुओं की स्त्रियों के अश्रु-सेचन से आपके प्रताप की अग्नि प्रज्वलित होती है । इसमें आश्चर्य नहीं है । क्योंकि शत्रुओं की कीर्ति....[?]

शत्रुस्त्रीनेत्रपद्मानि संतापयति संततं ।
श्रीराजसिंह भवतः प्रतापतपनोद्भुतं ॥३६॥

भावार्थ:—हे राजसिंह ! आपके प्रताप का सूर्य शत्रुओं की स्त्रियों के नेत्र-कमलों को निरन्तर संतप्त करता है । आश्चर्य है ।

प्रतापो दीपस्ते क्षितिप जगदालोककरणः
शिखाभिः शत्रूणां वदननिकुरंबं मलिनयन् ।
दशां दिव्यां स्नेहं कवलयति वा प्राणपटली-
पतंगालीं दग्धां कलयति तनूरात्रवसनिः ॥३७॥

भावार्थः—हे राजन् ! आपका प्रताप संसार को प्रकाशित करने वाला दीपक है। पात्र आपका शरीर है। वह अपनी लौ से शत्रुओं के मुख मलिन करता हुआ उनकी अच्छी दशा एवं स्नेह को निगल रहा है तथा उनके प्राण—पतंगों को जला रहा है।

यशश्चंद्रः सांद्रं किरति करवृंदं रिपुगणाः
शिवो जातः कर्णस्फटिकविलसत्कुंडलधरः।
विधुं भाले गंगां शिरसि भुजयोः शुभ्रभुजगा-
न्दधानो भस्मांगो वसति धवले शैलशिखरे ।।३८।।

भावार्थः—हे महाराणा ! यश-चन्द्र स्निग्ध किरणें छिटका रहा है कि आप शिव बन गये हैं। शत्रु आपके गण हैं। आपने कानों में स्फटिक के सुन्दर कुंडल, भाल पर चन्द्रमा, सिर पर गंगा और भुजाओं में श्वेत भुजंग धारण कर रखे हैं। आपका शरीर भस्मर्चचित है। आप धवल शैल-शिखर पर निवास करते है।

भूभारमेष भुजयोर्विदधाति पाणौ
खङ्गोरगं मुखरुचो प्रचुरं प्रतापं।
कर्णेपि भाति विमला विधुशीतला यत्
कीर्त्तिस्तदीश भुवने तव बंभ्रमीति ।।३९।।

भावार्थः—भुजाओं पर आपने भू-भार को धारण कर रखा है। आपके हाथ में खड्गरूपी भुजंग है तथा आपका मुख प्रचुर प्रताप से देदीप्यमान है। हे ईश ! आपकी यह निर्मल एवं चन्द्रमा के समान शीतल कीर्त्ति, जिसे मैं सुन रहा हूँ, निखिल भुवन में भ्रमण कर रही है।

राजेंद्रो भवतादयं जयकरो वैरिव्रजानां जवात्
गांभीर्यात्किल सिंधुरेव हृयसद्दंतिप्रदस्तत्किल।
चक्रे सर्वविशेषणादिविलसद्वर्णैर्युतं नाम ते
श्रीराणामणिराजसिंहनृपते वेधाः सुमेधाधरः ।।४०।।

भावार्थः—हे महाराणा राजसिंह ! इस कारण से कि आप राजेंद्र बनें शत्रुओं पर तेजी से जय प्राप्त करें, गाम्भीर्य में सिंधु हों तथा उत्तम हय-गज प्रदान करें, मेधावी ब्रह्मा ने उक्त विशेषताओं के प्रथम वर्णों से आपका यह 'राजसिंह' नाम बनाया है।

राष्ट्रप्रदो जलधिजाप्रद उत्तमेभ्यो
भात्येप सिंहतुलनो हरिसेवनो यत्।
आख्यां विशेषणगवादिमवर्णयुक्तां
चक्रे विधिस्तदुचितं तव राणवीर ॥४१॥

भावार्थः—हे महाराणा ! आप उत्तम लोगों को राष्ट्र एवं जलधिजा प्रदान करने वाले हैं। आप सिंहोपम और हरि के भक्त भी हैं। इस कारण ब्रह्मा ने आपका नाम उक्त विशेषणों के आदिम वर्णों से बनाया है, जो उचित है।

श्रीराणोदयसिंहसूनुरभवत् श्रीमत्प्रतापः सुत-
स्तस्य श्री अमरेश्वरोस्य तनयः श्रीकर्णसिंहोस्य वा।
पुत्रो राणजगत्पतिश्च तनयोऽस्माद्राजसिंहोस्य वा
पुत्रः श्रीजयसिंह एष कृतवान्वीरः शिलालेखितं ॥४२॥

भावार्थः—राणा उदयसिंह के प्रताप, उसके अमरसिंह, उसके कर्णसिंह, उसके जगतसिंह, उसके राजसिंह तथा राजसिंह के जयसिंह हुआ। उस वीर जयसिंह ने यह शिलालेख उत्कीर्ण करवाया।

पूर्णे सप्तदशे शते तपसि वा सत्पूर्णिमाख्ये दिने
द्वात्रिंशन्मितवत्सरे नरपतेः श्रीराजसिंहप्रभोः।
काव्यं राजसमुद्रमिष्टजलधेः सृष्टप्रतिष्ठाविधेः
स्तोत्राक्तं रणछोडभट्टरचितं राजप्रशस्त्याह्वयं ॥४३॥

भावार्थः – संवत् १७३२, माघ महीने की पूर्णिमा के दिन महाराणा राजसिंह ने जिस मधुर सागर राजसमुद्र की प्रतिष्ठा करवाई, उसका स्तोत्र पूर्ण यह राजप्रशस्ति नामक काव्य है। इसकी रचना रणछोड़ भट्ट ने की।

आसीद्भास्करतस्तु माधवबुधोऽस्माद्रामचंद्रस्ततः
सत्सर्वेश्वरकः कठोंडिकुलजो लक्ष्म्यादिनाथस्ततः।
तैलंगोस्य तु रामचन्द्र इति वा कृष्णोस्य वा माधवः
पुत्रोभून्मधुसूदनस्त्रय इमे ब्रह्मेशविष्णूपमाः ॥४४॥

भावार्थः—भास्कर का पुत्र माधव था। माधव के पुत्र हुआ रामचन्द्र और रामचन्द्र के सर्वेश्वर। सर्वेश्वर का पुत्र था लक्ष्मीनाथ, जो कठोंड़ी कुल में उत्पन्न हुआ। उसके हुआ तेलंग रामचन्द्र। उस रामचन्द्र के ब्रह्मा, शिव और विष्णु के समान तीन पुत्र हुए-कृष्ण, माधव और मधुसूदन।

यस्यासीन्मधुसूदनस्तु जनको वेणी च गोस्वामिजाऽ-
भून्माता रणछोड एष कृतवान्राजप्रशस्त्याह्वयं।
काव्यं राणगुणौघवर्णनमयं वीरांकयुक्तं महत्
सर्गोभूदधुनैकविंशतिशुभाभिख्योर्थवर्गोत्तमः ॥४५॥

भावार्थः—जिसका पिता मधुसूदन और माता गोस्वामी की पुत्री वेणी है, उस रणछोड़ ने राजप्रशस्ति नामक काव्य की रचना की। इस काव्य में महाराणा के गुणों का वर्णन है तथा योद्धाओं का जीवन चरित्र अंकित है। यहाँ उसका उत्तम अर्थों वाला इक्कीसवाँ सर्ग सम्पूर्ण हुआ।

[इति एकविंशतितमः सर्गः।]

द्वाविंश: सर्गः

[तेईसवीं शिला]

।। श्रीगणेशाय नमः ।।

शते सप्तदशेतीते पंचत्रिंशन्मितेब्दके ।
शुक्लैकादशिकायां तु चैत्रे प्रस्थानमातनोत् ।।१।।

भावार्थः—संवत् १७३५, चैत्र शुक्ला एकादशी के दिन

श्रीराजसिंहस्याज्ञातो जयसिंहाभिधो बली ।
महाराजकुमारोयं अजमेरौ समागतः ।।२।।

भावार्थः—राजसिंह की आज्ञा से बलशाली महाराजकुमार जयसिंह ने प्रस्थान किया और अजमेर पहुँचा ।

औरंगजेवं द्रष्टुं स दिल्लीं दिल्लीपतिं ययौ ।
पश्चाज्जयकुमारोयं ययौ सेनासमावृतः ।।३।।

भावार्थः—इसके बाद वह बादशाह औरंगजेब से भेंट करने दिल्ली गया । साथ में सेना थी । कुंवर जयसिंह

दिल्लीतः क्रोशयुग्मस्थे अर्वाक् शिविर उत्तमे ।
दिल्लीश्वरं ददर्शायं सोस्यादरमथाकरोत् ।।४।।

भावार्थः—दिल्ली से दो कोस इधर स्थित सुन्दर शिविर में दिल्ली-पति से मिला । औरंगजेब ने उसका सत्कार किया ।

मुक्तामाला उरोभूषा अस्मै हेमांबराण्यदात् ।
महागजेंद्रं भूषाक्तं तादृक्तुंगतुरंगमान् ।।५।।

भावार्थः—उसने जयसिंह को मोतियों की माला, उरबसी, जरीन वस्त्र, सुसज्जित एक सुन्दर हाथी और अलंकृत बड़े-बड़े अश्व दिये।

झालाख्यचंद्रसेनाय पुरोहितवराय च।
गरीबदाससन्नाम्ने हैमवासांसि वा हयान् ॥६॥

भावार्थः—झाला चन्द्रसेन और बड़े पुरोहित गरीबदास को उसने जरीन वस्त्र एवं अश्व तथा

महद्भ्यष्ठक्कुरेभ्योदादन्येभ्योपि यथोचितं।
ततोयं जयसिंहाख्यो गणयुक्तेश्वरं शिवं ॥७॥

भावार्थः—अन्य बड़े-बड़े ठाकुरों को यथायोग्य वस्तुएं दीं। तदनन्तर गणयुक्तेश्वर शिव के

दृष्ट्वा गंगातटे स्नात्वा महारूप्यतुलां व्यधात्।
करिणीं च हयं दत्त्वा यतो वृंदावनं प्रति ॥८॥

भावार्थः—दर्शन कर जयसिंह ने गंगा-तट पर स्नान किया और चांदी की तुला की। उसने वहां एक हथिनी और एक अश्व भी दान में दिया। फिर वह वृन्दावन की ओर गया।

मथुरां च ततो दृष्ट्वा ज्येष्ठे राणपुरंदरं।
ददर्श दर्शनीयोयं राणेंद्रो मोदमादधे ॥९॥

भावार्थः—तदनन्तर मथुरा में दर्शन कर उस दर्शनीय राजकुमार ने ज्येष्ठ महीने में महाराणा के दर्शन किये। महाराणा प्रसन्न हुआ।

शते सप्तदशेतीते वर्षे षट्त्रिंशदाह्वये।
पौषस्य कृष्णैकादश्यां मेवाडे दिल्लिकापतिः ॥१०॥

भावार्थः—संवत् १७३७, पौष कृष्णा एकादशी के दिन दिल्ली का स्वामी औरंगजेब मेवाड़ में

आयातस्तस्य पुत्रस्तु आदौ अकबराभिधः ।
तथा तहबरः खानः प्राप्तः सेनासमावृतः ॥११॥

भावार्थः—आया । इसके पूर्व उसका पुत्र अकबर और सेनापति तहव्वरखां फौज लेकर

सुंदरे राजनगरे राजमंदिरमंहवः ।
तल्लोकैः कल्पितास्तत्र शक्तः शक्तावतोत्तमः ॥१२॥

भावार्थः—सुन्दर राजनगर के राजमन्दिर मे पहुंचे । वहां उनके लोगों ने बहुत अनाचार किया । शक्तावतों में उत्तम शक्त ने

पुत्रः सबलसिंहस्य पूरावतवरस्य सः ।
भ्राता मुहकमसिंहस्य घोरं रणमिहाकरोत् ॥१३॥

भावार्थः—घोर युद्ध किया । वह पूरावत सबलसिंह का पुत्र एवं मुहकमसिंह का भाई था ।

वीरश्चोंडावतो कोपि तथा विंशतिसद्भटाः ।
कृत्वा युद्धं दिवं याता भित्त्वा भास्करमंडलं ॥१४॥

भावार्थः—इस युद्ध में कोई एक चूंडावत वीर तथा वीस अन्य योद्धा लड़ते हुए सूर्यमंडल को भेदकर स्वर्ग सिधार गये ।

विधेः कलेर्बलादाज्ञां ददौ राणापुरंदरः ।
दहवारीमहाघट्टादन्यघट्टाच्च बाहुजाः ॥१५॥

भावार्थः—बादशाह के दुर्भाग्य से महाराणा ने आज्ञा दी कि देवारी के विशाल घाटे से एवं दूसरे घाटे से राजपूत

आयांतु कृतसंकल्पा अपि योद्धुं मदुक्तितः।
नालिकागोलकस्तोमाः सोरसंघा महोन्नताः ॥१६॥

भावार्थः—युद्ध करने के लिये कृतसंकल्प होकर आवें। मेरे आदेश के अनुसार तोपें, गोले और अमित बारूद भी लाई जाय।

राणोक्तितस्तथा जातं ततो दिल्लीश आगतः।
दहवारीमहाघट्टे कृत्वा तद्द्वारपातनं ॥१७॥

भावार्थः—महाराणा की आज्ञा के अनुसार वैसा ही हुआ। इसके बाद दिल्ली का स्वामी औरंगजेब देवारी के विशाल घाटे में आया और उसका द्वार गिराकर

एकविंशतितथ्यंतं स्थितोत्र निशि चैकदा।
दिव्योदयपुरं प्राप्तो गुप्त एषास्त्युपश्रुतिः ॥१८॥

भावार्थः—वहाँ इक्कीस दिन पर्यन्त रहा। कहा जाता है कि वह एक बार छिपकर रात में उदयपुर पहुँचा।

तदा अकब्बरःप्राप्तो महोदयपुरे ततः।
तथा तहवरः खानस्तत्कृत्यं तद्भटैः कृतं ॥१९॥

भावार्थः—इसके बाद अकबर उदयपुर आया। फिर तहव्वरखाँ। उनके योद्धाओं ने अपना कर्त्तव्य पूरा किया।

एकलिंगं द्रष्टुमगाद्दैवादकबरस्ततः।
अबेरीचीरवाघट्टौ दृष्ट्वा शिविरमागतः ॥२०॥

भावार्थः—तदनन्तर दैवयोग से अकबर एकलिंग के दर्शन करने के लिये रवाना हुआ। लेकिन वह आंबेरी और चीरवा घाटों को देखकर वापस शिविर में चला आया।

झालाप्रतापः कर्कटपुरवासो गजद्वयं ।
दिल्लीशसैन्यादानीय राणेंद्राय न्यवेदयत् ॥२१॥

भावार्थः—करगेटपुर के निवासी झाला प्रतापसिंह ने दिल्ली-पति की सेना में से दो हाथी लाकर महाराणा को भेंट किये ।

भदेसरस्था वल्लाख्या हयौघान्हस्तिनां गणं ।
न्यवेदयन्नुष्ट्र वृंद नैनवारास्थितप्रभोः ॥२२॥

भावार्थः—भदेसर के रहने वाले बल्ला जाति के लोगों ने कई घोड़े, हाथी और ऊँट लाकर राजसिंह को भेंट किये । राजसिंह उन दिनो नैणवारा नामक स्थान पर रह रहा था ।

पंचाशत्कसहस्राणि नृणां नष्टानि तद्विधेः ।
दिल्लीश्वरस्ततः प्राप्ताश्चित्रकूटेन्यथाप्रथां ॥२३॥

भावार्थः—इस तरह पचास हजार लोग मारे गये । तब दिल्ली-पति दूसरा तरीका

ज्ञापयित्वा अकबररस्तथात्र समागतः ।
तथा हसनअल्लीखाँ छप्पन्नादत्र चागतः ॥२४॥

भावार्थः—बताकर चित्रकूट पहुँचा । अकबर भी वहाँ गया । छप्पन प्रदेश से हसन अल्लीखाँ भी वहाँ जा पहुँचा ।

नाहीं प्रति तदायातो राणेंद्रो रोषपोषितः ।
कोटडीग्रामतः शीघ्रं ततः सेनासमावृतः ॥२५॥

भावार्थः –तब क्रुद्ध होकर महाराणा नाई गाँव की ओर आया । इसके बाद शीघ्र ही उसने कोटड़ी गाँव से साथ में सेना देकर

सप्रेषितो भीमसिंहः कुमारो राणभूभुजा ।
ईडरध्वंसमतनोत्सैदहसा ततो गतः ॥२६॥

भावार्थः—कुँवर भीमसिंह को भेजा। भीमसिंह ने ईडर का विध्वंस किया। सैदहसा वहाँ से भाग गया।

वडनगरं लुंठितमथ चत्वारिंशत्सहस्रमिताः।
राजतमुद्रा जगृहे दंडविधौ भीमसिंह ईह ॥२७॥

भावार्थः—फिर भीमसिंह ने वड़नगर को लूटा। वहाँ से उसने दंड स्वरूप चालीस हजार रुपये लिये।

अहमदनगरे लक्षद्वयप्रमितरूप्यमुद्राणां।
वस्तूनां लुंटनमिह कारितवान्भीमसिंहवली ॥२८॥

भावार्थः—शक्तिशाली भीमसिंह ने अहमद नगर में दो लाख रुपयों की वस्तुएं लुटवाईं।

एका महामसीदिर्विखंडिता लघुमसीदिसुत्रिशती।
देवालयपातरुषः प्रकाशिता भीमसिंह वीरेण ॥२९॥

भावार्थः—उसने वहाँ एक बड़ी और तीन सौ छोटी मसजिदें तोड़ीं। औरंगजेव ने अनेक मन्दिर जो गिरवाये थे, उससे उत्पन्न रोष को वहादुर भीमसिंह ने इस प्रकार प्रकट किया।

राणामहीमहेंद्रस्य आज्ञया विज्ञ उत्सुकः।
महाराजकुमारश्रीजयसिंहेति नामकः ॥३०॥

भावार्थः—महाराणा की आज्ञा से उत्सुक होकर कुशल महाराज-कुमार जयसिंह ने

झालाख्यचंद्रसेनेन चोहानेन चमूभृता।
तथा सवलसिंहेन रावेण रणसूरिणा ॥३१॥

भावार्थः—चन्द्रसेन झाला, सेनापति राव सवलसिंह चोहान तथा युद्ध-निपुण

केसरीसिंहनाम्ना तद्भ्राता रावेण शोभितः ।
राठोडगोपीनाथेन अरिसिंहस्य सूनुना ॥३२॥

भावार्थः—उसके भाई राव केसरीसिंह, राठोड़ गोपीनाथ, अरिसिंह के पुत्र

भगवंतादिसिंहेन धन्यराजन्यराजिभिः ।
सहितः स्वाहितजय कर्त्तुं हितसमीहिते ॥३३॥

भावार्थः—भगवन्तसिंह एवं अन्य श्रेष्ठ राजपूतों के साथ, अपने शत्रु पर विजय पाने के लिये तथा अपने हित की कामना में,

त्रयोदशसहस्राणि अश्ववारवरावलेः ।
सद्विंशतिसहस्राणि पदातीनां महात्मनां ॥३४॥

भावार्थः—तेरह हजार श्रेष्ठ अस्वारोहियों एवं बीस हजार बलशाली पदाति सेना को

संगे गृहीत्वा प्रययौ चित्रकूटतटीं प्रति ।
ततस्ते ठक्कुरा रात्रौ संगरं चक्रुरुन्मदाः ॥३५॥

भावार्थः—साथ में लेकर चित्रकूट की तलहटी की ओर प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर उन उन्मत्त ठाकुरो ने रात मे युद्ध किया।

सहस्रसंख्यान्दिल्लीशलोकान् जघ्नुर्गजत्रयं ।
ये नागतास्तांस्तुरगान्निःसृतस्तदकब्बरः ॥३६॥

भावार्थः—उन्होंने दिल्ली-पति के एक हजार लोग, तीन हाथी और वे अश्व, जो पकड़े नहीं जा सके, मार डाले। अकबर वहाँ से चला गया।

पंचाशत्तुरगान्वीरा गृहीत्वा तान्यवेदयन् ।
कुमारजयसिंहाय जयसिंहो मुदं दधे ॥३७॥

भावार्थः—योद्धाओं ने बादशाह की सेना में से पचास घोड़े लाकर कुमार जयसिंह को भेंट किये। जयसिंह प्रसन्न हुआ।

जयसिंहः कुमारोथ श्रीराणेंद्रस्य दर्शनं ।
कृतवान्कृतकृत्यो वा महारणकृतौ कृती ।।३८।।

भावार्थः—तदनन्तर महायुद्ध करने में कुशल एवं कृतकृत्य कुमार जयसिंह ने महाराणा के दर्शन किये ।

शक्तावतस्य शक्तस्य केसरीसिंहवर्मणः ।
गंगकूँवर इत्येष कुमारपदवीं दधत् ।।३९।।

भावार्थः—शक्तिशाली केसरीसिंह शक्तावत के पुत्र गंगकुँवर, जो उस समय कँवरपदे में था, ने

अष्टादश द्विपान्मत्तान्हयौघानुष्ट्रसंचयान् ।
दिल्लीशसैन्यादानीय राणेंद्राग्रे न्यवेदयत् ।।४०।।

भावार्थः—दिल्ली-पति की सेना में से अठारह प्रमत्त हाथी, अनेक अश्व और बहुत से ऊँट लाकर महाराणा को भेंट किये ।

राणेंद्रेण कुमारोथ भीमसिंहो बलान्वितः ।
प्रेषितोऽकबराख्येन तथा तहव्वरेण च ।।४१।।

भावार्थः—इसके बाद महाराणा ने साथ में सेना देकर कुँवर भीमसिंह को भेजा । उसने अकबर और

खानेन संगरं चक्रे शक्ररक्षोरणोपमं ।
उल्लंध्य देवसूरीं तां महानालिं नलोपमः ।।४२।।

भावार्थः—तहव्वरखां से, इन्द्र तथा राक्षसों के युद्ध के समान, युद्ध किया । देसूरी की नाल को लांघकर नल के समान

घानोरानगरे चक्रे युद्धमद्भुतविक्रमः ।
बीकासोलंकिनीरोथ घट्टरक्षां रणं व्यधात् ।।४३।।

भावार्थः—अद्भुत पराक्रमी भीमसिंह ने घाणोरा नगर में युद्ध किया । वीर बीका सोलंकी ने घाटे की रक्षा की और युद्ध किया ।

राणेंद्रेण कुमारोथ गजसिंहो बलान्वितः ।
प्रस्थापितो बभंजायं तद्वेगमपुरं महत् ॥४४॥

भावार्थः—तदनन्तर महाराणा ने साथ में सेना देकर कुँवर गजसिंह को नियुक्त किया । उसने वेगूँ नाम के बड़े नगर को ध्वस्त कर दिया ।

राष्ट्रत्रयं रूप्यमुद्रालक्षत्रयमथापि वा ।
दत्त्वैव मेलनं कार्यं मया राणेन निश्चितं ॥४५॥

भावार्थः—तीन राष्ट्र व तीन लाख रुपये देकर मुझे महाराणा से सन्धि कर ही लेनी चाहिये । ऐसा मैंने तय किया है ।

ओरंगजेबो दिल्लीश उक्तवान्स तदुत्तरं ।
विधेः कलेर्बलाज्जातं यत्तदत्र वदाम्यहं ॥४६॥

भावार्थः—दिल्ली-पति औरंगजेब ने उपर्युक्त बात कही । इसके बाद दुर्दैव से जो हुआ, उसे मैं अगले सर्ग में कहूँगा ।

श्रीराणोदयसिंहसूनुरभवत् श्रीमान्प्रतापः सुत-
स्तस्य श्री अमरेश्वरोस्य तनयः श्रीकर्णसिंहोस्य वा ।
पुत्रो राणजगत्पतिश्च तनयोस्माद्राजसिंहोस्य वा
पुत्रः श्रीजयसिंह एष कृतवान्वीरः शिलालेखितं ॥४७॥

भावार्थः—राणा उदयसिंह के प्रताप, उसके अमरसिंह, उसके कर्णसिंह, उसके जगतसिंह, उसके राजसिंह तथा राजसिंह के जयसिंह हुआ । उस वीर जयसिंह ने यह शिलालेख उत्कीर्ण करवाया ।

पूर्णे सप्तदशे शते तपसि वा सत्पूर्णिमाख्ये दिने
द्वात्रिंशन्मितवत्सरे नरपतेः श्रीराजसिंहप्रभोः ।
काव्यं राजसमुद्रमिष्टजलधेः सृष्टप्रतिष्ठाविधेः
स्तोत्राक्तं रणछोडभट्टरचितं राजप्रशस्त्याह्वयं ।।४८।।

भावार्थः—संवत् १७३२, माघ महीने की पूर्णिमा के दिन महाराणा राजसिंह ने जिस मधुर सागर 'राजसमुद्र' की प्रतिष्ठा करवाई, उसका यह स्तोत्र-पूर्ण 'राजप्रशस्ति' नामक काव्य है । इसकी रचना रणछोड़ भट्ट ने की ।

युग्मं ।

आसीद्भास्करतस्तु माधवबुधोऽस्माद्रामचंद्रस्ततः
सत्सर्वेश्वरकः कठोंडिकुलजो लक्ष्म्यादिनाथस्ततः ।
तेलंगोस्य तु रामचद्र इति वा कृष्णोस्य वा माधवः
पुत्रोभून्मधुसूदनस्त्रय इमे ब्रह्मेशविष्णूपमाः ।।४९।।

भावार्थः—भास्कर का पुत्र माधव था । माधव के पुत्र हुआ रामचन्द्र और रामचन्द्र के सर्वेश्वर । सर्वेश्वर का पुत्र था लक्ष्मीनाथ, जो कठोंड़ी कुल में उत्पन्न हुआ । उसके हुआ तेलंग रामचन्द्र । उस रामचन्द्र के ब्रह्मा, शिव और विष्णु के समान तीन पुत्र हुए-कृष्ण, माधव और मधुसूदन ।

यस्यासीन्मधुसूदनस्तुजनको वेणी च गोस्वामिजाऽ-
भून्माता रणछोड एष कृतवान्राजप्रशस्त्याह्वयं ।
काव्यं राणगुणौघवर्णनमयं वीरांकयुक्तं महत्
द्वाविंशोभवदत्र सर्ग उदितो वागर्थसर्गस्फुटः ।।५०।।

भावार्थः—जिसका पिता मधुसूदन और माता गोस्वामी की पुत्री वेणी है, उस रणछोड़ ने इस राजप्रशस्ति नामक काव्य की रचना की । इस काव्य में महाराणा के गुणों का वर्णन है और योद्धाओं का जीवन-चरित्र अंकित है । यहाँ उसका बाईसवाँ सर्ग सम्पूर्ण हुआ, जिसके शब्द और अर्थ दोनों सुन्दर हैं ।

इति श्रीराजप्रशस्तौ श्रीराजसागरप्रशस्तौ द्वाविंशः सर्गः ।

त्रयोविंश: सर्ग:

[चौवीसवीं शिला]

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

शते सप्तदशेतीते सप्तत्रिंशन्मितेब्दके ।
कार्तिके शुक्लदशमीदिने राणापुरंदरः ॥१॥

भावार्थः—संवत् १७३७, कार्तिक शुक्ला दशमी के दिन महाराणा राजसिंह

नानाविधानि दानानि द्रव्यं दत्त्वा त्वनंतकं ।
द्विजादिभ्यो हरिं ध्यात्वा जपमालां करे दधत् ॥२॥

भावार्थ—द्विजादिकों को नाना प्रकार के दान और अनन्त द्रव्य देकर, भगवान का ध्यान धरकर तथा जप-माला हाथ में लेकर

हृदि सस्थाप्य च जपन्शमनाम स्वनाम च ।
सयशः स्थापयँल्लोके भूलोकं व्यक्तवान्नृपः ॥३॥

भावार्थः—शान्त चित्त से भगवान का नाम जपता एवं यश सहित अपने नाम को संसार में स्थापित करता हुआ पृथ्वी-लोक से चल बसा ।

ददानो महादानवृंदं द्विजेभ्य-
स्तथा गाः सवत्साः सुवर्णादिपूर्णाः ।
तदुत्थं फलं शंबलं संदधानो
नृपो दुर्गमस्वर्गमार्गाय यातः ॥४॥

भावार्थः—महाराणा ने जो अनेक महादान तथा सुवर्णादि वस्तुओं के साथ बछड़ों सहित गौएँ ब्राह्मणों को प्रदान की, उनसे उत्पन्न फलरूप पाथेय को लेकर वह स्वर्ग के दुर्गम मार्ग की ओर चला ।

महादानसन्मंडपस्तंभसंघाः
कृता दारुणा तेभवन्स्वर्णरूपाः ।
तदीयोच्चनिःश्रेणिकाश्रेणिकाभिः
क्षितिस्पर्शहीनं विमानं समानं ॥५॥

भावार्थः—महादान के लिये जो सुन्दर मंडप बनवाया गया था, उसके काठ के स्तम्भ सोने के हो गये । मंडप में लगी ऊँची-ऊँची निसैनियों से वह पृथ्वी से ऊपर उठा हुआ,

महेंद्रेण सप्रेषितं मेदिनींद्रः
समारुह्य दिव्यैर्गणैः संवृतश्च ।
स नाकं सुखं प्राप धर्मेण साकं
महाराजसिंहो नरेंद्रेषु सिंहः ॥६॥

भावार्थः—इंद्र द्वारा सम्मान पूर्वक भेजा गया विमान बन गया । राजाओं में सिंह महाराणा राजसिंह देवताओं के साथ उस पर आरूढ़ हुआ और धर्म के साथ स्वर्ग में रहकर उसने वहाँ का सुख प्राप्त किया ।

महेंद्रेण संमानितस्तेन दिव्या-
सने स्थापितो मानितस्तोषितो यत् ।
महादानमालातडागप्रतिष्ठा-
करो विष्णुनामग्रही धर्मपूर्णः ॥७॥

भावार्थः—प्रतिष्ठावान् राजसिंह को दिव्यासन पर बिठाकर इन्द्र ने उसे सम्मानित एवं सन्तुष्ट किया । क्योंकि उसने अनेक महादान दिये और तड़ाग की प्रतिष्ठा की थी । इसके अतिरिक्त वह विष्णु-भक्त एवं धर्मात्मा था ।

ततः स्वीयवैकुंठलोके त्वकुंठ-
प्रभावो हरिः प्रेषयित्वा विमानं ।
मुदाऽऽकाय सस्थापयामास युक्तं
स्वपूर्वोद्भवैः संयुतं राजसिंहं ॥८॥

भावार्थः—तदनन्तर अकुंठित प्रभाव वाले विष्णु ने विमान भेजकर राजसिंह को अपने वैकुंठलोक में बुला लिया और उसके पूर्वजों के साथ उसे सहर्ष स्थापित कर दिया, जो उचित था।

ततः कडंजे नगरे शिविरं व्यतनोद्बली।
जयसिंहो जयमयः सत्पंचदशवासरान् ॥९॥

भावार्थः—इसके बाद शक्तिशाली एवं विजयी जयसिंह ने कुरज नगर में शिविर लगाया। वहाँ पंद्रह दिन

उल्लंघ्य कृतवान्वीरो राणासिंहासनस्थितिं ।
ररक्ष रणदक्षोयं क्षोणीमक्षौहिणीपतिः ॥१०॥

भावार्थः—बिताकर अक्षौहिणी-पति एवं रण-दक्ष जयसिंह महाराणा के सिंहासन पर आरूढ़ हुआ और पृथ्वी का रक्षक बना।

शते सप्तदशे पूर्णे सप्तत्रिंशन्मितेब्दके।
मार्गशीर्षे शौर्यमार्गप्रकाशी मार्गणार्थदः ॥११॥

भावार्थः—संवत् १७३७, मार्गशीर्ष महीने में, शूरता के मार्ग को प्रकाशित करने वाले एवं याचकों को धन देने वाले

वसन्कडंजे नगरे जयसिंहो महामनाः।
श्रुत्वा तहब्बरं खानं देवसूरीं विलंघ्य च ॥१२॥

भावार्थः—महामना जयसिंह ने कुरज में रहते हुए सुना कि देसूरी को लांघकर

आयातं घट्टमर्यादालोपिन कोपपूरितः।
स्वभ्रातरं भीमसिंहं भीमं वा प्रैषयत्स तु ॥१३॥

भावार्थः—घाटे की मर्यादा को नष्ट करने वाला तहव्वरखां आया है। जयसिंह क्रोध से भर गया। उसने अपने विशालकाय भाई भीमसिंह को भेजा। उसने

वीकासोलंकिनं दृष्ट्वा तं समाश्वास्य तत्परं।
महाभीमो भीमसिंहो वीका सोलंकिनां वरः ॥१४॥

भावार्थः—महाभीम भीमसिंह ने सोलंकी वीका को युद्ध के लिये तैयार हुआ देखकर आश्वासन दिया। तब उसने और सोलंकियों में श्रेष्ठ वीका ने

जघ्नतुम्लेच्छसैन्यानि रुद्धस्तहव्वरोभवत्।
दिनाष्टकांतं मुक्तोथ राहुमुक्तेंदुविच्छविः ॥१५॥

भावार्थः—म्लेच्छ सैनिकों का संहार किया। तहव्वरखां घिर गया। वह आठ दिन बाद, राहु से मुक्त हुए शोभा-हीन चन्द्रमा के समान, मुक्त हुआ।

घानोरापार्श्वं आयातो जयसिंहो दलेलखां।
छप्पन्नदेशशैलेष्वायातो ह्यागोवृतोस्य तु ॥१६॥

भावार्थः—जयसिंह घाणोरा के समीप आया। दलेलखां छप्पन प्रदेश के पहाड़ों में आया। क्योंकि उसे पापों ने घेर लिया था।

मार्गो दत्तो राणलोकैर्गोगुंदाघट्ट आगतः।
रुद्धा घट्टास्ततो राणालोकैर्लोकेषु विश्रुतैः ॥१७॥

भावार्थः—राणा के लोगों ने उसे मार्ग दिया। जब वह गोगूंदा के घाटे में पहुंचा तब महाराणा के सुप्रसिद्ध योद्धाओं ने घाटों को रोक दिया।

रत्नसीरावतेनापि स्थितं घट्टे शिलोत्कटे।
दलेलखाँ न शक्तोभूत्तदा गंतुं कथंचन ॥१८॥

भावार्थः—भीषण चट्टानों वाले घाटे पर रावत रत्नसी भी विद्यमान था। दलेलखाँ वहाँ से किसी प्रकार नहीं निकल सका।

अथ श्रीजयसिंहेन झालाख्यो वरसाभिधः।
प्रेषितो मेलनं कर्तुं तेनोक्तं मार्गग.मिना ॥१६॥

भावार्थः—तत्पश्चात् जयसिंह ने झाला वरसा को संधि करने के लिये भेजा। निर्देशानुसार झाला ने

दलेलखानं प्रत्येवं भवान्दिल्लीशमानितः।
सहस्राण्यश्ववाराणां संगे पंचदशात्र ते ॥२०॥

भावार्थः—दलेलखाँ से कहा कि आप बादशाह के माने हुए व्यक्ति हैं। आपके साथ यहाँ पंद्रह हजार अश्वारोही सैनिक भी हैं।

राणेंद्रस्यैकराजन्यो घट्ट रुद्ध्वा स्थितो भवान्।
निःसरत्वेव निश्चितो राणेंद्रस्य तव स्फुटं ॥२१॥

भावार्थः—परन्तु घाटे को महाराणा का केवल एक राजपूत रोककर खड़ा है। आप निश्चिन्त होकर निकल सकते हैं। महाराणा का आपके प्रति

स्नेहस्तदत्रपर्यंतमायातस्त्वमतः परं।
नवाबेनोच्यते चेत्तं घट्टान्निःसारयाम्यहं ॥२२॥

भावार्थः—स्नेह है। इस कारण आप यहाँ तक आ सके हैं। अब यदि आप कहें तो घाटे से मुक्त करवा दूँ,

उच्यते चेत्स्थापयामि नवावेन तदेरितं।
पश्चात्सैन्यं ममायाति मास्तु तेनापि वारणं ॥२३॥

भावार्थः—अगर कहें तो रुकवा दूँ। इस पर नवाब बोला कि पीछे जो मेरे सैनिक आ रहे हैं, वे भी जब मना न करें।

घट्टत्रयस्य मार्गस्य दृष्ट्यर्थं प्रेषिता भटाः।
तैरुक्तं तु नवावेन कृतं घट्टत्रयं दृढ़ ॥२४॥

भावार्थः—तीनों घाटों के मार्ग देखने के लिये नवाब ने जिन योद्धाओं को भेजा था, लौटकर उन्होंने बताया कि तीनों घाटे मजबूत हैं।

नतो न निःसृतस्तत्र नवावस्तदनंतरं।
सहस्ररूप्यमुद्रास्तु दत्त्वैकस्मै द्विजातये ॥२५॥

भावार्थः—इस कारण नवाब नहीं निकल सका। तब उसने एक ब्राह्मण को एक हजार रुपये दिये

अग्रेसरं च तं कृत्वा नवावो रणकेसरी।
निःसृतोन्येन मार्गेण रात्रौ तत्रापि सैन्यवान् ॥२६॥

भावार्थः—और उसे आगे कर रण-केसरी नवाब एक रात में दूसरे मार्ग से निकल गया। किन्तु वहाँ भी सेना लेकर

रत्नसीरावतो रत्नं योधानां मार्गतो जवात्।
रणं चक्रे निःसरणं नवाबः कष्टतो व्यधात् ॥२७॥

भावार्थः—योद्धा-रत्न रावत रतनसी जा पहुँचा। मार्ग पर स्थित होकर उसने तीव्र युद्ध किया। नवाब कठिनाई से निकल पाया।

इत्थं दलेलखानस्तु निःसृतो घट्टतश्छलात्।
दिल्लीशांतिक आयातः पृष्टो दिल्लीश्वरेण सः ॥२८॥

भावार्थः—इस प्रकार दलेलखाँ घाटे से छल पूर्वक निकलकर दिल्ली-पति के पास पहुँचा। दिल्ली-पति ने उससे पूछा कि

त्वं निःसृत्य किमायातो राणाकस्यानु नो गतः।
दलेलखाँ तदोवाच नान्नं लब्धं मया प्रभो ॥२९॥

भावार्थः—तुम निकलकर क्यों आये, राणा का पीछा क्यों नहीं किया। तब दलेलखाँ बोला कि स्वामिन् ! मुझे वहाँ अन्न नहीं मिला।

राणेंद्रो मम पश्चात्तु हंतुं मां समुपागतः।
योधा मे मारितास्तेन नानाहं तेन निःसृतः ॥३०॥

भावार्थः—महाराणा ने मुझे मारने के लिये मेरा पीछा किया। उसने मेरे कई योद्धाओं को भी मार डाला। इस कारण मुझे वहाँ से निकलना पड़ा।

अन्नाभावान्नित्यमेव लोकानां तु चतुःशती।
मृताहं तन्निःसृतस्तत् श्रुत्वा दिल्लीश आकुलः ॥३१॥

भावार्थः—अन्न के अभाव से प्रतिदिन मेरे चार सौ लोग मरते थे। इसलिये भी मैं वहाँ से निकला। यह सुनकर दिल्ली-पति व्याकुल हुआ।

अथाकबर आयातो मेलनं कर्त्तुमुद्यतः।
राणाश्रीकर्णसिंहस्य द्वितीयस्तनयोबली ॥३२॥

भावार्थः—इसके बाद संधि करने के लिये तैयार होकर अकबर आया। महाराणा कर्णसिंह के द्वितीय पुत्र शक्तिशाली

गरीबदासस्तत्पुत्रः श्यामसिंह इहागतः।
कृत्वा मेलनवार्त्तां तां परावृत्य गतो दृढां ॥३३॥

भावार्थः—गरीबदास का पुत्र श्यामसिंह भी यहाँ आया। उसने संधि-वार्ता की और उसे पक्की कर वह वापस लौट गया।

ततो दलेलखानस्तु मेलने दार्ढ्यमातनोत्।
तथा हसनअल्लीखाँ मेलनस्य विधिं व्यधात् ॥३४॥

भावार्थः—तदनन्तर दलेलखाँ ने सन्धि को सुदृढ़ किया और असन अलीखाँ ने सन्धि करने का ढंग निश्चित किया।

जयसिंहोथ मेलनं कर्त्तुमुद्योगमातनोत् ।
श्रीमद्राजसमुद्रस्य अग्रभागे स्थितस्ततः ॥३५॥

भावार्थ:—तत्पश्चात् जयसिंह संधि-कार्य में रत हुआ । वह सुन्दर राजसमुद्र के अग्रभाग पर ठहरा ।

सहस्राण्यश्ववाराणां सप्त स सप्तकृत्विषां । ३६
मध्ये स्थितः सप्तसप्तिसमतेजाः समावभौ ॥६६॥

भावार्थ: -उसके सात हजार अश्वारोही सात रंग की किरणों के समान थे, जिनके मध्य में स्थित वह सात अश्वों वाले तेजस्वी सूर्य के समान शोभा पा रहा था ।

जयसिंहः स्थितः सप्तनामसप्तिसमे हये ।
तत्प्रेक्षकजनैः प्रोक्तं अश्ववारमयं जगत् ॥३७॥

भावार्थ:—जयसिंह सूर्य के अश्व के समान अश्व पर बैठा था । उसके अश्वारोहियों को देखकर लोगों ने कहा कि सारा संसार अश्वारोहियों से व्याप्त है ।

पदातीनामयुतकं संगे स्थापितवान्प्रभुः ।
तदा पत्तिमयं प्रोक्तं जगद्दृष्ट्वा जनैर्ध्रुवं ॥३८॥

भावार्थ:—महाराणा ने दस हजार पदाति सेना साथ में ली, जिसे देखकर लोगों ने कहा कि यह संसार निःसंदेह पदाति सेना से व्याप्त है ।

महाशौर्यो महाधैर्यो जयसिंहस्ततो बली ।
झालं चंद्रसेनाख्यं चोहानं स्थापयन्पुरः ॥३९॥

भावार्थ:—तदनन्तर महान् पराक्रमी एवं अत्यन्त धैर्यवान् शक्तिशाली जयसिंह ने झाला चन्द्रसेन, चौहान

रावं सबलसिंहाख्य परमार शिरोमणि ।
वैरीसालं महारावं राठोरान्वीरठक्कुरान् ।।४०।।

भावार्थः—राव सबलसिंह तथा परमार-शिरोमणि महाराव वैरीसाल को आगे किया और राठौड़ सरदारों,

चौंडावतान्रणे चंडान् शक्तान् शक्तावतांस्तथा ।
रानावतान्रणाजेयान्राजन्यान् जन्यदुर्जयान् ।।४१।।

भावार्थः—प्रचंड चूँडावतों, शक्तिशाली शक्तावतों, रण में अजेय राणावतों तथा रण-दुर्जय एवं

सर्वानिरवर्वंवीराढ्यान्संगे संस्थाप्य सोत्सवः ।
राणेंद्रो रणदुर्धर्षो मेलनार्थं मुदाऽचलत् ।।४२।।

भावार्थः—महापराक्रमी अन्य सभी राजपूतों को साथ में लिया । इस प्रकार अपराजित महाराणा संधि करने के लिये हर्ष एवं उल्लास के साथ चला ।

रक्तध्वजैः शोभमाना भांति नाना मदद्विपाः ।
सपल्लवद्रुमा गोत्रा एकत्र स्थापिता किमु ।।४३।।

भावार्थः—लाल रंग की ध्वजाओं से सुशोभित अनेक मदमत्त हाथी ऐसे लग रहे थे मानों पहाड़ों को एक जगह ला रखा है, जिन पर नये-नये कोमल पत्तों वाले वृक्ष लगे हैं ।

वैरिग्राहगणैर्महीधरकुलैः सद्रत्नवृंदैरहो
राजच्चक्रचयैश्च वाडवशिखिस्फुर्जत्प्रतापैर्वृतः ।
उद्यद्भोगिवरैर्महोर्मिनिवहैर्मर्यादयापूर्वया
गांभीर्येण युतो विराजति जयी राणाऽर्णवः किं पर· ।।४४।।

भावार्थः—शत्रु रूपी घड़ियालों, महीधरों, सुन्दर रत्नों, चक्रों, वाडवाग्नि रूप प्रताप, वड़े-बड़े भोगियों, वड़ी-बड़ी ऊर्मियों, अपूर्व मर्यादा और गांभीर्य से युक्त होने के कारण यह विजयी महाराणा मानों दूसरा समुद्र है।

ओरंगजेबवीरस्य दिल्लीशस्य सुतस्य स।
जगत्त्राणसुरत्राणआजमस्य प्रतापिनः ॥४५॥

भावार्थः—दिल्ली-पति औरंगजेब के जगत के त्राता एवं सुरत्राण पुत्र प्रतापी आजम की

आज्ञया विज्ञतासिंधुर्गांभीर्यगुणसागरः।
दलेलखाँ महावीरो हसन्नाह्लादपूरितः ॥४६॥

भावार्थः—आज्ञा से विज्ञता-सिन्धु एवं गांभीर्य-गुण-सागर दलेलखाँ, प्रसन्न रहने वाला वहादुर

तथा हसनअल्लीखाँ अन्येपि म्लेच्छभूभुजः।
राठोडो रामसिंहाख्यो रतलामपुरस्थितः ॥४७॥

भावार्थः—हसनअलीखाँ एवं अन्य म्लेच्छ राजा, रतलाम का राठौड़ रामसिंह

हाडाकिशोरसिंहाख्यो गौडभूपस्तथापरे।
हिंदूम्लेच्छमहावीरा आयाताः संमुखं सुखात् ॥४८॥

भावार्थः—हाड़ा किशोरसिंह, गौड़ राजा तथा अन्य हिन्दू और म्लेच्छ योद्धा महाराणा के संमुख आनंदपूर्वक आये।

दिल्लीपतोयैः स्वीयैश्च देशपालैः समावृतः।
जयसिंहो वभावाजौ दिक्पालैर्मघवावृतः ॥४९॥

भावार्थः—जयसिंह अपने एवं वादशाह के भूपालों के बीच ऐसा सुशोभित हुआ जैसे रण-भूमि में दिक्पालों से घिरा हुआ इन्द्र।

ततः श्रीजयसिंहाख्यः　　पूर्वोक्तैष्ठक्कुरैर्वृतः ।
गरीवदासनाम्ना　　स्वपुरोहितवरेण　　वा ५०॥

भावार्थः—इसके वाद पूर्वोक्त ठाकुरो एवं अपने वड़े पुरोहित गरीवदास को तथा

भीखूप्रधानवैश्येन　　युक्तः　　सुयोनितेजसा ।
महाभाग्यो महाशौर्यो महोत्साहो महामनाः ॥५१॥

भावार्थः—प्रधान भीखू वैश्य को साथ में लेकर वह क्षात्र तेज से देदीप्यमान परम भाग्यशाली, महान् पराक्रमी, बड़ा उत्साही और महामना

हिंदूम्लेच्छमहावीरदेशनाथविशोभितः ।
आजमाख्यसुरत्राणमणेर्दर्शनमातनोत् ॥५२॥

भावार्थः—जयसिंह सुरत्राण आजम से मिला । जयसिंह के साथ हिन्दू और म्लेच्छ जाति के बड़े-वड़े वीर और राजा भी थे ।

आजमाख्यसुरत्राणो　　राणेंद्रस्यादरं　　भृशं ।
अकरोद्विनयोपेतस्स　　स्नेहमनुदर्शयन् ॥५३॥

भावार्थः--स्नेह प्रकट करते हुए सुरत्राण आजम ने महाराणा का विनयपूर्वक अत्यधिक आदर कि ा ।

एकादशगजानश्वांश्चत्वारिंशन्मितान्शुभिन् ।
आजमाख्याय रानेंद्रोर्पयामास　　सुदर्पवान् ॥५४॥

भावार्थः—स्वाभिमानी महाराणा ने ग्यारह हाथी और चालीस सुन्दर अश्व आजम को भेंट किये ।

आजमाख्यः　सुरत्राण　एकं　मदलसद्द्विपं ।
अष्टाविंशतिसंख्याश्वान्सहेमवसनत्रयीः　॥५५॥

भावार्थः—सुरत्राण आजम ने एक मदमत्त हाथी, अट्टाईस घोड़े, तीन जरीन वस्त्र और

पंचाशत्प्रमिताभूषासमूहं रानभूभुजे ।
ददौ महास्नेहमयमेलनं त्वनयोरभूत् ॥५६॥

भावार्थः—पचास आभूषण महाराणा को दिये । इस प्रकार दोनों में अत्यन्त स्नेहपूर्वक सन्धि हुई ।

दलेलखाँ तदोवाच सुलतान शृणु प्रभो ।
अयं वीरश्चंद्रसेनो राना झालाशिरोमणिः ॥५७॥

भावार्थः—तब दलेलखाँ ने कहा कि हे स्वामिन्, सुलतान ! सुनिये । यह झाला-शिरोमणि वीर राणा चन्द्रसेन है ।

रावः सबलसिंहोय रत्नसीनामरावतः ।
चोडावता रणे चंडाः शक्ताः शक्तावतास्तथा ॥५८॥

भावार्थः—यह राव सबलसिंह है । इसका नाम रावत रतनसी है । ये रण-प्रचंड चूंडावत और ये शक्तिशाली शक्तावत हैं ।

परमारश्च राठोडास्तथा राणावतोत्तमाः ।
रणे सिंहाः पर्वतेषु मार्गददुरुत्तमाः ॥५९॥

भावार्थः—ये परमार और ये राठौड़ हैं । इसी प्रकार ये रण-केसरी श्रेष्ठ राणावत हैं। इन्होंने पहाड़ों में मार्ग दिया था ।

युयुधुर्न महायोधा ज्ञातव्यं विज्ञतांबुधे ।
दिल्लीशेन परां[प्रीतिं]रानोक्त्या रक्षितुं ध्रुवं ॥६०॥

भावार्थः—हे परम विज्ञ ! यह जानने योग्य है कि बादशाह से प्रीति बनाये रखने के लिये महाराणा की आज्ञा से इन वीरों ने युद्ध नहीं किया ।

आजमोप्युक्तवानेवं सत्यमेव न संशयः।
संतुष्टो जयसिंहाय ददावाज्ञां कृतादरः ॥६१॥

भावार्थः—आजम ने भी कहा कि यह सच ही है। इसमें सन्देह नहीं है। फिर उसने जयसिंह को सादर एवं प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा दी।

जयसिंहो महाभाग्यो वीरः शिविरमागतः।
अस्यासीद्भाग्यतः शीघ्रं मेलनं जनतावदत् ॥६२॥

भावार्थः—महाभाग्यशाली वीर जयसिंह अपने शिविर में लौट आया। लोगों ने कहा कि इसके भाग्य से सन्धि शीघ्र हो गई।

पूर्णः सर्गः। इति त्रयोविंशतिनामा सर्गः ॥

चतुर्विंश· सर्ग:

[पच्चीसवीं शिला]

सिद्ध ।। श्री गणेशाय नमः ।।

प्रेम्णा अमरसिंहाख्यपौत्रयुक्तस्य धर्मिणः ।
राणेंद्रराजसिंहस्य राजराजस्य संपदा ।।१।।

भावार्थः—महाराणा राजसिंह धर्मात्मा एवं संपत्ति में कुबेर था। अपने पौत्र अमरसिंह को प्रेमपूर्वक साथ में लेकर

हेम्नो दशसहस्रोद्यत्तोलकैः पूर्णतोभृतः ।
शुद्धात्मना विसृष्टायास्तुलाया अतुलाजुषः ।।२।।

भावार्थः—उस शुद्धात्मा ने दस हजार तोले सोने का जो अतुलनीय तुलादान किया, उसका,

महासेतौ हस्तिनीसत्स्कंधे बंधुरसुंदरं ।
तोरणं भाति गौरोच्चाधोरणं तुलयद्रुचा ।।३।।

भावार्थः—महासेतु पर निर्मित हस्तिनी के सुन्दर स्कन्ध पर हंस के समान उज्ज्वल एक तोरण बना है। शोभा में वह गौरवर्ण के महावत के समान है।

महोज्ज्वलनया किं वा ऐरावतकुलस्थितिः ।
हस्तिन्येषा मूर्न्धि धत्ते चित्ररूप्योच्चभूषणं ।।४।।

भावार्थः—अथवा अतिशय उज्ज्वलता के कारण यह हस्तिनी ऐरावत-कुल में उत्पन्न हुई जान पड़ती है, जिसने मस्तक पर चांदी का अद्‌भुत एवं सुन्दर आभूषण पहन रखा है।

दत्तांकुशद्वयाप्येषा अचलैवाभवत्ततः।
दर्शितं तून्नतीकृत्य हस्तिपेनांकुशद्वयं ॥५॥

भावार्थः—दो अंकुशों से प्रहार करने पर भी यह हस्तिनी अपने स्थान से हिली नहीं। इस कारण महावत ने मानों उन दो अंकुशों को उठाकर दिखाया है।

महातोरणमेतत्तु गौरीकीर्त्योन्नतीकृतं।
प्रांजलं सांजलियुगं भुजयोर्भाति भूपतेः॥६॥

भावार्थः—यह तोरण तो उज्ज्वल कीर्ति के कारण ऊपर उठा हुआ सुन्दर अंजलि-युग्म है, जो महाराणा की भुजाओं मे शोभा पा रहा है।

द्वितीयं तोरणं तत्र पार्श्वेस्ति लघु सुंदरं।
तथा अमरसिंहाख्यपौत्रस्यातिविचित्रकृत् ॥७॥

भावार्थः—वहां पास में एक दूसरा तोरण है जो छोटा किन्तु सुन्दर और बड़ा आश्चर्यजनक है। वह राजसिंह के पौत्र अमरसिंह का है।

राणेंद्रराजसिंहस्य पट्टराज्ञातिविज्ञया।
श्रीराणाजयसिंहस्य मात्रा मित्रप्रतापया ॥८॥

भावार्थः—महाराणा राजसिंह की परम विज्ञ एवं सूर्य के समान प्रताप वाली पटरानी, महाराणा जयसिंह की माता,

सदाकुंवरिनाम्न्या या तुला रूप्यमयी कृता।
आस्ते तत्तोरणं चित्रं हस्तिन्या हस्तयुग्मवत् ॥९॥

भावार्थः—सदाकुँवरि ने चांदी की जो तुला की उसका एक अद्भुत तोरण वहाँ बना है। वह हस्तिनी की दो सूडों के समान है।

आस्ते गरीबदासस्य पुरोहित शिरोमणेः।
कृतायाः स्वर्णपूर्णायास्तुलायास्तोरणं महत् ॥१०॥

भावार्थः—वहाँ बड़े पुरोहित गरीबदास द्वारा की गई स्वर्ण-तुला का एक सुन्दर तोरण विद्यमान है।

गरीबदासस्य पुरोहितस्य
ज्येष्ठः कुमारो रणछोडरायः।
आस्ते कृतायाः किल तेन रूप्य-
भ्राजत्तुलायाः शुभतोरणं सत् ॥११॥

भावार्थ—पुरोहित गरीबदास के ज्येष्ठ पुत्र रणछोड़राय ने चांदी का जो सुन्दर तुलाधान किया उसका एक मनोरम तोरण वहाँ बना है।

श्रीराणोदयसिंहसूनुरभवत् श्रीमान्प्रतापः सुत-
स्तस्य श्रीअमरेश्वरोस्य तनयः श्रीकर्णसिंहोस्य वा।
पुत्रो राणजगत्पतिश्च तनयोस्माद्राजसिंहोस्य वा
पुत्रः श्रीजयसिंह एष कृतवान्वीरः शिलाऽऽलेखितं ॥१२॥

भावार्थः—राणा उदयसिंह के प्रताप, उसके अमरसिंह, उसके कर्णसिंह, उसके जगतसिंह, उसके राजसिंह तथा राजसिंह के जयसिंह हुआ। उस वीर जयसिंह ने यह शिलालेख उत्कीर्ण करवाया।

पूर्णे सप्तदशे शते तपसि वा सत्पूर्णिमाख्ये दिने
द्वात्रिंशन्मितवत्सरे नरपतेः श्रीराजसिंहप्रभोः।
काव्यं राजसमुद्रमिष्टजलधेः सृष्टप्रतिष्ठाविधेः
स्तोत्राक्तं रणछोडभट्टरचितं राजप्रशस्त्याह्वयं ॥१३॥

भावार्थः—महाराणा जयसिंह ने संवत् १७३२, माघ शुक्ला पूर्णिमा के दिन जिसकी प्रतिष्ठा करवाई, उस मधुर सागर राजसमुद्र का स्तुतिपरक यह 'राजप्रशस्ति' काव्य है। इसकी रचना रणछोड़ भट्ट ने की।

युग्म ।

आसीद्भास्करतस्तु माधवबुधोऽस्माद्रामचंद्रस्ततः
सत्सर्वेश्वरकः कठोंडिकुलजो लक्ष्म्यादिनाथस्ततः ।
तैलंगोस्य तु रामचंद्र इति वा कृष्णोस्य वा माधवः
पुत्रोभून्मधुमूदनस्त्रय इमे ब्रह्मेशविष्णूपमाः।। १४।।

भावार्थः—भास्कर का पुत्र माधव था। माधव के पुत्र हुआ रामचन्द्र और रामचन्द्र के सर्वेश्वर। सर्वेश्वर का पुत्र था लक्ष्मीनाथ, जो कंठोड़ी कुल में उत्पन्न हुआ। उसके हुआ तैलंग रामचन्द्र। उस रामचन्द्र के ब्रह्मा, शिव और विष्णु के समान तीन पुत्र हुए—कृष्ण, माधव और मधुसूदन।

यस्यासीन्मधुमूदनस्तु जनको वेणी च गोस्वामिजाऽ-
भून्माता रणछोड एष कृतवान्राजप्रशस्त्याह्वयं ।
काव्यं राणगुणौघवर्णनमयं [वीरांकयुक्तं] चतु-
र्विंशत्याख्य इहाभवद्भवमुदे सर्गोर्थसर्गोन्नतः ।।१५।।

भावार्थः—जिसका पिता मधुसूदन और माता गोस्वामी की पुत्री वेणी है, उस रणछोड़ ने इस राजप्रशस्ति नामक काव्य की रचना की। इस काव्य में महाराणा के गुणों का वर्णन है और योद्धाओं का जीवन-चरित्र अंकित है। यहाँ उसका उन्नत अर्थ वाला चौबीसवाँ सर्ग संपूर्ण हुआ। वह संसार को आनंद प्रदान करे।

राजप्रशस्तिग्रंथोयं प्रसिद्धः स्याज्जगत्यलं।
लक्ष्मीनाथादिबालानां पाठार्थं जायतां ध्रुवं ।।१६।।

भावार्थः—यह 'राजप्रशस्ति' ग्रन्थ संसार में अतिशय प्रसिद्ध हो और लक्ष्मीनाथ आदि बालकों को पढ़ाने में सदा काम आवे।

नारायणादिपुण्यात्मराणेंद्रान्वयदर्णनं ।
कर्णस्थितं स्यात्कर्णोच्चपुत्रपौत्रसुखप्रदं ॥१७॥

भावार्थः—इसमें नारायण से लेकर पुण्यात्मा महाराणा तक का वंश-वर्णन है। सुनने पर वह कर्ण से भी बढ़कर पुत्र-पौत्र का सुख देने वाला हो।

रामादिराजस्तुतियुक्काव्यं रामायणोपमं ।
श्रुत्वा धने धनेशः स्यात्काव्ये काव्यो गुरुर्गिरि ॥१८॥

भावार्थः—राम आदि राजाओं का स्तुति-पूर्ण यह काव्य रामायण के समान है। इसे सुनकर मनुष्य संपति मे कुबेर, काव्य में शुक्राचार्य तथा विद्या में बृहस्पति बने।

नानाराजेतिहासाक्तं ग्रंथं स्याद्भारतोपमं।
भारत्यां भारतीतुल्यः पठन्भारतखडके ॥१९॥

भावार्थः—संस्कृत भाषा में रचित एवं अनेक राजाओं के इतिहास से पूर्ण यह ग्रन्थ महाभारत के समान है। इसे पढ़कर मनुष्य भारतवर्ष में सरस्वती के समान बो।

ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी बाहुजो बाहुवीर्यवान्।
वैश्यो लभेद्धनं श्रुत्वा शूद्रो भद्रं तथाखिलं ॥२०॥

भावार्थः—संपूर्ण राजप्रशस्ति को सुनकर ब्राह्मण बह्मवर्चस्वी और क्षत्रिय बाहु-बल-शाली बनें तथा वैश्य धन एवं शूद्र कल्याण प्राप्त करे।

संस्तभ्य चित्तामन्येभ्यः पठन्नृभ्यत्वमाप्नुयात् ।
इभ्यतां भुवने मर्त्यो नालभ्यं तस्य किंचन ॥२१॥

भावार्थः—दूसरी ओर से चित्त को केन्द्रित कर जो मनुष्य इसे पढ़ता है वह सभ्य एवं धनाढ्य बनता है। संसार में उसके लिये कुछ भी अलभ्य नहीं रहता।

विप्रोऽग्निहोत्रग्रामेभ्यः क्षत्रियोऽखिलभूमिपः ।
वैश्यो धनी स्यात्कायस्थः श्रिया सुस्थो भवेद्ध्रुवं ॥२२॥

भावार्थः—राजप्रशस्ति के श्रवण से ब्राह्मण अग्निहोत्री एवं ग्राम-समृद्ध, क्षत्रिय अखिल भू-मंडल का स्वामी, वैश्य धनवान् और कायस्थ संपत्तिशाली बनता है ।

राजाश्रुत्वा चक्रवर्ती शौर्यगांभीर्यधैर्यवान् ।
देशस्वास्थ्यं लभेद्वैरिविजयं कुरुते सदा ॥२३॥

भावार्थः—इसे सुनकर राजा चक्रवर्ती होता है तथा शौर्य, गांभीर्य और धैर्य प्राप्त करता है । उसका देश स्वस्थ रहता है तथा वह शत्रु पर हमेशा विजय पाता है ।

पठन्स्फुरद्भागवतनवमस्कंधसत्कथं ।
आकंठं सुखभुग्भूत्वा वैकुंठं प्राप्नुयादिदं ॥२४॥

भावार्थः—भागवत के नवम स्कध की कथा से युक्त इस ग्रन्थ को जो पढ़ता है वह सुखों का यथेच्छ उपभोग कर वैकुंठ को प्राप्त करता है ।

दयालसाहः कृतवान् खेरावादस्य मारणं ।
तत्केतुदुंदुभिग्राह वनहेडाख्यलुंटनं ॥२५॥

भावार्थः—दयालदास ने खैरावाद को नष्ट कर उसकी ध्वजा और दुन्दुभि को छीन लिया । उसने वनेड़ा को भी लूटा ।

धारापुरी मारणं च मसीदिततिपातनं ।
ध्वस्तं चक्रे अहमदनगरं लुंटनेऽखिलं ॥२६॥

भावार्थः—उसने धारापुरी को नष्ट किया और अनेक मसजिदें गिराईं । लूट में उसने संपूर्ण अहमदनगर को ध्वस्त कर दिया ।

महामसीदिपतनं कृतवान्समरे कृती ।
इत्युक्तः प्रभुवीराणां पराक्रमविनिर्णयः ॥२७॥

भावार्थः -कुशल दयालसाह ने युद्ध में बड़ी मसजिद को गिराया। यह महाराणा के योद्धाओं का वर्णन हुआ।

जगदीशमिश्रतनयो माथुरहीरामणिर्महामिश्रः।
राजसमुद्रजलाशयसूत्रनिवेशे परिक्रमणे ॥२८॥

भावार्थः—सूत्र निवेशन करने के लिये जब महाराणा ने राजसमुद्र की परिक्रमा की तब जगदीश मिश्र के पुत्र मथुर हीरामणि मिश्र ने

द्वादशशतमणमितिकं धान्यमहीध्रं महासेतौ ।
द्वादशशतमणमितिकं धान्याद्रिं कांकरोलीस्थे ॥२९॥

भावार्थः—बारह सौ मन धान्य का पर्वत महासेतु पर और उतने ही धान्य का पर्वत कांकरोली के

सेतौ संस्थाप्य तथा सार्धसहस्राच्छरूप्यमुद्राणां ।
कृत्वा ढब्बूकगणं स रूप्यमुद्रादिकं तदार्थिभ्यः ॥३०॥

भावार्थः—सेतु पर बनाया। उसने डेढ़ हजार रुपयों के ढब्बूक बनवाये। फिर उसने रुपये आदि याचकों को

षड्दिनपर्यंतमयं ददौ तदा राजसिंहदेवेन ।
उक्तं जनसंमर्दे मिश्रोऽस्मन्निकटतः पुरः कुरुते ॥३१॥

भावार्थः—छह दिन तक दिये। तब महाराणा राजसिंह ने जन-समुदाय के बीच कहा कि मिश्र को हमारे सम्मुख उपस्थित किया जाय।

इत्युत्साहेन तदा भक्तया मिश्रःपुरः स्थितो नृपतेः ।
धान्याद्रीन्धनमर्थिव्रजाय दत्त्वा प्रियो नृपस्यासीत् ॥३२॥

भावार्थः—तब उत्साहित होकर मिश्र भक्तिपूर्वक महाराणा के सम्मुख उपस्थित हुआ। इस प्रकार याचकों को प्रचुर धन-धान्य देकर वह राजसिंह का प्रिय बन गया।

श्रीराणोदयसिंहसूनुरभवत् श्रीमान्प्रतापः सुत-
स्तस्य श्रीअमरेश्वरोस्य तनयः श्रीकर्णसिंहोस्य वा।
पुत्रो राणजगत्पतिश्च तनयोऽस्माद्राजसिंहोस्य वा
पुत्रः श्रीजयसिंह एष कृतवान्वीरः शिलाऽऽलेखितं ॥३३॥

भावार्थः—राणा उदयसिंह के प्रताप, उसके अमरसिंह, उसके कर्णसिंह, उसके जगतसिंह, उसके राजसिंह और राजसिंह के जयसिंह हुआ। उस वीर जयसिंह ने यह शिलालेख उत्कीर्ण करवाया।

पूर्णे सप्तदशे शते तपसि वा सत्पूर्णिमाख्ये दिने
द्वात्रिंशन्मितवत्सरे नरपतेः श्रीराजसिंहप्रभोः।
काव्यं राजसमुद्रमिष्टजलधेः सृष्टप्रतिष्ठाविधेः
स्तोत्राक्तं रणछोडभट्टरचितं राजप्रशस्त्याह्वयं ॥३४॥

भावार्थः—महाराणा राजसिंह ने संवत् १७३२, माघ शुक्ला पूर्णिमा के दिन जिस मधुर सागर राजसमुद्र की प्रतिष्ठा करवाई, उसका स्तोत्र-पूर्ण यह 'राजप्रशस्ति' काव्य है। इसकी रचना रणछोड़भट्ट ने की।

युग्मं।

आसीद्भास्करतस्तु माधवबुधोऽस्माद्रामचंद्रस्ततः
सत्सर्वेश्वरकः कठोंडिकुलजो लक्ष्म्यादिनाथस्ततः।
तेलंगोस्य तु रामचंद्र इति वा कृष्णोस्य वा माधवः
पुत्रोभून्मधुसूदनस्त्रय इमे ब्रह्मेशविष्णूपमाः ॥३५।

भावार्थः—भास्कर का पुत्र माधव था। माधव के पुत्र हुआ रामचन्द्र और रामचन्द्र के सर्वेश्वर। सर्वेश्वर का पुत्र था लक्ष्मीनाथ जो कठोंड़ी कुल में उत्पन्न हुआ। उसके हुआ तेलंग रामचन्द्र। उस रामचन्द्र के ब्रह्मा, शिव और विष्णु के समान तीन पुत्र हुए-कृष्ण, माधव और मधुसूदन।

यस्यासीन्मधुसूदनस्तु जनको वेणी च गोस्वामिजाऽ-
भून्माता रणछोड एष कृतवान्राजप्रशस्त्याह्वयं।
काव्यं राणगुणौघवर्णनमयं वीरांकयुक्तं चतु-
र्विंशत्याख्य इहाभवद्भवमुदे सर्गोर्थसर्गोन्नतः ॥३६॥

भावार्थः—जिसका पिता मधुसूदन और माता गोस्वामी की पुत्री वेणी है, उस रणछोड़ ने इस राजप्रशस्ति नामक काव्य की रचना की। इस काव्य में महाराणा के गुणों का वर्णन है और योद्धाओं का जीवन-चरित्र अंकित है। यहाँ उसका उन्नत अर्थ वाला चौबीसवाँ सर्ग संपूर्ण हुआ। वह संसार को आनंद प्रदान करे।

[इति चतुर्विंशतिनामा सर्गः]

दुहा

राणी कोई रजपूत जे वडता जायो नहर ।
समुद फेरण सूत राणा तू हीज राजसी ॥१॥
ऐ जो ओरंग काह मेगल मुगल मारिजे ।
राणो राखे राह रजवट भरियो राजसी ॥२॥[1]

संवत् १७१८ माह वदि ७ नीम खोदवा रो मुहुरत हुवो जी अतरा ठाकर मेल काँम करवा ॥ राणावत माहासीघजी रामसीघजी राणावत भाउ-सीघजी: चुडावत दलपतिजी मोहणसीघजी: रावत लुणकरणजी चुडावत मोकम-सीघजी माँजावत नरसीघदासजी माँजावत गरीबदासजी राठोड सीघजी राठोड रामचंदजी राठोड हमीजी राठोड मोकमसीघ चितागरा राँमचंद चेवाणी साह कलु पंचोली राम जगमालोत साह मुकंददास पंचोली हरराम सेघवी लखु पंचोली वाघ गजधर मुकंद गजधर किल्याण सुत जगनाथ सुत मेघो मनो ॥ संवत १७३२ प्रतिष्टा हुईज ॥ शुभ भवतु श्रीरस्तु ॥ सुत्रधार मोहणजी सुत सुत्रधार सुखजी शुभं भा''''वत ॥

१　इन दोहों का शुद्ध पाठ तथा सरलार्थ इस प्रकार है:—

राणी कोइ रजपूत, जे वडताँ जायो नहर ।
समदाँ फेरण सूत, राणां तू हिज राजसी ॥१॥
ऐ जो औरंग काह, मैंगल मूगलाँ मारिजै ।
राणौ राखै राह, रजवट भरियौ राजसी ॥२॥

अर्थ—किस राजपूत राणी ने तुझको बढ़कर नर-केहरी को जन्म दिया है ? हे राणा राजसिंह ! समुद्र के डोरा फेरने वाला एक तू ही है ॥१॥ यह राजसिंह औरंगजेब के मुगल रूपी हाथियों को मारने वाला है । क्षात्रधर्म से परिपूर्ण यह राणा स्वधर्म की रक्षा करता है ॥२॥

राजप्रशस्तिः महाकाव्यम्

परिशिष्ट

परिशिष्ट संख्या १

त्रिमुखी बावड़ी की प्रशस्ति

श्रीगणेशाय नमः ।

तुहिनकिरणहीरक्षीरकर्पूरगौरं
वपुरपि जलदाभं कालिकापांगवल्ल्याः ।
प्रतिकृतिघटनाभिर्विभ्रदेवैकलिंगः
कलयतु कुशल ते राजसिंह क्षितींद्र ॥१॥

चतुर्मितपुमर्थसद्वितरणाय सद्भ्यः सदा
चतुर्भुजधरश्चतुर्युगविराजिराजद्यशाः ।
चतुर्भुजहरिः शिव दिशतु राजसिंहप्रभो-
श्चतुः श्रुतिसमीरितं निजचतुर्भुजाभिर्भृशं ॥२॥

श्रीरामरसदेसृष्टवापीवर्णन सुंदरी ।
कुर्वे प्रशस्तिः शस्त्या श्रीराजसिंहनृपाज्ञया ॥३॥

आदौ वाप्पो रावलोभूद्वैरिस्ताडनतापदः ।
तद्वंशे राहपः पूर्वं राणानामधरोभवत् ॥४॥

ततस्तु हरसूराणा नरूराणा ततोभवत् ।
जसकर्णस्ततो राणा नागपालस्ततो नृपः ॥५॥

भूणपालस्ततः पीथा ततो भुवनसिंहकः ।
ततस्तु भीमसिंहोभूज्जयसिंहस्ततोभवत् ॥६॥

लक्ष्मसिंहस्ततो राणा अरिसिंहस्ततोभवत् ।
ततो हमीरराणेंद्रो खेताराणा ततोभवत् ॥७॥

ततो लाखाभिधो राणा ततो मोकलनामकः ।
ततः श्रीकुंभकर्णोभूद्रायमल्लस्ततोभवत् ॥८॥

ततः सांगाभिधो राणा रत्नसिंहस्ततोभवत् ।
तद्भ्राता विक्रमादित्यो विक्रमादित्यविक्रमः ॥९॥

तद्भ्रातोदयसिंहेंद्रो राज्योदयमयः सदा ।
ततः प्रतापसिंहोभूत्प्रतापपरिपूरितः ॥१०॥

श्रीमानमरसिंहोभूत्ततोऽमरवरप्रभः ।
ततः श्रीकर्णसिंहेंद्रः कर्णराजपराक्रमः ॥११॥

ततः श्रीमज्जगत्सिंहो जगत्पालनतत्परः ।
प्रत्यक्षराजततुलां कुर्वन्सर्वप्रदोभवत् ॥१२॥

कृतवान् मोहनं लोके श्रीमन्मोहनमंदिरं ।
मेरुप्रभं निजगृहे तथा श्रीमेरुमंदिरं ॥१३॥

ॐकारेश्वरमीशानं समीक्ष्याऽमरकंटके ।
सुवर्णस्य तुलां कृत्वा वर्षन् स्वर्णं रराज सः ॥१४॥

श्वेताश्वदानं व्यतनोद्धेमं कल्पतरुं ददौ ।
सुवर्णपृथ्वीं दत्त्वाऽदात्सौवर्णान्सिप्तसागरान् ॥१५॥

विश्वचक्रं सुवर्णस्य दत्त्वा सुंदरमंदिरे ।
श्रीजगन्नाथरायं श्रीयुक्तं संस्थापयन्बभौ ॥१६॥

दानीरायं शिवं शक्तिं गणेशं भास्करं तथा ।
प्रतिष्ठाप्य तदेवाऽदाद्गोसहस्रं विधानतः ॥१७॥

हैमीं कल्पलतां वापि हिरण्याश्वं ददौ तथा ।
पंच ग्रामान् जगत्सिंहो रत्नधेनुं तदुत्तरं ॥१८॥

ततः श्रीराजसिंहेंद्रो राज्यसिंहासने स्थितः ।
आखंडलोपमः श्रीमान् जयति क्षितिमंडले ॥१९॥

श्रीसर्वऋतुविलासाख्यं स्वारामं कृतवांस्तथा ।
देहबारीमहाघट्टे द्वारं काष्ठकपाटयुक् ॥२०॥

स्वसुर्विवाहसमये एकसप्ततिकन्यकाः ।
ददौ महाक्षत्रियेभ्यो गजवाहांबराणि च ॥२१॥

दारासकोहसहितं ससादुल्लहखानकं ।
राठोडकच्छवाहेशयुक्तं साहिजहांभिधं ॥२२॥

दिल्लीश्वरं समायातं श्रुत्वैवाभिमुखोभवत् ।
निःसार्यशौर्यसंपन्नो राजसिंहो विराजते ॥२३॥

दग्धं मालपुराभिख्यं नगरं व्यतनोदिह ।
दिनानां नवक स्थित्वा लुंठनं समकारयत् ॥२४॥

रूपसिंहो मंडलाद्यगढस्थो म्लेच्छपाज्ञया ।
यस्य राघवदासस्य वैश्यस्याग्रे पलायितः ॥२५॥

सोयं तद्रूपसिंहस्य दिल्लीशार्थं सुरक्षितां ।
पुत्रीं पाणिं ग्रहाणोद्यत्सौभाग्यां कृतवान्प्रभुः ॥२६॥

जशवंतसिंहरावलमिह डुंगरपुरगतं निजं कृतवान् ।
दंडं च वासवालास्थितेरुपरि कुशलसिंहस्य ॥२७॥

देवलियापतिमनिशं कृतवान्निस्तेजसं हरीसिंहं ।
मीनान् क्षयान् कृत्वा मेवलदेशं गृहीतवान्नृपतिः ॥२८॥

पुत्र्या विवाहसमये नवतिस्वष्टाधिकां सुकन्यानां ।
सुक्षत्रेभ्यो दत्त्वा गजवाजिसुवस्त्राभोजनानि ददौ ॥२९॥

जननीं रूप्यतुलायां स्थितां विधाय विष्णुलोकगतेः ।
तस्या नाम्ना रचितो महान् जनासागरो नरेंद्रेण ॥३०॥

तस्योत्सर्गे राज्ञा रूप्यतुला कल्पितार्पितौ ग्रामौ ।
गुणहूंडदेवपुराख्यौ श्रीपुरोहितगरीबदासाय ॥३१॥

ब्रह्मांडमहादानं श्वेताश्वारूढं नृपोकरोद्दानं ।
रूप्यतुलायां स्थित्वा गजं ददौ वा हिरण्यकामदुघां ॥३२॥

ददौ महाभूतघटं हिरण्याश्वरथं नृपः ।
हेमहस्तिरथं दिव्यं पंचलांगलकं तथा ॥३३॥

भावलीग्रामसहितं हैमीं कल्पलतां ददौ ।
स्वर्णपृथ्वीं नृपो विश्वचक्र रूप्यतुलादिकृत् ॥३४॥

नाम्ना राजसमुद्रं जलाशयं सुप्रतिष्ठितं कृतवान् ।
सौवर्णसप्तसागरदान हैमीं तुलां महीपालः ॥३५॥

सत्पौत्रममरसिंह हैमतुलास्थं विधाय तत्र ददौ ।
एकादशसुग्रामान् पुरोहितोद्यद्गरीबदासाय ॥३६॥

श्रीराजमंदिरवरं शैलाग्रे कल्पं राजनगरं च ।
कृत्वा देशपतिभ्यो गजाश्ववस्त्राणि दत्तवान् भूप. ॥३७॥

भूकल्पवृक्षो राणेंद्रः कल्पपादकनामकं ।
महादानं प्रकल्प्यायमाकल्पं कीर्त्तिमादधे ॥३८॥

राधाकृष्णचरित्रस्य राजसिंहमहीपतेः ।
श्रीरामरसदेनाम्नी राज्ञी जगति राजते ॥३९॥

श्रीपुष्करे तदजमेरिमहाप्रदेशे
　　शार्दूलवीर इति कल्पितभूमिभोगः ।
राठोडराजमदखंडन एव जातो
　　दानाद्यनेकसुकृती परमारवंश्यः ॥४०॥

तस्यात्मजो जगति रायसलः प्रसिद्धो
जातप्रतापतपनद्युतितापितारिः ।
शौर्याभिमानमय एव मुदा निदानं
दानं ततान सततं कनकप्रधानं ॥४१॥

जातस्तदीयतनुजस्तु जुझारसिंहः
सत्सिंहसंघजयकारिशरीरसाक्षात् ।
खड्गप्रहाररणखडितवैरिवारो
क्ष्मासिंहरत्नगुणभारसमोत्युदारः ॥४२॥

तनयाथ तस्य विनयान्विताभव—
त्सनया समापि रमया तथोमया ।
सदयाऽभयादिधनदायन्याधिका
अभिरामरामरसदेशुभाभिधा ॥४३॥

सोलंकिनो दिव्यसुजानकुँवरि-
नाम्न्याः सुपुत्री च विचित्रसद्गुणा ।
स्वजन्मना पावितमातृतात—
वंशद्वया सत्कविसृष्टशंसना ॥४४॥

राणामंडनराजसिंहसुखदा भूयो महादानकृ-
द्रत्नालंकृतियुक्समस्तगुणभृद्दैवप्रवोधोद्भवा ।
स्या देवेतिविशेषणादिविलसद्वर्णैर्युत नाम ते
सतेने विधिरत्र रामरसदे नाम्नीति राज्ञीमणे ॥४५॥

ऐय श्रीराजसिंहस्य राज्ञी सौभाग्यसुंदरी ।
श्रीरामरसदेनाम्नी जयति क्षितिमंडले ॥४६॥

वैदर्भी नलभूभुजो दशरथस्यासीसुमित्रा विधो
रोहिण्येव सुदक्षिणा किल यथा पत्नी दिलीपस्य सा ।
देवक्यानकदुंदुभेरपि हरेः श्रीसत्यभामा तथा
नाम्नेय रमणीति रामरसदे श्रीराजसिंहप्रभोः ॥४७॥

पातिव्रत्यपवित्रपुण्यसरणिश्चितामणिर्विद्वतां
चित्तस्थापितकंठकौस्तुभमणिः श्रीशा गुणानां खनिः।
बुद्धिस्तोमजरणि[?]शिरोमणिरियं स्त्रीणां गणे सुंदर
श्रीचूडामणिरेव रामरसदेराज्ञी चिरं जीवतु ।।४८।।

देहवारीमहाघट्टे शैलश्लिष्टे विशंकटे।
जयावहां जयानाम्नीं वापीं पापप्रणाशिनीं ।।४९।।

विदधे राजसिंहस्य प्राणाधिकमहाप्रिया।
अभिरामगुणैर्युक्ता श्रीरामरसदेवधूः ।।५०।।

शते सप्तदशे पूर्णे वर्षे द्वात्रिंशदाह्वये ।
माघे धवलपक्षे च द्वितीयायां बृहस्पतौ ।।५१।।

श्रीमान् गरीवदासाख्यः पुरोहितशिरोमणिः ।
प्रतिष्ठितः प्रतिष्ठाया वाप्या रचितवान् विधिं ।।५२।।

श्रीराजसिंहदेवेन सहिता हितकारिणी ।
वापीप्रतिष्ठां विदधे श्रीरामरसदेवधूः ।।५३।।

अत्र दानं कृतवती वहु गोदानपंचकं ।
हलद्वयमितां भूमिं हरिरामत्रिपाठिने ।।५४।।

व्यासाय जयदेवाय क्ष्मामेकहलसंमितां ।
कन्हाख्यब्राह्मणायापि तथैकहलसंमितां ।।५५।।

भानाभट्टाय वसुधां तथैकहलसंमितां ।
कृष्णाख्यब्राह्मणायापि क्ष्मामेकहलसंमितां ।।५६।।

हलषट्कमितां भूमिमेवं राज्ञी मुदा ददौ ।
निष्क्रयं गोशतस्यापि रूप्यमुद्राशतद्वयं ।।५७।।

रानाश्रीराजसिंहस्य श्रीरामरसदेवधूः ।
महोत्साहं कृतवती वाप्या उत्सर्गं उत्सवे ।।५८।।

वर्षे पुष्करवेदधरणीसंख्ये समे माधवे
पक्षे शुक्लतमे तथा बुधमहावारे द्वितीयादिने ।
श्रीवाप्या रणछोडसत्कविवरः संसृष्टवान्स्वो- — —
— — ˇ — — — ˇ — — — ॥५९॥

सहस्रै रूप्यमुद्राणां चतुर्विंशतिसंमितैः ।
एकाग्रैः पूर्णतां प्राप वापीकार्यमहाद्भुत ॥६०॥

इति श्रीमहाराजाधिराज महाराणाजी श्री राजसिंहजी महीपति पत्नी श्रीरामरसदे विरचित वापीप्रशस्ति भट्ट रणछोड़ कृता संपूर्णं । लाल चेचाणी वापी महे चहुवाण धाभाई शतीदाशस्य वधु चंद्रकुँवर तत्पुत्र रामचंद वीर साह लाला पोरवाड़ गजधर नाथू गोड भूधर रो नाथू सुगरा रो ।

—×—

परिशिष्ट संख्या २

जनासागर की प्रशस्ति

श्रीरामजी सहाय।

सिधि श्री एकलिंगजी प्रसादात् महाराजाधिराज महाराणा श्री राज-सिंघजी विजयराज्ये तलाव जनासागर रो काम कराव्यो। कुंवरजी श्री जेसीजी भीमसीघजी कुंवरपद भुक्तव्यं। गजधर सूत्रधार कीसना सुत जसा। संवत् १७२१ मार्ग सेर वीद १० गुरे नीम रो मोर्त्त हुयो। सं० १७३५ वर्षे कांम पूरो हुयो। प्रसस्त प्रतिष्टित। सुभं भवतु कल्याणमस्तु। वैसाख सुदी ३ गुरे।

श्रीगणेशाय नमः॥

कलयतु कमलाया· कामद· कर्मरूप-
स्तुहिनकिरणबिंबद्योतितानंदवक्त्रः ।
विकचकमलचक्षुः क्षीरधौ बद्धनिद्र-
स्सजलजलद···· · भावनीयस्स भव्यं ॥१॥

गुणगणगुम्फीत्या गंगया गीतगात्रः
कनककदनकांत्या कांतया कांतकायः ।
धुतघनघृतिधामद्वैयधारी धरण्यां
भवतु भविकभूमिर्भूतये भूतभर्त्ता ॥२॥

वंदे लंबोदरं वंद्यं जगदंबोदरोद्भवं ।
बिंबोदरद्युतिर्देहे बिंबोदरमिव द्विषां ॥३॥

तैलंगज्ञातितिलकं कठौंडीकुलमंडनं ।
श्रीमंतपितरं कृष्णभट्टं वंदे प्रतिक्षणं ॥४॥

महाराजाधिराजश्रीराजसिंहनिदेशतः ।
लक्ष्मीनाथकविः कुर्व्वे जनासागरवर्णनं ॥५॥

अस्ति सर्वत्र विख्यातो रामवंशः सुपुण्यवान् ।
यस्य साम्यं न यातीह वंशः कोपि महीतले ॥६॥

तत्रान्ववाये शिवदत्तराज्यो
बापाभिधानोजनि मेदपाटे ।
संग्रामभूमौ पटुसिंहरावं
लातीत्यतो रावल इत्यभाणि ॥७॥

राहप्पराणा जनितोस्यवंशे
राणेति शब्दं प्रथयन्पृथिव्यां ।
रणो हि धातुः खलु शब्दवाची
तंकारयत्येष रिपून् द्रुतार्त्तान् ॥८॥

तस्मान्नरपतिराणा दिनकरराणा बभूव ततः ।
अजनि जसकर्णराणा तस्मादभवच्च नागपालाख्यः ॥९॥

श्रीपूर्णपालनामा पृथ्वीमल्लस्ततो जातः ।
अथ भुवनसिंह उदितस्तत्पुत्रो भीमसिंहोभूत् ॥१०॥

अजनि जयसिंहराणा तस्माज्जज्ञे च लखमसीराणा ।
अरसी ततो हमीरस्ततोप्यभूत्क्षेत्रसिंहोस्मात् ॥११॥

तस्माल्लाखाभिख्यो राणा श्रीमोकलस्तस्मात् ।
श्रीकुंभकर्ण उदभूद्राणा श्रीरायमल्लोस्मात् ॥१२॥

संग्रामसिंहराणा भूपालमणिस्ततो जातः ।
श्रीराणोदयसिंहः प्रतापसिंहस्ततो जातः ॥१३॥

अमरसमोमरसिंहस्ततो नृपः कर्णसिंहोभूत् ।
गुणगणनिधिरततोभूद्राणा श्रीमज्जगत्सिंहः ॥१४॥

जगत्सिंहमहीभर्त्ता कल्पवृक्षः कथं समः ।
चिंतनावधिदस्सोऽयं चिंतितादधिकप्रदः ॥१५॥

भास्वान् श्रीमज्जगत्सिंहस्तुलामारुह्य यव्ययधात् ।
स्वातिवृष्टि ततो मुक्तवा न स्युर्जन्मेच्छत्रः कथं ॥१६॥

तस्त्र धर्मात्मनस्साक्षाद्विष्णुरूपस्य चाभवत् ।
राज्ञी समगुणाचारा जनादेवीति नामतः ॥१७॥

पुत्री राठौडनाथस्य राजसिंहमहीभृतः ।
मेडताधिपतेर्नित्यं विष्णुपूजारतस्य च ॥१८॥

शंभोर्गौरी हरेः श्रीः कलशभवमुने राजपुत्री गुणाढ्या
लोपामुद्रा यथास्ते नृपमनुजननी स्याच्च सज्ञोष्णरश्मेः ।
रामस्यासीद्यथा वै जनकनृपसुता सा शचींद्रस्य पत्नी
तद्वद्रे जे विराजद्गुणकलितजगत्सिंहपत्नी जनादे ॥१९॥

दात्री दानव्रजस्य प्रियरिपुनिधने पार्वतीवोग्रभावा
दीने नित्यं दयालुर्नृपमुकुटजगत्सिंहराणाप्रियाभीत् ।
कर्मेतीनामधेया जनकगृहवरे सा प्रसूतेस्म पुत्रं
राणाश्रीराजसिंह गुणगणनिलयं चारिसिंहं द्वितीयं ॥२०॥

राणाश्रीराजसिंहे कलयति मुकुटं राज्यलक्ष्मीणि चायो
माता सेय जनादेऽलभत बहुसुखान्युत्सवं तं विलोक्य ।
तस्या भव्योथ धीमान् प्रियवचननिधी राजसिंहो नृपेंद्रो
नाम्ना मातुस्तडागं सदुदयपुरतः पश्चिमस्यां व्यधात्तं॥२१॥

वडीग्रामस्य निकटे तत्कासान्स्य राजतः ।
जनासागर इत्येवं प्रसिद्धिस्समजायत ॥२२॥

किं दुग्धं दधि वा घृतं मधु सुरा चेदिक्षु वार्द्धे रस-
स्साम्यं नो लभतो जलस्य लसतः श्रीमज्जनासागरे ।
क्षारो मत्सरभावतो ज्वलितहृत्स्याद्वाडवो दुःखभा-
ग्लंकां प्राप्य विमुक्तलोकवसती रत्नाकरोऽयंबुधिः ॥२३॥

5 2 7 1
पांडवलोचनमुनिभूपरिमित १७२५ वर्षे तपोमासे ।
शुक्लदशम्यां जननीवहुपुण्यप्राप्तये नूनं ॥२४॥

महीमहेंद्रः किल राजसिंह—
श्चकार पद्माकरवासवस्य ।
उत्सर्गमुत्साहविलासिचित्त—
स्सद्वित्तविस्तारविराजमानं ॥२५॥ युग्मं ॥

उत्सर्गे पूर्णतां याते तस्मिन्सेतौ सुखस्थितः ।
सुश्राव श्रीराजसिंहो द्विजराजोदिताशिषः ॥२६॥

वीरावीशोधिनीरात्तिसिततमरुचिमान्वीरगीरार्त्तबंधुः
क्षीराब्धिस्यानहीराधिकविमलयशःपुंजधीराब्जनेत्रः ।
साराक्तस्स्वीयदारालयहृदयलसत्कौस्तुभाराधृतांघ्रि—
स्ताराधीशास्य हीराविकलसिततनुः पातुनारायणो वः ॥२७॥

भक्तप्रत्यक्षलक्ष्मीमृदुलजनुलतासंगमामोदमानः
कामं माद्यन्मिलिन्दीभवदखिलजगद्वंद्यमानांघ्रिपद्मः ।
भक्तं यद्भुक्तशेषं सपदि सुखमया भुंजमाना वभूवु-
र्दद्यात्सद्योऽनवद्यं फलमिह सुजगन्नाथदेवः ॥२८॥

प्रचंडभुजदंडश्रीमंडितो मुंडमालया ॥
पुंडरीकलसत्तुंडश्शंकरश्शकरोवतात् ॥२९॥

भक्तानंदातिसक्ताखिलकलितनतिस्साधुवक्ता हि तस्या—
लक्तादिप्राज्यरक्तानलवहुललसन्मन्त्रशक्तातितेजाः ।

कामाश्यामाभिरामालिकरुचिरविधुः कांतिधामाननेंदु-
र्वमारिज्ञातहामा रुचिरपशुपतिः पुण्यनामावताद्वः ॥३०॥

दक्षाधीशस्सुवक्षा विमलसुरधुनीजीवनक्षालितांगो
यक्षाधीशातिपक्षाचलपतितनुजानेत्रलक्षार्क्कतेजाः ।
साक्षाद्यायत्सुहाक्षामरिपुवरगणो मल्लिकाक्षारकामो
लाक्षावल्लोहिताक्षादितिजकृतनतिः पातु दाक्षायणीशः॥३१॥

सार्व्वदिक् शूलधारी मृत्युंजय इति जगद्गीतः ।
श्रीविश्वेश्वरदेवश्चित्रचरित्रः करोतु शिवं ॥३२॥

श्रीवैद्यनाथ इति यः प्रथितः पृथिव्यां
संतापसंततिहतिव्यसने विदग्धः ।
सोयं पुरत्रयविनाशविकाशबुद्धि-
र्न्निश्शंकम कुरु यतादिह शंकरश्शं ॥३३॥

योगीन्द्रध्यानरूपोधरणिधरसुतास्वांतधैर्यापकर्षी
कजाक्षो जह्नुपुत्रीजलजनितजटाद्वैतकांतिप्रतानः ।
नदी यत्पादपंकेरुहयुगलरजस्स्थापनापूतपृष्ठो
वीराविर्भूतकंपः कलयतु कुशलं वीरभद्रेश्वरो वः ॥३४॥

मंगलकदवकं वः करोतु शंभोर्जराजूटः ।
कुरुते सुरस्रवंती यत्रेंदुगलसुधाभ्रांतिं ॥३५॥

क्षीरांभोधिप्रसुप्तद्विजपतिविलसत्केतनांगाब्जराज-
न्माल्ये सु (?) भ्रमंतो मधुरमधुकरीवृंदशोभां वहंतः ।
चित्रं भक्त्युल्लसत्तन्नरहृदयसरः कजपुंजायमाना
रक्षातु क्षीणदुःखाः क्षपितरिपुचलल्लक्षलक्ष्मीकराक्षाः॥३६

[1]घनसारगौरघनसारभवस्त्रो
वहुभूपरुग्भ्रभमदारुणनेत्रः ।
वनमालिमित्रमतिचित्रचरित्रो
मुशलायुधस्स कुशलानि करोतु ॥३७॥

नवनीरदनीरनीलकांति-

र्नवनीतग्रहपेशलस्सशांतिः ।

नवनीपककामसंगकामा-

नवनीशाच्युत देहि कामधामा ॥३८॥

ब्रह्मरुद्रलसदिंद्रचंद्रक-

स्सांद्रदेवनिवहोस्ति यद्यपि ।

अस्तु नंदनिलयांगणे लस—

द्वस्तुतः किमपि धाम तन्मुदे ॥३९॥

उत्सर्गे पूर्णतां याते तस्मिन्सेतौ सुखस्थितः ।

सुश्राव श्रीराजसिंह इति विप्रोदिताशिषः ॥४०॥

येन सर्व्वे कृता भूमौ जना पूर्णमनोरथाः ।

श्रीराजसिंहभूमींद्रश्चिरंजीवतु भूतले ॥४१॥

इति श्रीमन्महाराजाधिराज महाराणा श्रीराजसिंहनिदेशात् तैलंगतिलक कठोडी ग्रामाधिपश्रीमत्कृष्णभट्टतनयाभ्यां श्रीमल्लक्ष्मीनाथभट्ट भास्करभट्टाभ्यां विरचिता श्रीमज्जनासागरप्रशस्तिः संपूर्णतां प्राप । श्रीगणपतये नमः। संवत् १७३४ वैशाख कृष्णा १३ । लिखितमिदं कठोडी श्रीमत्कृष्ण भट्टात्मजभास्कर-भट्टेन । लिखितं सूत्रधार सगरामसुत नाथू ज्ञाति भगोरा ॥

एकषष्टिसहस्राग्रलक्षयुग्मं सुपुण्यदं ।

कार्येस्मिन् रूप्यमुद्राणां लग्नं भद्रपद सदा ॥

२६१००० दोय लाख ईगसट हजार रुपीया । तलावरी प्रतिष्ठा हुई जदी रुपा री तुला कीधी। गाम गलूंड चित्तौड तिरा गाम देवपुर थामला तीरा प्रोहित श्री गरीबदासजी हें आघाट करे मया कीधो । तलवरी पाल रो पाँव लेने खाडा खोद्या सीमो फेरेने नीम सोधेने गज १५ आसार कीधा । कमठाणा रा गजधर सुतार सगराम सुत नाथू तेन कोठारी १७३५ वर्षे ।

परिशिष्ट संख्या ३

महादान

[१]

तुला-पुरुष अथवा तुलादान

होम के उपरान्त गुरु पुष्प एवं गन्ध के साथ पौराणिक मन्त्रों का उच्चारण करके लोकपालों का आवाहन करते हैं, यथा—इन्द्र, अग्नि, यम, निॠति, वरुण, वायु, सोम, ईशान, अनंत एवं ब्रह्मा। इसके उपरान्त दाता सोने के आभूषण, कर्णाभूषण, सोने की सिकड़ियां, कगन, अंगूठियां एव परिधान पुरोहितों को तथा इनके दूने (जो प्रत्येक ऋत्विक् को दिया जाय उसका दूना) पदार्थ गुरु को देने के लिये प्रस्तुत करता है। तब ब्राह्मण शान्ति सम्बन्धी वैदिक मन्त्रों का पाठ करते हैं। इसके उपरान्त दाता पुनः स्नान करके, श्वेत पुष्पों की माला पहन कर तथा हाथो मे पुष्प लेकर तुला का (कल्पित विष्णु का) आवाहन करता है और तुला की परिक्रमा करके एक पलड़े पर चढ़ जाता है, दूसरे पलड़े पर ब्राह्मण लोग सोना रख देते हैं। इसके उपरान्त पृथिवी का आवाहन होता है और दाता तुला को छोड़कर हट जाता है । फिर वह सोने का आधा भाग गुरु को तथा दूसरा भाग ब्राह्मणों को उनके हाथो पर जल गिराते हुए देता है । दाता अपने गुरु एव ऋत्विजों को ग्रामदान भी कर सकता है। जो यह कृत्य करता है वह अनन्त काल तक विष्णुलोक में निवास करता है । यही विधि रजत या कर्पूर तुलादान मे भी अपनायी जाती है (अपरार्क पृ० ३२०, हेमाद्रि-दानखण्ड पृ० २१८)।

[२]

ब्रह्माण्ड

देखिए मत्स्यपुराण (२७६)। इस दान में दो ऐसे स्वर्ण-पत्र निर्मित होते हैं, जो गोलार्ध के दो भागों के समान होते हैं, जिनमें एक द्यौ (स्वर्ग) तथा दूसरा पृथिवी माना जाता है। ये दोनों अर्ध पात्र दाता की सामर्थ्य के अनुसार बीस से लेकर एक सहस्र पलो के वजन के हो सकते हैं और उनकी लम्बाई-चौड़ाई १२ से १०० अगुल तक हो सकती है। इन दोनों अर्धो पर आठ दिग्गजों, वेदों, छः अंगों, अष्ट लोकपालो, ब्रह्मा (मध्य में), शिव, विष्णु, सूर्य (ऊपर), उमा, लक्ष्मी, वसुओं, आदित्यों, (भीतर) मरुतों की आकृतियाँ (सोने की) होनी चाहिए, दोनो को रेशमी वस्त्र से लपेट कर तिल की राशि पर रख देना चाहिए और उनके चतुर्दिक १८ प्रकार के अन्न सजा देने चाहिए। इसके उपरान्त आठों दिशाओं में, पूर्व दिशा मे आरंभकर, अनन्त शयन (सर्प पर सोये हुए विष्णु,), प्रद्युम्न, प्रकृति, संकर्षण, चारों वेदों, अनिरुद्ध, अग्नि, वासुदेव की स्वर्णिम आकृतियाँ क्रम से सजा देनी चाहिए। वस्त्रों से ढके हुए दस घर पास में रख देने चाहिए। स्वर्णजटित सीगों वाली दस गायें, दूध दुहने के लिये वस्त्रों से ढके हुए काँस्य-पात्रों के साथ दान में दी जानी चाहिये। चप्पलों, छाताओं, आसनो, दर्पणों की भेट भी दी जानी चाहिए। इसके उपरान्त सोने के पात्र (जिसे ब्रह्माण्ड कहा जाता है) का पौराणिक मन्त्रों के साथ सम्बोधन होता है और सोना गुरु एव ऋत्विजों या पुरोहितों में (दो भाग गुरु को तथा शेषांश आठ ऋत्विजो को) बाँट दिया जाता है।

[३]

कल्पपादप या कल्पवृक्ष

(मत्स्य० २७७, लिग. २।३३)। भाँति-भाँति के फलों, आभूषणों एवं परिधानों से सुसज्जित कल्पवृक्ष का निर्माण किया जाता है। अपनी

सामर्थ्य के अनुसार सोने की मात्रा तीन पलों से लेकर एक सहस्र तक हो सकती है। आधे सोने से कल्पपादप बनाया जाता है। और ब्रह्मा, विष्णु, शिव एवं सूर्य की आकृतियां रख दी जाती हैं। पांच शाखाएँ भी रहती हैं। इनके अतिरिक्त बचे हुए आधे सोने की चार टहनियां, जो क्रम से सन्तान, मन्दार, पारिजातक एवं हरिचंदन की होती हैं, बनायी जाती हैं जिन्हें क्रम से पूर्व, दक्षिण, पश्चिम एवं उत्तर में रख दिया जाता है। कल्पपादप (कल्पवृक्ष) के नीचे कामदेव एवं उसकी चार स्त्रियों की सोने की आकृतियाँ रख दी जाती हैं। जलपूर्ण आठ कलश वस्त्र से ढककर दीपकों, चामरों एवं छातों के साथ रख दिये जाते हैं। इनके साथ १८ धान्य रहते है। संसार रूपी समुद्र के पार कराने के लिये कल्पवृक्ष की स्तुतियां की जाती हैं। इसके उपरान्त कल्पवृक्ष गुरु को तथा अन्य चार टहनियाँ चार पुरोहितों को दे दी जाती हैं।

[४]

गोसहस्र

(मत्स्य. २७८ एवं लिंग. २।३८)। दाता को तीन या एक दिन केवल दूध पर रहना चाहिए। इसके उपरान्त एक सुवर्णमय बैल के शरीर पर सुगंधित पदार्थ का लेप करके उसे वेदी पर खडा करना चाहिए और एक सहस्र गायो में से १० गायों को चुन लेना चाहिए। इन गायो पर वस्त्र उढ़ाया रहना चाहिए, इनके सींगों के ऊपर सुनहरा पानी चढ़ा देना या सोने का पत्र लगा देना चाहिए, खुरों पर चांदी चढा देनी चाहिए और तब उन्हें मडप में लाकर सम्मानित करना चाहिए। इन दसो गायों के मध्य में नन्दिकेश्वर (शिव के बैल) को खड़ा कर देना चाहिए। नन्दिकेश्वर के गले मे सोने की घंटियाँ, ऊपर रेशमी वस्त्र, गन्ध, पुष्प होने चाहिए तथा उसके सीगों पर सोना चढा रहना चाहिए। इसके उपरान्त दाता को सर्वौषधियों से पूरित जल में स्नान करके हाथों में पुष्प लेकर मन्त्रों के साथ गायों का आह्वान करना चाहिए और

उनकी महत्ता की प्रशंसा करनी चाहिए। इसी प्रकार दाता को चाहिए कि वह नन्दिकेश्वर बैल (नंदी) को धर्म कहकर पुकारे। इसके उपरान्त दाता दो गायों के साथ नन्दी की स्वर्णाकृति गुरु को तथा आठ पुरोहितों में प्रत्येक को एक--एक गाय देता है। शेष गायों को, ५ या १० की संख्या में, अन्य ब्राह्मणों मे बांट दिया जाता है। दाता को पुनः एक दिन दूध पर ही रह जाना पड़ता है तथा पूर्ण सन्तोष रखना पड़ता है। इस महादान के करने से दाता शिवलोक की प्राप्ति करता है तथा अपने पितरों, नाना एवं अन्य मातृपितरों की रक्षा करता है।

[५]

कामधेनु

(मत्स्य. २७९, लिंग. २।३५)। बहुत अच्छी सोने की दो आकृतियाँ बनाई जाती हैं; एक गाय की और दूसरी बछड़े की। सोने की तोल १००० या ५०० या २५० पलों की या सामर्थ्य के अनुसार केवल तीन पलों की हो सकती है। वेदी पर एक काले मृग का चर्म बिछा देना चाहिए जिसपर सोने की गाय आठ मंगल-घटों, फलों, १८ प्रकार के अनाजों, चामरों, ताम्रपात्रों, दीपो, छाता, दो रेशमी वस्त्रों, घंटियों, गले के आभूषणों आदि के साथ रख दी जाती है। दाता पौराणिक मन्त्रों के साथ गाय का आह्वान करता है और तब गुरु को गाय एवं बछड़े का दान करता है।

[६]

हिरण्याश्व

(मत्स्य. २८०)। वेदी पर मृगचर्म बिछाकर उस पर तिल रख देने चाहिए। कामधेनु के बराबर तोल वाले सोने का एक घोड़ा बनाना चाहिए।

दाता घोड़े का भगवान् के रूप में आह्वान करता है और वह आकृति गुरु को दान में दे देता है। हेमाद्रि ने घोड़े की आकृति के चारों पैरों एवं मुख पर चांदी की चद्दर लगाने की बात कही है (दान-खण्ड, पृ०.२७८)।

[७]

हिरण्याश्वरथ

(मत्स्य. २८१)। सात या चार घोड़ों, चार पहियों एवं ध्वजा वाला एक सोने का रथ बनवाना चाहिए। चार मंगलघट होते हैं। इसका दान चामरों, छाता, रेशमी परिधानों एवं सामर्थ्य के अनुसार गायों के साथ किया जाता है।

[८]

हेमहस्तिरथ

(मत्स्य. २८२)। चार पहियों एवं मध्य में आठ लोकपालों, ब्रह्मा, शिव, सूर्य, नारायण, लक्ष्मी एवं पुष्टि की आकृतियों के साथ एक सोने का रथ (छोटा अर्थात् खिलौने के आकार का) बनवाना चाहिए। ध्वजा पर गरुड़ एवं स्तंभ पर गणेश की आकृति होनी चाहिए। रथ में चार हाथी होने चाहिए। आह्वान के उपरान्त रथ का दान कर दिया जाता है।

[९]

पञ्चलाङ्गलक

(मत्स्य. २८३)। पुष्ट वृक्षों की लकड़ी के पांच हल बनवाने चाहिए। इसी प्रकार पांच फाल सोने के होने चाहिए। दस बैलों को सजाना चाहिए;

उनके सींगों पर सोना, पूँछ में मोती, खुरों में चाँदी लगानी चाहिए। उपर्युक्त वस्तुओं का दान सामर्थ्य के अनुसार एक खर्वट के बराबर भूमि, खेट या ग्राम या १००० या ५० निवर्तनों के साथ होना चाहिए। एक सपत्नीक ब्राह्मण को सोने की सिकड़ियों, अंगूठियों, रेशमी वस्त्रों एवं कगनों का दान करना चाहिए।

[१०]

विश्वचक्र

(मत्स्य. २८५)। एक सोने के चक्र का निर्माण होना चाहिए, जिसमें १६ तीलियाँ एवं ८ मंडल (परिधि) हों और उसकी तोल अपनी सामर्थ्य के अनुसार २० पलों से लेकर १००० पलों तक होनी चाहिए। प्रथम मध्य भाग पर योगी की मुद्रा में विष्णु की आकृति होनी चाहिए, जिसके पास शंख एवं चक्र तथा आठ देवियों की आवृतियाँ रहनी चाहिए। दूसरे मंडल पर अत्रि, भृगु, वसिष्ठ, ब्रह्मा, कश्यप तथा दशावतारों की आकृतियाँ खुदी रहनी चाहिए। तीसरे पर गौरी एवं माता देवियों, चौथे पर १२ आदित्यों तथा चार वेदों, पाचवें पर पांच भूतों (क्षिति, जल, पावक, गगन एवं समीर) एवं ११ रुद्रों, छठे पर आठ लोकपालों एवं दिशाओं, आठ हस्तियों, सातवें पर आठ अस्त्रशस्त्रों एवं आठ मंगलमय वस्तुओं तथा आठवें पर अवधि के देवताओं की आकृतियाँ बनी रहती हैं। दाता चक्र का आवाहन करके दान कर देता है।

[११]

सप्तसागरक

(मत्स्य. २८७)। सामर्थ्य के अनुसार ७ पलों से लेकर १००० पलों तक के सोने से १०½ अंगुल (प्रादेश) या २१ अंगुल कर्ण वाले सात पात्र (कुंड)

बनाये जाने चाहिए जिनमें क्रम से नमक, दूध, घृत, इक्षुरस, दही, चीनी एवं पवित्र जल रखा जाना चाहिए। इन कुण्डों में ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, इन्द्र, लक्ष्मी एवं पार्वती की आकृतियाँ डुबो देनी चाहिए और उनमें सभी रत्न डाले जाने चाहिए तथा उनके चतुर्दिक सभी धान्य सजा देने चाहिए। वरुण का होम करके सातों समुद्रों का (कुण्डों के प्रतीक के रूप मे) आवाहन करना चाहिए और इसके उपरान्त उनका दान करना चाहिए।

[१२]

रत्नधेनु

बहुमूल्य पत्थरों (रत्नों) से एक गाय की आकृति बनायी जाती है। उस आकृति के मुख में ८१ पद्मराग-दल रखे जाते हैं, नाक की पोर के ऊपर १०० पुष्पराग दल, मस्तक पर स्वर्णिम तिलक, आँखों में १०० मोती, भौंहों पर १०० सीपियाँ रखी जाती हैं, कान के स्थान पर सीपियों के दो टुकड़े रहते हैं। सींग सोने के होते हैं। सिर १०० हीरक मणियों का होता है। गरदन (ग्रीवा) पर १०० हीरक मणियाँ होती हैं। पीठ पर १०० नील मणियां, दोनों पार्श्वों में १०० वैदूर्य मणियाँ, पेट पर स्फटिक पत्थर, कमर पर १०० सौगन्धिक पत्थर होते हैं। खुर सोने के एवं पूंछ मोतियों की होती है। इसी तरह शरीर के अन्यान्य भाग विभिन्न प्रकार के बहुमूल्य पत्थरों से अलकृत किये जाते हैं। जीभ शक्कर की, मूत्र घृत का, गोबर गुड़ का होता है। गाय का बछड़ा गाय की सामग्रियों के आधे भाग का बना होता है। गाय एवं बछड़े का दान हो जाता है।

[१३]

महाभूतघट

(मत्स्य. २८९)। १०३ अंगुल से लेकर १०० अंगुल तक के कर्ण पर रखे हुए बहुमूल्य पत्थरों (रत्नों) पर एक सोने का घट रखा जाता है।

इससे दूध एवं घी से भरा जाता है और इस पर ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव की आकृतियाँ रची जाती हैं। कूर्म द्वारा उठाई गई पृथ्वी, मकर (वाहन) के साथ वरुण, भेड़ों (वाहन) के साथ अग्नि, मृग (वाहन) के साथ वायु, चूहे (वाहन) के साथ गणेश की आकृतियाँ घट मे रखी जाती है। इनके अतिरिक्त जपमाला के साथ ऋग्वेद, कमल के साथ यजुर्वेद, बाँसुरी के साथ सामवेद एवं स्रुक्-स्रुवों (करछुलों) के साथ अथर्ववेद एवं जपमाला तथा जलपूर्ण कलश के साथ पुराणों (पाँचवें वेद) की आकृतियाँ भी घट में रखी जाती हैं। इसके उपरान्त सोने का घड़ा दान में दिया जाता है।

[१४]

धरादान या हैमधरादान (सुवर्ण पृथ्वीदान)

(मत्स्य. २८४)। अपनी सामर्थ्य के अनुसार ५ पलों से लेकर १००० पल सोने की पृथ्वी का निर्माण कराना चाहिए। पृथ्वी की आकृति जम्बूद्वीप जैसी होनी चाहिए, जिसमे किनारे पर अनेक पर्वत, मध्य में मेरु पर्वत और सैकड़ों आकृतियाँ एवं सातों समुद्र बने रहने चाहिए। इसका पुनः आवाहन किया जाता है। आकृति का ½ या ¼ गुरु को तथा शेष पुरोहितों को बाँट दिया जाता है।

[१५]

महाकल्पलता (कल्पलता)

(मत्स्य. २८६)। विभिन्न पुष्पों एवं फलों की आकृतियों के साथ सोने की दस कल्पलताएँ बनानी चाहिए, जिन पर विद्याधरों की जोड़ियों, लोकपालों से मिलते हुए देवताओं एवं ब्राह्मी, अनन्तशक्ति, आग्नेयी, वारुणी तथा अन्य शक्तियों की आकृतियाँ होनी चाहिए तथा सबके ऊपर एक वितान की आकृति भी होनी चाहिए। वेदी पर खिंचे हुए एक वृत्त के मध्य में दो कल्पलताएँ तथा वेदी की आठों दिशाओं में अन्य आठ कल्पलताएँ रख

दी जानी चाहिए। दस गायें एवं मंगल-घट भी होने चाहिए। दो कल्प-लताएँ गुरु को तथा अन्य आठ कल्पलताएँ पुरोहितों को दान में दे दी जानी चाहिए।

[१६]

हिरण्यगर्भ

इस विषय में देखिए-मत्स्यपुराण (२७५) एवं लिंगपुराण [२।२९]। मण्डप, काल, स्थल, पदार्थ (सामग्रियाँ), पुण्याहवाचन, लोकपालों का आवाहन आदि इस महादान तथा अन्य महादानों में वैसा ही है, जैसा कि तुलापुरुष में होता है। दाता एक सोने का कुण्ड (थाल या परात या बरतन), जो ७२ अंगुल ऊँचा एवं ४८ अंगुल चौड़ा होता है, लाता है। यह कुण्ड मुरजाकार (मृदंगाकार) होता है या सुनहले कमल (आठ दल वाले) के भीतरी भाग के आकार का होता है। यह स्वर्णिम पात्र, जो हिरण्यगर्भ कहलाता है, तिल की राशि पर रखा जाता है। इसके उपरान्त पौराणिक मन्त्रो के साथ सोने के पात्र को संवेष्ठित किया जाता है और उसे हिरण्यगर्भ (स्रष्टा) के समान माना जाता है। तब दाता उस हिरण्यगर्भ के अन्दर उत्तराभिमुख बैठ जाता है और गर्भस्थ शिशु की भांति पाँच श्वासों के काल तक बैठा रहता है। उस समय उसके हाथों में ब्रह्मा एवं धर्मराज की स्वर्णाकृतियाँ रहती है। तब गुरु स्वर्णपात्र (हिरण्यगर्भ) के ऊपर गर्भाधान पुंसवन एवं सीमान्तोन्नयन के मन्त्रों का उच्चारण करता है। इसके उपरान्त गुरु वाद्यमन्त्रो या मंगल-गानों के साथ हिरण्यपात्र से दाता को बाहर निकल आने को कहता है। इसके उपरान्त शेष बारहों संस्कार प्रतीकात्मक ढंग से संपादित किये जाते हैं। दाता हिरण्यगर्भ के लिए मन्त्रपाठ करता है और कहता है—"पहले मैं मरणशील के रूप में माँ से उत्पन्न हुआ था किन्तु अब आप से उत्पन्न होने के कारण दिव्य शरीर धारण करूंगा।" इसके उपरान्त दाता सोने के आसन पर बैठ कर 'देवस्य त्वा' नामक मन्त्र के साथ स्नान करता है, हिरण्यगर्भ को गुरु एवं अन्य ऋत्विजों में बांटता है।